उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

BLIS-03

ज्ञान संगठन एवं प्रक्रियाकरण

खण्ड

1

पुस्तकालय वर्गीकरण : सिद्धान्त

इकाई -1 5

पुस्तकालय वर्गीकरण : परिभाषा, उद्देश्य एवं कार्य

इकाई -2 18

पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त

इकाई - 3 50

पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रजातियाँ

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 बी0 एन0 सिंह	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति - पाठ्यक्रम अभिकल्पन

डॉ0 पाण्डेय एस0 के0 शर्मा	अवकाश प्राप्त मुख्य ग्रंथालयी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली,
डॉ0 ए0 पी0 गक्खर	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इला0
डॉ0 यू0 सी0 शर्मा	एसोसियेट प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष, बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ0 सोनल सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ0 ए0 पी0 सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0संजीव सर्राफ	उपपुस्तकालयाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 टी0एन0 दुबे (सदस्य सचिव)	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक मण्डल

डॉ0 टी0 एन0 दुबे	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री आर0 जे0 मौर्य	सहायक ग्रन्थालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री राजेश गौतम	प्रवक्ता, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 बी0 के0 शर्मा	भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, डॉ0 वी0 आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

परिमापक

डॉ0 वी0 पी0 खरे	एसोसिएट प्रोफेसर, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-978-81-921668-4-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ0 ए0 के0 सिंह, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मई 2011 मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-1 : पुस्तकालय वर्गीकरण : सिद्धान्त

प्रस्तावना

पुस्तकालयों में ज्ञान भण्डार के रूप में संकलित विभिन्न प्रकार के प्रलेखों को सुव्यवस्थित रखने एवं उन्हें पुनः आवश्यकतानुसार शीघ्र प्राप्त करने के लिए वर्गीकरण एक मात्र एवं अद्वितीय प्रक्रिया तथा साधन हैं। पुस्तकालयों की सुव्यवस्था तथा पाठ्यसामग्रियों का अधिकाधिक उपयोग बढ़ाने की दृष्टि से वर्गीकरण आवश्यक है।

पुस्तकालय वर्गीकरण के स्पष्ट सिद्धान्तों की आधारशिला रखने में ब्लिस एवं सेयर्स की अग्रगामी भूमिका रही है। वहीं डॉ. एस.आर.रंगनाथन ने गहन अध्ययन और विषय जगत की सूक्ष्मतम विशेषताओं के आधार पर उपयोगी और स्पष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर ब्लिस और सेयर्स द्वारा स्थापित आधारशिला के ऊपर एक स्तम्भ खड़ा कर दिया।

प्रस्तुत खण्ड में तीन इकाईयाँ हैं। इकाई-1 में पुस्तकालय वर्गीकरण की परिभाषा, उद्देश्य एवं कार्यों की विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

इकाई-2 में समय समय पर विकसित पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्तों का आप विस्तार से अध्ययन करेंगे। वर्गीकरण के सिद्धान्तों के विकास की दो अवस्थाएँ हैं - विवरणात्मक सिद्धान्त और गत्यात्मक सिद्धान्त। इसमें महान सिद्धान्तशास्त्रियों जैसे - ब्राउन, रिचर्डसन, ह्यूम, सेयर्स, ब्लिस तथा रंगनाथन के योगदानों की विवेचना की गई है।

इकाई - 3 में पुस्तकालय वर्गीकरण की विभिन्न प्रजातियों की प्रमुख विशेषताओं, सीमाओं, समस्याओं आदि को स्पष्ट किया गया है। इस इकाई में आपके अध्ययन के लिए पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रमुख प्रणालियों की विवेचना भी की गई है।

इकाई -1ः पुस्तकालय वर्गीकरणः परिभाषा, उद्देश्य एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 वर्गीकरण

1.2.1 वर्गीकरण की परिभाषा

1.3 पुस्तकालय वर्गीकरण

1.3.1 पुस्तकालय वर्गीकरण की परिभाषा

1.3.2 आवश्यकता

1.3.3 उद्देश्य एवं कार्य

1.4 सारांश

1.5 सम्बन्धित प्रश्न - बहुविकल्पीय, लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय

1.6 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1.7 संदर्भ एवं इतर पाठ्यसामग्री

1.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में आपको वर्गीकरण का तात्पर्य उसके चरणों की विवेचना करते हुए उसकी परिभाषाओं को समझाने का प्रयास किया गया है। तत्पश्चात पुस्तकालय वर्गीकरण उसकी परिभाषा, उद्देश्य, आवश्यकता और कार्यों की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह समझने में समर्थ होंगे कि वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य एवं कार्य मस्तिष्क को वस्तुओं/प्रलेखों को समझने तथा उनकी विशेषताओं की स्मृति में धारण करने में सुविधा प्रदान करना है।प्रत्येक प्रकार का वर्गीकरण प्रज्ञाशक्ति और स्मृति को सहायता प्रदान करता है। इसके अभाव में प्रलेखों जिनमें ज्ञान निहित है, का संगठन, प्रक्रियाकरण और पुनर्प्राप्ति सम्भव नहीं है। पुस्तकालय वर्गीकरण द्वारा ही प्रलेखों को क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित किया जा सकता है। इस प्रकार वर्गीकरण पुस्तकालय में विविध प्रकार के विषयों के अन्तर्गत संग्रहीत ग्रन्थों को उनके निश्चित विषय-क्रम के अन्तर्गत व्यवस्थापन की एक सहायक विधि अथवा तकनीक है।

1.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ः -

- सामान्य वर्गीकरण का अर्थ, परिभाषा और उसकी प्रकृति को समझ सकेंगे,
- पुस्तकालय वर्गीकरण का अर्थ और उसकी परिभाषाओं को जान सकेंगे,तथा
- पुस्तकालय वर्गीकरण की आवश्यता, उद्देश्य एवं कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

1.2 वर्गीकरण (Classification)

वर्गीकरण शब्द, जिसे अंग्रेजी में क्लासीफिकेशन (Classification) कहते हैं, जो लैटिन भाषा के क्लासिस (Classis) शब्द से बना है। क्लासिस शब्द का वास्तविक अर्थ 'वर्ग' (Class) से है। इस शब्द का उपयोग प्राचीन रोम में सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा तथा महत्व की दृष्टि से मनुष्य को द्वैत्वात्मक (Dichotomy) प्रथा के अनुसार दो श्रेणियों में विभक्त करने के लिए किया जाता था जैसे - बड़ा एवं छोटा, धनी एवं निर्धन, स्वामी एवं दास। इस प्रकार क्लासिस शब्द का अर्थ वस्तुओं के एक समूह को किसी समान गुण एवं विशेषता के अनुसार भिन्न वर्ग में रखना है। इसके लिए वर्ग समूह में सन्निहित सत्ताओं, जिनका वर्गीकरण करना है, कम से कम एक सामान्य अभिलक्षण अवश्य होता है।

वर्गीकरण के प्रसिद्ध विद्वान ब्लिस (H.E.Bliss) ने वर्गीकरण को समझाने हेतु उसके तीन चरण बताए हैं -

1- विभाजन करना (To Class)

2. वर्गीकृत करना (To Classify)

3. वर्गीकरण करना (Classification)

पहले चरण (विभाजन करना) में वस्तुओं को किसी समूह या वर्ग में रखने के लिए किसी समानता अथवा असमानता के आधार पर विभाजित किया जाता है। **दूसरे चरण** (वर्गीकृत करना) में अनेक वस्तुओं में से उनकी किसी भी विशेषता के आधार पर वर्ग अथवा उपवर्ग की रचना कर वर्गीकृत किया जाता है। **तीसरे - चरण** (वर्गीकरण) में सभी वर्गों एवं उपवर्गों को किसी उद्देश्य, अभिरूचि अथवा कुछ सिद्धान्तों तथा नियमों को दृष्टि में रखकर क्रमबद्ध किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्गीकरण का अर्थ एक समान विशेषताओं वाली वस्तुओं को एक साथ एक समूह में रखना है। इस दृष्टि से वर्गीकरण न केवल वस्तुओं का सामान्य समूहीकरण है बल्कि उन्हें एक सुव्यवस्थित एवं तर्कसंगत क्रमबद्ध शृंखला में व्यवस्थित करना भी है जिसमें उनके परस्पर सम्बन्ध को निश्चित किया जा सके। सरल भाषा में यह कहा जा सकता

है कि वस्तुओं को उनकी समान अथवा असमान विशेषताओं के आधार पर क्रमबद्ध करने को ही वर्गीकरण कहते हैं।

1.2.1 वर्गीकरण की परिभाषा (Definition of Classification)

वर्गीकरण' का प्रमुख उद्देश्य विचारों, वस्तुओं अथवा सम्पत्तियों का उनमें निहित गुणों, विशेषताओ एवं सदृश्यता के आधार पर वर्गीकरण करना है। 'वर्गीकरण' शब्द की प्रकृति एवं इसके कार्य एवं उपयोगिता को देखते हुए पुस्तकालय विज्ञान के विद्वानों ने तर्कपूर्ण विचारों से अपने अपने शब्दों में वर्गीकरण पद को परिभाषित किया है। वर्गीकरण की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं -

आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के अनुसार - ''वर्गीकरण समान लक्षणों के अनुसार व्यवस्थित करने या बनाने का कार्य है।''

फिलिप्स (W.H.Phillips) के अनुसार -''वर्गीकरण आवश्यक रूप से एक मानसिक प्रक्रिया है और सोचने की एक विधि है, हम किसी वस्तु को अपनी धारणा अथवा विचार के अनुसार किसी समूह में रखते हैं अथवा पृथक करते हैं। पृथक करने अथवा समूह में रखने की इस मानसिक प्रक्रिया को पृथक्करण (Abstraction)कहते हैं।'' **फिलिप्स** ने पुनः वर्गीकरण पद की प्रकृति एवं स्वभाव को दृष्टिगत रखते हुए इसे परिभाषाबद्ध करते हुए कहा है कि -''वर्गीकरण पृथक करने एवं समूह में रखने की एक प्रक्रिया है यह समान वस्तुओं को एकत्रित कर असमान वस्तुओं को पृथक करती है।''

सेयर्स (W.C.B. Sayers) के अनुसार -''वर्गीकरण हमारी दृष्टि, अवलोकन और तार्किक शक्ति का अभ्यास है जिसके द्वारा हम वस्तुओं को समानता के आधार पर एकत्रित करते हैं तथा असमानता के आधार पर उन्हें पृथक करते हैं।''

हक्सले (T.H.Huxley), **जेवन्स (W.S. Javans)** और **जास्ट (L.Starley Jast)** ने वर्गीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है- ''वर्गीकरण का तात्पर्य वस्तुओं में सादृश्यता अथवा समानता के आधार पर उन्हें आदर्श व्यवस्थित अनुक्रम में श्रृंखलाबद्ध कर असमानता के आधार पर उन्हें एक दूसरे से पृथक करना है। इस व्यवस्थित अनुक्रम का उद्देश्य वस्तुओं की विशेषताओं को समझने तथा याद रखने में मस्तिष्क को सहायता प्रदान करना है। साथ ही उनके अभिलेख को इस प्रकार व्यवस्थित करना है जिससे मांग होने पर शीघ्रता एवं आसानी से प्रस्तुत किया जा सके। साथ ही वर्गीकरण का तात्पर्य वस्तुओं के क्रमबद्ध रखने का नियमों, सिद्धान्तों एवं परस्पर संबंधों में सामन्जस्य स्थापित करना है।''

मारग्रेट मान (Margretman) के अनुसार - ''समान वस्तुओं को एक साथ रखना तथा अधिक विस्तार से समानता एवं असमानता के अनुसार वस्तु को व्यवस्थित

करना ही वर्गीकरण है।।''

रिचर्डसन (E.C.Richardson) का कथन है कि प्रकृति ने स्वयं सभी वस्तुओं को पहले से ही क्रमवत् उत्पन्न किया है। ये क्रम एक दूसरे से पृथक होते हैं। मनुष्य को केवल वर्गीकरण का क्रम ज्ञात करना पड़ता है और उसका अभिलेख रखना पड़ता है।

वर्गीकरण की विभिन्न परिभाषाओं से स्पष्ट है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो व्यतिक्रम तथा अव्यवस्था की स्थिति में भी क्रम तथा व्यवस्था स्थापित करने में समर्थ एकमात्र महत्वपूर्ण एवं सफल साधन है। यह प्रक्रिया समान रूप से विचारों अथवा वस्तुओं में क्रम स्थापित करने में सहायक होती है।

वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य एवं कार्य वस्तुओं को समझने तथा उनकी विशेषताओं को स्मृति में धारण करने में सुविधा प्रदान करना है। प्रत्येक प्रकार का वर्गीकरण प्रज्ञाशक्ति और स्मृति को सहायता प्रदान करता है। इसके अभाव में किसी वस्तु को ज्ञात करना सरल नहीं है। हमारे विचारों अथवा स्मृति में किसी न किसी रूप में वर्गीकरण की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है।

1.3 पुस्तकालय वर्गीकरण (Library Classification)

सामान्य वर्गीकरण में हम वस्तुओं, सत्ताओं, विचारों एवं धारणाओं को सुव्यवस्था प्रदान करते हैं जबकि पुस्तकालय वर्गीकरण का सम्बन्ध प्रलेखों (Documents) से होता है। प्रलेखों से अभिप्राय मुद्रित, हस्तलिखित अथवा अन्य किसी रूप में उपलब्ध पाठ्य सामग्री से है। अर्थात् पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं, माइक्रोफिल्म, फोटोग्राफ, ग्रामोफोन रिकार्ड्स इत्यादि सब प्रलेखों के अन्तर्गत आते हैं।

मानव एक बुद्धिजीवी प्राणी है और उसके द्वारा अर्जित ज्ञान उसकी अमूल्य निधि है। यह ज्ञान प्रकाशित होकर, पुस्तकालयों में विविध आकारों, प्रकारों, विधाओं, विषयों इत्यादि के रूप में संग्रहीत होता रहा है। पुस्तकालयों का दायित्व इस संग्रहीत ज्ञान को सुरक्षा प्रदान करना है, ताकि भावी पीढ़ी इसका उपयोग कर सके। किन्तु इनके प्रभावी उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि उन समस्त प्रलेखों को, जो ज्ञान के अमूल्य भण्डार हैं एक निश्चित अनुक्रम में व्यवस्थित करके रखा जाये। वर्तमान समय में ज्ञान के चहुमुखी विकास तथा पाठ्य सामग्री के द्रुतगति से प्रकाशन के कारण, व्यवस्थापन का कार्य और भी जटिल बन गया है। आधुनिक पुस्तकालय इसके लिए अनेक प्रक्रियाएं अपनाते हैं। पुस्तकालय वर्गीकरण भी एक ऐसी ही प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रलेखों को भिन्न भिन्न वर्गों में विभाजित कर इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि किसी पाठक द्वारा मांगे जाने पर उसकी वांछित पाठ्य सामग्री, उसे कम से कम समय में उपलब्ध करायी जा सके।

आज पुस्तकालय वर्गीकरण का उपयोग सूचना पुनर्प्राप्ति (Information retrieval), प्रलेखन तथा ग्रन्थ-सूची (Bibliography) के क्षेत्र में भी व्यापक स्तर पर किया जाने लगा है।

1.2.1 पुस्तकालय वर्गीकरण की परिभाषा (Definition of Library Classification)

'पुस्तकालय वर्गीकरण' की परिभाषाएं भिन्न-भिन्न लेखकों, विचारकों एवं विद्वानों ने भिन्न भिन्न प्रकार से दी हैं। ये परिभाषाएं इनके दृष्टिकोण को तो स्पष्ट करती ही हैं, साथ ही विषय के अर्थ, आवश्यकता एवं प्रयोजन को समझाने की दृष्टि से भी उपयोगी हैं। यहाँ कुछ विद्वान लेखकों की परिभाषाओं को उद्धृत किया जा रहा है।

सी.ए.कटर (C.A.Cutter) के अनुसार -''अपरिवर्तनीय एवं समान विषयों पर लिखित पुस्तकों को एक स्थान पर एकत्रित करने को ग्रन्थ वर्गीकरण कहते हैं।''

मारग्रेट मान (Margret Mann) के अनुसार -''पुस्तकों का वर्गीकरण वस्तुतः ज्ञान का वर्गीकरण है जिसमें पुस्तकों के भौतिक स्वरूप के आधार पर आवश्यक समन्वय किया जाता है।''

एच.ई.ब्लिस (H.E.Bliss) के अनुसार -''पुस्तकों में ज्ञान के संगठन को ग्रन्थ वर्गीकरण कहते हैं। यह विभिन्न उद्देश्यों एवं सम्भावित आवश्यकताओं के लिए ग्रन्थों के व्यवस्थापन एवं पुनर्व्यवस्थापन की प्रक्रिया है।''

ब्लिस ने पुनः वर्गीकरण के एक महत्वपूर्ण उद्देश्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है कि ''वर्गीकरण पुस्तकों को फलकों पर व्यवस्थित करने का कार्य तो करता ही है साथ ही पाठकों द्वारा लौटाई गई पुस्तकों के पुनर्व्यवस्थापन का कार्य भी वर्गीकरण के द्वारा ही सम्पन्न होता है।''

डब्लू.सी.वी. सेयर्स (W.C.B. Sayers) के अनुसार -''पुस्तकों एवं अन्य पाठ्य-सामग्री को क्रमबद्ध तरीके से निधानियों (Shelves) पर व्यवस्थित करना, जिससे उन पाठकों को वांछित सूक्ष्मतम सूचना प्रलेख प्राप्त हो जाएँ, को ग्रन्थ वर्गीकरण कहते हैं।''

ई.डब्लू.ह्यूम (E.W.Hulme) के अनुसार -''ग्रन्थ वर्गीकरण साहित्य में ज्ञान के खोज की प्रक्रिया में समय की बचत की यांत्रिक प्रक्रिया है। प्रलेख हमारी विषय वस्तु है और प्रलेखों में ज्ञान की खोज में अल्प समय में अभिगम का चयन हमारा कर्म एवं उद्देश्य है।''

डब्लू.एस.मेरिल (W.S.Merrill) के अनुसार -''ग्रन्थ वर्गीकरण वह कला है जिसके द्वारा ग्रन्थों को क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित कर विषयानुसार उचित स्थान प्रदान

किया जाता है।''

जे.एस.मिल (J.S.Mill) के अनुसार -''साहित्य में ज्ञान की खोज में समय बचाने की यांत्रिक प्रक्रिया ही ग्रन्थ वर्गीकरण है।''

भारत में पुस्तकालय विज्ञान के जनक **डॉ. एस.आर.रंगनाथन** की परिभाषा उपरोक्त परिभाषाओं से भिन्न एवं विशिष्टता लिए हुए है। उनके अनुसार -

''पुस्तकालय वर्गीकरण किसी पुस्तक के विशिष्ट विषय के नाम का, क्रमसूचक अंकों की अधिमान्य कृत्रिम भाषा में अनुवाद करना है तथा एक ही विशिष्ट विषय से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का अन्य क्रमसूचक अंकों द्वारा, जो पुस्तक की विषय वस्तु के अलावा अन्य विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हों, विशिष्टता प्रदान करना है।''

इस परिभाषा के अनुसार पुस्तकालय वर्गीकरण किसी विशिष्ट विषय को कृत्रिम भाषा के अंक प्रदान करना मात्र नही है अपितु एक ही विषय की अनेक पुस्तकों को पृथक पृथक वैयक्तित्व प्रदान करने की विधि भी है। यह कार्य पुस्तक के विशिष्ट विषय के अलावा, पुस्तक के भौतिक आकार प्रकार, भाषा, खण्ड संख्या इत्यादि को कृत्रिम अंक प्रदान करके किया जाता है। दूसरे शब्दों में ग्रन्थांक **(Book Number)** के परिसूत्र के आधार पर एक ही विशिष्ट विषय की अनेक पुस्तकों को पृथक पृथक व्यक्तित्व प्रदान किया जा सकता है। सही अर्थ में ज्ञान जगत के सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रत्येक विषय को पृथक पृथक वैयक्तिकता प्रदान करना ही वर्गीकरण है।

1.3.2 पुस्तकालय वर्गीकरण की आवश्यकता (Need of Library Classification)

आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में विभिन्न विषय क्षेत्रों में पाठ्य-सामग्री की अधिकाधिक वृद्धि के कारण उत्पन्न व्यतिक्रम को दूर कर सुव्यवस्था प्रदान करने के लिए वर्गीकरण आवश्यक हो गया है। एक समय था जब हमारे समाज का स्वरूप अत्यधिक सरल था, ज्ञान सीमित था, विषयों में गूढ़ता का अभाव था,भाषाएँ भी गिनी-चुनी थीं। मुद्रणकला के अभाव में प्रकाशित पाठ्य सामग्री नहीं थी। ऐसे समय में पुस्तकालयों में उपलब्ध पाठ्य सामग्री को व्यवस्थित करना भी सरल था। कालान्तर में मुद्रण कला के आविष्कार, शोध और विकास के फलस्वरूप नवीन-नवीन विषयों के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप पुस्तकों/प्रलेखों के प्रकाशन की संख्या में क्रान्तिकारी वृद्धि होने लगी है।पुस्तकालय में विभिन्न विषयों और भाषाओं में असंख्य मात्रा में ग्रन्थों के संग्रह तथा अधिकाधिक पाठकों/उपयोगकर्ताओं के आगमन के कारण ग्रन्थों को उपयोगी क्रम में व्यवस्थित करना कठिन कार्य प्रतीत होने लगा, जिसे वर्गीकरण अनुप्रयोग द्वारा ही दूर किया जा सका। अतः पुस्तकालय में संग्रहीत विविध विषयों, भाषाओं की पुस्तकों के व्यवस्थापन के लिए वर्गीकरण अति आवश्यक है।

आधुनिक पुस्तकालयों में वर्गीकरण की आवश्यकता जिन कारणों से अनुभव

की गई उनका उल्लेख संक्षेप में किया जा रहा है -

ज्ञान का असीमित विस्तार (Explosion of Knowledge)

ज्ञान के असीमित और निरन्तर गति से विकास के कारण पुस्तकालयों में प्रकाशित पाठ्य-सामग्री, द्रुतिगति से आने लगी। इसे सहायक अनुक्रम में व्यवस्थित करने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता हुई।

विषयों की दुरुहता (Complexity of subject)

ज्ञान के बहुआयामी विस्तार के कारण समान विषयों को एक साथ उनके पारस्परिक पड़ोस संबंध के आधार पर व्यवस्थित करना आवश्यक है। यह कार्य वर्गीकरण के द्वारा सम्भव है।

पाठ्य सामग्री के विविध रूप (Different forms of reading materials)

आज पाठ्य-सामग्री अपने परम्परागत स्वरूप (पाण्डुलिपियों एवं प्रकाशित पुस्तकों इत्यादि)के अलावा अन्य रूपों में भी उपलब्ध होने लगी है। जैसे - आवधिक प्रकाशनों (Periodical Publications), रिपोट्स, सरकारी एवं गैर सरकारी प्रकाशनों, पुस्तिकाओं, पम्पलेट्स (Pamphlets), नक्शों, चार्टों, माइक्रोफिल्म, माइक्रोफिश, ग्रामोफोन रेकार्ड्स, टेप रिकार्ड्स, ब्रेल पुस्तकों आदि के रूप में । ज्ञान प्राप्ति के लिए इन सभी रूपों में उपलब्ध पाठ्य-सामग्री का विशेष महत्व है। इन सब को उपयुक्त अनुक्रम में व्यवस्थित करने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता होती है।

भाषाओं की अनेकता (Variety of languages)

आज साहित्य विश्व की अनेक भाषाओं में प्रकाशित हो रहा है।एक विषय पर विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित पाठ्य-सामग्री को वर्गीकरण के माध्यम से ही सुनिश्चित अनुक्रम प्रदान किया जा सकता है।

संक्षेप में आधुनिक पुस्तकालयों में संग्रहीत विविध प्रकार की पाठ्य-सामग्री को सहायक अनुक्रम में व्यवस्थित कर, आज के व्यस्त पाठक को, कम से कम समय में उपलब्ध कराने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता है।

वर्गीकरण के अभाव में हमारे पुस्तकालय अव्यवस्थित ज्ञान के भण्डार मात्र बनकर रह जायेंगे और उनमें उपलब्ध ज्ञान का उपयोग प्रभावी ढंग से नहीं हो पायेगा।

पुस्तकालय विज्ञान के सूत्रों के अनुपालन के लिए

डॉ.रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पुस्तकालय विज्ञान के प्रथम सूत्र (पुस्तकें उपयोगार्थ हैं), द्वितीय सूत्र (प्रत्येक पाठक को उसकी पुस्तक मिले), तृतीय सूत्र (प्रत्येक पुस्तक

को उसका पाठक मिले), चतुर्थ सूत्र (पाठक का समय बचाओ) के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता है।

यदि पुस्तकें वर्गीकृत क्रम में व्यवस्थित हैं तो पाठक को उसके अभीष्ट विषय की पुस्तकें कम से कम समय में मिल सकेंगी जिससे पुस्तकों का उपयोग बढ़ेगा और प्रथम सूत्र के लक्ष्य की पूर्ति होगी।

पुस्तकों के फलकों में वर्गीकृत रूप से व्यवस्थित होने से प्रत्येक पाठक को उसकी आवश्यकता की पुस्तक खोज निकालने में आसानी होगी, जो द्वितीय सूत्र की संतुष्टि के लिए आवश्यक है।

प्रत्येक पुस्तक को उसका उपयुक्त पाठक मिल सके इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तकों को वर्गीकृत क्रम में इस प्रकार प्रदर्शित किया जाये कि प्रत्येक पाठक अपने विषय तथा सह-सम्बन्धित अन्य विषयों को आसानी से फलकों में एक साथ व्यवस्थित क्रम में रखा हुआ देख सके। इससे प्रत्येक पुस्तक को उसका उपयुक्त पाठक मिल सकेगा, और तृतीय सूत्र संतुष्ट होगा। सही अर्थ में पाठक को पुस्तक के सम्पर्क में लाने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता होती है।

पुस्तकों को फलकों में वर्गीकृत क्रम में व्यवस्थित करने तथा उपयुक्त मार्ग दर्शक उपकरणों की सहायता से व्यवस्थित करके पाठक का बहुमूल्य समय बचाया जा सकता है।

1.3.3 वर्गीकरण के उद्देश्य एवं कार्य (Objective and Function of Classification)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि प्रलेखों का विभिन्न भाषाओं में विभिन्न विषयों पर विभिन्न स्वरूपों में प्रकाशन होता है। पुस्तकालय सदा से ही पुस्तकों/प्रलेखों का अधिग्रहण करते रहे हैं। इस प्रकार एक सक्रिय पुस्तकालय का संग्रह प्रतिवर्ष बढ़ता ही रहता है। डॉ. रंगनाथन ने सक्रिय एवं प्रभावी पुस्तकालयों की तुलना वर्द्धनशील जैविक तंत्र से की है। वर्धनशील पुस्तकालय में जहाँ संग्रह हजारों और लाखों की संख्या में होता है, वहाँ पाठकों के विषय-उपागम को संतुष्ट करने के लिए प्रत्येक विषय के प्रलेखों को उनके विषय और उप-विषय के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाना चाहिए। पुस्तकालय में विभिन्न प्रकार के प्रलेखों का संग्रह भिन्न-भिन्न उद्दश्यों से किया जाता है। इन विभिन्न प्रकार के प्रलेखों का सुनियोजित व्यवस्थापन वर्गीकरण की सहायता से ही किया जा सकता है जो वर्गीकरण का प्रमुख उद्देश्य है।

डॉ. रंगनाथन के अनुसार पुस्तकालय वर्गीकरण निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक है -

- पाठक द्वारा माँगे जाने पर पुस्तकालय में उपलब्ध किसी पुस्तक का फलक पर स्थान अतिशीघ्र बताया जा सके।

- पाठक द्वारा जब कोई पुस्तक वापस लौटाई जाय तो उसे पुनः उसके पूर्व निश्चित स्थान पर रखा जा सके।
- किसी नवीन पुस्तक के पुस्तकालय में प्राप्त होने पर उसे उसी विषय की अन्य पुस्तकों के मध्य, उपयुक्त स्थान पर व्यवस्थित किया जा सके। उदाहरणार्थ - यदि भारतीय दर्शन की कोई पुस्तक पुस्तकालय में क्रय द्वारा या अन्य किसी स्रोत से प्राप्त होती है तो वर्गीकरण के द्वारा उसे पुस्तकालय में पहले से उपलब्ध इसी विषय की अन्य पुस्तकों के साथ ही व्यवस्थित किया जा सकता है।
- पुस्तकालय में जब किसी नवीन विषय (ऐसा विषय जिस पर पुस्तकालय में पहले से कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है) पर कोई पुस्तक पहली बार प्राप्त हो, तो उसे फलकों पर, उस विषय से सम्बन्ध रखने वाली अन्य पुस्तकों के साथ पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त व्यवस्थित किया जा सके। उदाहरणार्थ - किसी पुस्तकालय में मुख्य वर्ग Q Religion की पुस्तक, पहली बार अधिग्रहीत की गयी हो तो उसे कोलन वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार मुख्य वर्ग **P Linguistics** के बाद तथा **R Philosopshy** से पूर्व व्यवस्थित किया जा सकेगा। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वर्गीकरण बहुआयामी **(Multi-dimensional)** ज्ञान को एक सीधी पंक्ति में व्यवस्थित करने के उद्देश्य की पूर्ति करता है।

पुस्तकालय वर्गीकरण के उद्देश्य की विवेचना के आधार पर इसके कार्यों का विवरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(i) ग्रन्थों के सुनियोजित क्रम के व्यवस्थापन में पुस्तकालय वर्गीकरण सहायता प्रदान करता है। यह पाठकों तथा पुस्तकालय कर्मचारियों के लिए भी अधिकतम सुविधाजनक है। यह संबंधित विषयों को सन्निकट लाता है। इसे हेनरी ब्लिस (Henry Bliss) ने सहव्यवस्थापन (Collocation) कहा है।

(ii) पुस्तकालय संग्रह चाहे जितना भी बड़ा हो, एक पाठक द्वारा वांछित किसी भी विषय के किसी भी प्रलेख की पहचान तथा उसके स्थान का निर्धारण करने में वर्गीकरण सहायक होता है। ग्रन्थों को उनके स्थान से शीघ्रता से पुनर्प्राप्त किया जा सकता है। तथा पुनः उन्हें मूल स्थान पर वापस रखा जा सकता है। इस प्रकार वर्गीकरण ग्रन्थों के स्थान निर्धारण, आगम-निर्गम, तथा प्रतिस्थापन को यंत्रीकृत रूप से संपन्न करता है।

(iii) यह ग्रन्थों को व्यवस्थित समूहों में व्यवस्थापित करने में सहायता करता है।

जैसे कि उन्हें निर्धारित खानों में रखा गया हो, और जब कोई नया प्रलेख पुस्तकालय के संग्रह में जोड़ा जाता है तो वर्गीकरण नवीन जोड़े गये ग्रन्थों को उसी विषय के अन्य ग्रन्थों के साथ उपयुक्त स्थान में व्यवस्थापित करता है।

(iv) ज्ञान जगत गत्यात्मक, सतत, निःसीम तथा निरन्तर वर्धनशील है। मानव ज्ञान में नवीन क्षेत्र या विषय लगातार जोड़े जा रहे हैं। जब पुस्तकालय संग्रह में किसी नवीन विषय का पहला ग्रन्थ जोड़ा जाता है। तो उससे संबंधित पहले से विद्यमान विषयों के बीच संबंध के स्तर के आधार पर, उसे उपयुक्त स्थान अपने आप प्राप्त हो जाता है।

(v) यह पुस्तक प्रदर्शनों तथा प्रदर्शनियों के आयोजन में सहायक होता है। किसी दिये गये प्रकरण या विषय पर पुस्तक चर्चा, गोष्ठी, सम्मेलन और प्रदर्शनी आयोजित करने के विशेष उद्देश्य से मुख्य संग्रह से कुछ प्रलेखों के प्रत्याहरण की सहूलियत भी यह प्रदान करता है।

(vi) यह देय-आदेय काउण्टर पर विभिन्न विषयों के ग्रन्थों के दैनिक आदान-प्रदान का अभिलेख रखने में सहायक होता है। यह एक पुस्तकालय द्वारा ऋण पर जारी किए गये ग्रन्थों की सांख्यिकी का संकलन करने में सहायक होता है जिससे विभिन्न विषयों के ग्रन्थों की माँग तथा उनके उपयोग का स्तर प्रदर्शित होता है। इस प्रतिपुष्टि से विभिन्न विषयों के लिए बजट का आवंटन करने में सहायता मिलती है तथा पुस्तकालय की पुस्तक चयन नीति को एक दिशा मिलती है। इस प्रकार एकत्र की गई सांख्यिकी को पुस्तकालय के वार्षिक प्रतिवेदन में शामिल किया जा सकता है।

(vii) भंडार सत्यापन पुस्तकालय प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष है। शेल्फलिस्ट के माध्यम से ग्रंथ संग्रह का कुशल तथा सम्पूर्ण भंडार सत्यापन करने में पुस्तकालय वर्गीकरण सहायक होता है।

(viii) यह पठन सूची के संकलन में सहायक होता है। यह विभिन्न स्तर के संदर्भ प्रश्नों का पक्ष-विश्लेषण करने में सहूलियत प्रदान करता है तथा अप्रत्यक्ष रूप से एक दक्ष संदर्भ सेवा में सहायक है।

(ix) विषय संघ सूचियों एवं विषय सूचियों के निर्माण में भी यह सहायक होता है। पुस्तकालयों में आपसी सहयोग एवं संसाधन सहभागिता में संघ सूचियाँ एक आवश्यक उपकरण मानी जाती हैं।

(x) वर्गीकृत सूचियों का निर्माण केवल वर्गीकरण पद्धति से ही संभव है। एक शोध पुस्तकालय में वर्गीकृत सूची को अनुवर्ण सूची की तुलना में अधिक पसंद किया जाता है।

(xi) यह विषय-संलेखों को सुनियोजित रूप से प्राप्त करने में सहायक है। वर्ग संख्या के आधार पर विशिष्ट विषय शीर्षक प्राप्त करने हेतु विषय शीर्षक की वर्गात्मक

सूची का उपयोग करने, अर्थात श्रृंखला विधि में यह सूचीकार की सहायता करता है।

(xii) विषय शीर्षकों के निर्माण तथा पर्यायकोश (Thesaurus) के निर्माण में वर्गीकरण के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है।

(xiii) आजकल ओपैक (OPAC: Online Public Access Catalogues)में वर्गीकरण के बहुत लाभ है। एक कम्प्यूटरीकृत सूची में, वर्ग संख्या क्षेत्र का उपयोग अन्य क्षेत्रों जैसे भाषा, तिथि यहाँ तक विषय शीर्षक के संसर्ग में किया जा सकता है तथा तार्किक ऑपरेटर जैसे या बूलियन लॉजिकल ऑपरेटर्स **(AND, OR, and NOT)** के साथ भी इसे उपयोग में लिया जा सकता हैं। वर्ग संख्या का उपयोग खोजों को व्यापक या संकीर्ण करने में भी किया जा सकता है। अन्य क्षेत्रों के संसर्ग से वर्ग संख्या द्वारा खोज सूचना पुनर्प्राप्ति प्रणाली की निपुणता बढ़ाती है जिसका वर्गीकरण एक उपकरण है।

(xiv) यह प्रलेखों में निहित ज्ञान के अधिकतम उपयोग के लिए व्यवस्थापन का आधार है। यह ग्रन्थपरक नियंत्रण तथा प्रलेखों की पुनर्प्राप्ति का दक्ष आधार है तथा पाठकों तथा पुस्तकालय कर्मचारियों के बहुत बड़े समय की बचत करने की युक्ति है। जैसा कि ह्यूम ने माना है कि ''वर्गीकरण पुस्तकों में ज्ञान की खोज में समय बचाने की यंत्रीकृत युक्ति है।''

1.4 सारांश (Summary)

किसी भी पुस्तक में उसके विभिन्न प्रकार के संग्रहों अर्थात पुस्तकों,पत्र-पत्रिकाओं, माइक्रोफिल्म एवं अन्य प्रलेखों का वर्गीकरण तथा सहायक क्रम में व्यवस्थापन अत्यन्त आवश्यक है इससे उसका उपयोग बढ़ता है। इस इकाई में वर्गीकरण शब्द के विभिन्न अर्थों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पुस्तकालय वर्गीकरण की परिभाषा, आवश्यकता, उद्देश्य और कार्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। वर्गीकरण की सहायता से ग्रन्थों को सहायक एवं सुविधाजनक क्रम में निधानियों (Book Shelves) में आसानी से व्यवस्थित किया जा सकता है जिससे उपयोगकर्ताओं को अपना वांछित ग्रन्थ प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है। विषय के अनुसार ग्रन्थों की क्रम व्यवस्था केवल पुस्तकालय वर्गीकरण द्वारा ही सम्भव है। पुस्तकालय सूची को क्रियाशील बनाने में वर्गीकरण का महती योगदान होता है। पुस्तकालय में संग्रह सत्यापन के कार्य को भी वर्गीकरण सुविधाजनक बनाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुस्तकालयों में वर्गीकरण एक ऐसी युक्ति है जो पुस्तकालय संग्रह को उपयोगी बनाती है। इसके महत्व को देखते हुए सेयर्स ने कहा था कि वर्गीकरण पुस्तकालयों की आधारशिला है।''

1.5 सम्बन्धित प्रश्न (Related Questions)

1.5.1 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. वर्गीकरण पद से क्या तात्पर्य है?
   (1) समूहबद्ध एवं क्रमबद्ध सत्ताएँ
   (2) सत्ताओं को मिश्रित करना
   (3) समान सत्ताओं को समूहबद्ध करना
   (4) समूहों को कृत्रिम अंकों द्वारा प्रस्तुत करना
2. किसी विषय/वस्तु को दो भागों में विभाजन को क्या कहते हैं?
   (1) द्विभाजन (2) विखण्डन
   (3) आसवन (4) उपरोक्त में से कोई नहीं
3. निम्नलिखित में से वर्गकार किसे कहते हैं?
   (1) वर्गीकरण पद्धति का निर्माता
   (2) पुस्तकों को वर्गांक देने वाला
   (3) वर्गीकरण का शोधार्थी
   (4) वर्गीकरण का शिक्षक
4. वर्गीकरण के तीन चरणों का विचार किसके द्वारा किया गया?
   (1) ड्यूवी (2) ब्लिस
   (3) रंगनाथन (4) सेयर्स
5. निधानियों में ग्रन्थ को क्रमानुसार रखने की सबसे उपयुक्त विधि कौन सी है?
   (1) लेखक द्वारा (2) विषय द्वारा
   (3) आकार द्वारा (4) रंग द्वारा
6. ''क्लासीफिकेशन'' पद किस भाषा से लिया गया है?
   (1) लैटिन (2) फ्रेंच
   (3) ग्रीक (4) अंग्रेजी
7. ब्लिस ने वर्गीकरण को समझाने हेतु तीन चरण- विभाजन करना, वर्गीकृत करना और वर्गीकरण करना बताए हैं -
   (1) सत्य (2) असत्य

1.5.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'वर्गीकरण' पद की विवेचना कीजिए?
2. वर्गीकरण को परिभाषित कीजिए?
3. ग्रन्थ वर्गीकरण की आवश्यकता की व्याख्या कीजिए?

1.5.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पुस्तकालय वर्गीकरण को परिभाषित करते हुए इसकी आवश्यकता की विस्तृत विवेचना कीजिए?
2. पुस्तकालय वर्गीकरण के प्रमुख उद्देश्य और कार्यों का वर्णन कीजिए।

1.6 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (4), 2. (1), 3. (2), 4. (2), 5. (2), 6. (1), 7. (1)

1.7 संदर्भ एवं इतर पाठ्य सामग्री (Reference and other reading Materials)

1. चम्पावत, जी.एस. (1993) पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त, जयपुर : आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स ।
2. ध्यानी, पुष्पा (1999) पुस्तकालय वर्गीकरण, नई दिल्लीः एस.एस. पब्लिकेशन्स।
3. शर्मा, पाण्डेय एस.के. (1996). सरलीकृत पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त दिल्ली : ज्ञान गंगा ।
4. शर्मा, बी.डी. (1998). सैद्धान्तिक ग्रंथालय वर्गीकरण आगरा : वाई.के.पब्लिशर्स।
5. त्रिपाठी, एस.एम. (1997). आधुनिक ग्रन्थालय वर्गीकरण : सैद्धान्तिक विवेचना आगराः श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी।
6. Krishan Kumar (1988). Theory of classification 4th. Ed. New Delhi, Vikas Publishing House.
7. Mills, J. (1996). A modern outline of library classification. Bombay: Asia Publishing House.
8. Rangnathan, S.R. (1962). Elements of library classification. 3rd. Ed. Bombay: Asia Publishing House.

इकाई -2 : पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त

- 2.2.1 सिद्धान्त का महत्व
- 2.2.2 सिद्धान्त की आवश्यकता
- 2.2.3 सिद्धान्त का विकास

2.3 पुस्तकालय वर्गीकरण के विवरणात्मक सिद्धान्त

- 2.3.1 ई.सी.रिचर्डसन (1860-1939)
- 2.3.2 जे.डी. ब्राउन (1862-1904)
- 2.3.3 ई.डब्लू. ह्यूम (1859-1954)
- 2.3.4 डब्लू.सी.बी. सेयर्स (1851-1960)
- 2.3.5 एच.ई.ब्लिस (1870-1955)

2.4 पुस्तकालय वर्गीकरण का गत्यात्मक सिद्धान्त

- 2.4.1 एस.आर. रंगनाथन (1892-1972)

2.5 सारांश

2.6 सम्बन्धित प्रश्न - बहुविकल्पीय, लघुउत्तरीय और दीर्घ उत्तरीय

2.7 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

2.8 संदर्भ एवं इतर पाठ्य सामग्री

2.0 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त को संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। सिद्धान्त से अभिप्राय ऐसे व्यवस्थित नियमों से है, जो किसी विषय में और आगे अन्वेषण करने के कार्य को तथा उसके विकास के लिए आधार प्रदान करते हैं। ये विद्यमान परिदृश्यों की विवेचना करते हैं। सिद्धान्त समय के साथ साथ विकास की प्रक्रिया से गुजरता रहता है तथा इसमें निरंतर परिवर्तन और परिष्कार होता रहता है। पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त के विकास के संबंध में भी यही सच है।

पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त के विकास की दो प्रमुख अवस्थाएं हैं। अवस्था-1 में हम **विवरणात्मक सिद्धान्त** के उद्‌भव को देखते हैं जो पुस्तकालय वर्गीकरण की पद्धतियों की अभिकल्पना तथा उनके उपयोग का निचोड़ है। दूसरी ओर अवस्था-2 में, **गत्यात्मक सिद्धान्त** का विकास है, जिससे वर्गीकरण पद्धतियों की अधिक विस्तार से अभिकल्पना करने में मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

अवस्था-1 में, जे.डी. ब्राउन, ई.सी.रिचर्डसन, एडवर्ड ह्यूम, डब्लू.सी.बी. सेयर्स तथा एच.ई.ब्लिस जैसे निष्ठावान विचारकों में से कुछ ने अपने लेखन कार्यों द्वारा तथा कुछ ने अपनी वर्गीकरण पद्धतियों द्वारा, पुस्तकालय वर्गीकरण के विवरणात्मक सिद्धान्त के विकास में योगदान किया है।

अवस्था-2 में हमारा ध्यान गत्यात्मक सिद्धान्त की ओर जाता है। इसे गत्यात्मक इसलिए कहा गया है कि यह पुस्तकालय वर्गीकरण के लिए एक प्रविधि गढ़ने में समर्थ हुआ। रंगनाथन इस सिद्धान्त के प्रमुख शिल्पी थे। उन्होंने उन आधारभूत नियमों, अभिधारणाओं, उपसूत्रों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिन्होंने पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त के विकास को एक नई दिशा प्रदान की। यह नया सिद्धान्त ऐसी पुस्तकालय वर्गीकरण पद्धतियों को अभिकल्पित करने तथा उनका मूल्यांकन करने में सहायक है, जो ज्ञान की वृद्धि एवं विकास से उत्पन्न चुनौतियों का सामना कर सकती हों। इस प्रकार रंगनाथन ने वर्गीकरण को, जो सहज ज्ञान पर आधारित था, उद्देश्यपरक विधियों पर आधारित विज्ञान के रूप में परिवर्तित कर दिया।

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात आप निम्नलिखित बातों से परिचित हो सकेंगे -

- पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्तों का महत्त्व एवं उनकी आवश्यकता;
- पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्तों के विकास की दो अवस्थाओं; (विवरणात्मक सिद्धान्त और गत्यात्मक सिद्धान्त)
- विवरणात्मक सिद्धान्तों में रिचर्डसन, ब्राउन, ह्यूम, सेयर्स और एच.ई.ब्लिस के योगदान; तथा वर्गीकरण के गत्यात्मक सिद्धान्त में रंगनाथन के योगदान।

2.2 पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त (Theory of Library Classification)

सामान्य अर्थ में सिद्धान्त के तात्पर्य किसी विषय अथवा वस्तु के प्रयोग के लिए प्रमाणिक मानदण्ड के रूप में मार्गदर्शक स्थापित करना है। पुस्तकालय वर्गीकरण को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने तथा उसकी व्यवहारिक कार्य प्रणाली को एक ठोस,

सुव्यवस्थित एवं उपयोगी आधार प्रदान करने हेतु पुस्तकालय विज्ञान के विभिन्न विद्वानों ने कुछ आधारभूत मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं जो मुख्य रूप से वर्गीकरण पद्धति के निर्माण एवं उनका प्रयोग करने में मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। डॉ.एस.आर.रंगनाथन ने इन सिद्धान्तों को मानकीय सिद्धान्तों की संज्ञा दी है। ई.सी.रिचर्डसन ने मानदण्ड (Criteria), बरविक सेयर्स ने उपसूत्र (Canons) तथा एवलिन ब्लिस ने सिद्धान्त (Principles) के नाम से इन मानकीय सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। इन मानकीय सिद्धान्तों को ऐसे प्रामाणिक नियम, आदर्श, कसौटी अथवा मानदण्ड कहा जा सकता है जो वर्गीकरण के सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रयोग हेतु मानक मार्गदर्शक स्थापित करने तथा वर्गीकरण विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने में सहायक होते हैं।

2.2.1 सिद्धान्त का महत्त्व (Importance of Theory)

सिद्धान्त वस्तुतः व्यवस्थित नियमों के समूह को इंगित करता है, जो किसी विषय के विकास तथा उसमें और अधिक अनुसंधान करने का आधार प्रदान करते हैं। सिद्धान्त विद्यमान परिदृश्य के 'क्या' और 'क्यों' की व्याख्या करता है। यह किसी विषय को अनुशासन या शास्त्र के रूप में स्थापित कराता है। यह एक विषय को वैज्ञानिक आधार, प्रतिष्ठा एवं सम्मान दिलाता है। एक विषय के विकास में इसका कितना महत्व है, इसके सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं हैं।

2.2.2 सिद्धान्त की आवश्यकता (Need of Theory)

यदि हम पुस्तकालय वर्गीकरण के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि इसके विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सम्पूर्ण ज्ञान जगत के विषयों में से, बहुत कम विषयों का ही इसके द्वारा वर्गीकरण करना सम्भव था और स्थूल वर्गीकरण से ही उस समय की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ये वर्गीकरण पद्धतियाँ उस समय की अधिकांश आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित की गयी थीं। इनका उद्देश्य उस समय की आवश्यकताओं को पूरा करना मात्र था, न कि किन्हीं ऐसे सिद्धान्तों को ध्यान में रखना, जिन्हें बाद में समय की कसौटी पर परखा जा सके। इन पद्धतियों ने उस समय की तात्कालिक तथा अल्पकालीन समस्याओं को हल कर दिया, किन्तु कालान्तर में विषयों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप विद्यमान पद्धतियाँ ज्ञान-जगत के विभाजन में अपर्याप्त सिद्ध हुई। इसके साथ ही प्रलेखों में निहित विषयों की जटिलताओं में भी वृद्धि हुई जिसके कारण भी यह आवश्यक हो गया कि ज्ञान का सूक्ष्मता या गहनता से वर्गीकरण किया जाय। इस जटिलता के कारण पुस्तकालय वर्गीकरण के एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता महसूस की गई जो ज्ञान की असीमित वृद्धि की चुनौती का सामना कर सके।

इस प्रकार ये सिद्धान्त वर्गाचार्य (Classificationist) एवं वर्गकार (Classifier) दोनों के लिए ही निम्नलिखित रीति से सहायक सिद्ध होते हैं -

(i) वर्गीकरण पद्धति की संरचना तथा संशोधन करने एवं गहन वर्गीकरण अनुसूची के निर्माण हेतु स्पष्ट निर्देश प्रदान करके वर्गाचार्य के लिये मार्गदर्शक का कार्य करते हैं।

(ii) पुस्तकालय में वर्गीकरण पद्धति का प्रयोग करते समय नये उत्पन्न एकल विचारों एवं विषयों के लिए एकल अंकों का वहिर्वेशन (Extrapolation) तथा अन्तर्वेशन (Interpolation) करने में पद्धति में दिये गये नियमों तथा अनुसूचियों की व्याख्या करने एवं समझने में वर्गाकार के लिए मार्गदर्शक का कार्य करते हैं।

(iii) मानकीय सिद्धान्त दो विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। रंगनाथन के शब्दों में 'मानकीय सिद्धान्तों के आधार पर किसी भी वर्गीकरण पद्धति का मूल्यांकन सही रूप से किया जा सकता है। इसके आधार पर एक समदर्शी के रूप में विभिन्न पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है तथा यह भी पता लगाया जा सकता है कि क्या पद्धति नई है? यदि पद्धति में प्रयुक्त अभिधारणाएँ वर्तमान पद्धतियों से अधिक भिन्न हैं तो पद्धति नई है, तथा

(iv) ये सिद्धान्त पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्तों के विकास में भी सहायक होते हैं।

2.2.3 वर्गीकरण के सिद्धान्तों का विकास (Development of Theory of Classification)

ड्यूवी डेसीमल क्लैसिफिकेशन पद्धति के निर्माण होने के बाद के 50 वर्षों में रिचर्डसन एवं सेयर्स ने उस समय की ज्ञात पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया और वर्गीकरण के सिद्धान्त का विकास किया। मोटे तौर पर यह एक "विवरणात्मक प्रतिपादन" तथा "व्याख्यात्मक स्पष्टीकरण" मात्र था। यह सिद्धान्त स्थिर था, गत्यात्मक नहीं। पारखी की पुस्तक 'लाइब्रेरी क्लासिफिकेशनः इवोल्यूशन आफ ए डाइनेमिक थीऑरी' **(Library Classification : Evolution of a Dynamic Theory)** के अनुसार उस समय के वर्गीकरण प्रणाली के प्रणेताओं ने अपनी पद्धतियों के निर्माण में जिन व्यवहारिक प्रक्रियाओं का अनुसरण किया उसमें विवरणात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया गया था तथा उन्हें ही वर्गीकरण पद्धतियों का प्रारूप तैयार करने का मापदण्ड समझा जाता था।

मनोवैज्ञानिक जीवोन्स (W.S.Jevons) ने अपनी पुस्तक The Principle of Science: a treatise on logic and scientific method (1874) में पुस्तक वर्गीकरण की प्रक्रिया का बहुत ही तर्कसंगत ढंग से विवरण प्रस्तुत किया है। किन्तु 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्तों के प्रतिपादन के दृष्टिकोण से पुस्तकालय विज्ञान के किसी भी विद्वान की भूमिका नगण्य रही है। इसीलिए ई.सी.रिचर्डसन की 1901 में प्रकाशित पुस्तक 'Classification: Theory and practice' को ही पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्तों के विकास के दृष्टिकोण से प्रथम प्रयास माना जाता है। वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्तों के दृष्टिकोण से भी यह पुस्तक एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है।इस पुस्तक के परिशिष्ट में रिचर्डसन ने वर्गीकरण पद्धतियों के इतिहास से सम्बन्धित एक लेख भी दिया है। जो उस समय तक की वर्गीकरण पद्धतियों के बारे में पूर्ण जानकारी प्रदान करता है। इन सभी पद्धतियों में ज्ञान जगत का विभाजन, अंकनों का चुनाव, तथा पद्धति के प्रयोग का आधार स्पष्ट सिद्धान्त न होकर वर्गाचार्य के पुस्तकालय कार्य का अनुभव, उसका बौद्धिक स्तर तथा परीक्षण प्रणाली (trial and error) पर आधारित थे जिसके फलस्वरूप पुस्तकालयों में पुस्तकों की व्यवस्था तथा प्रयोग में अनगिनत समस्याओं का सामना करना पड़ता था। रिचर्डसन ने कुछ सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर यह आभास दिलाने का प्रयास किया कि वर्गीकरण पद्धति में स्पष्ट सिद्धान्तों का प्रयोग आवश्यक है। तत्पश्चात अन्य पुस्तकालय वैज्ञानिकों जैसे सेयर्स, ब्लिस, रंगनाथन आदि ने वर्गीकरण के लिए महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

दूसरी ओर, 1949 के बाद रंगनाथन और उनके सहयोगियों ने धीरे-धीरे, पुस्तकालय वर्गीकरण के एक गत्यात्मक सिद्धान्त को विकसित किया। गत्यात्मक सिद्धान्त का प्रथम समेकित विवरण 1957 में रंगनाथन द्वारा रचित 'प्रोलेगोमेना टू लाइब्रेरी क्लासिफिकेशन' (Prolegomena to Library Classification) में प्रकाशित हुआ। इसे पुनः 1962 में प्रलेखन शोध एवं प्रशिक्षण केन्द्र (DRTC: Documentation Research and Training Centre) की स्थापना के बाद परिष्कृत किया गया। वर्गीकरण सिद्धान्त में इससे अधिक गहनता आई, तथा इसे और अधिक गत्यात्मक बनाने और पुस्तकों तथा आलेखो- दोनों का वर्गीकरण करने में सुविधा हुई। परिणामस्वरूप आलेखों के वर्गीकरण के लिए गहन वर्गीकरण अनुसूचियाँ निर्मित करने का कार्य सक्रियता से प्रगति करने लगा। ऐसे गत्यात्मक सिद्धान्त की आवश्यकता स्पष्ट है, क्योंकि ऐसा सिद्धान्त ही भविष्य में विषय वर्गीकरण के विकास में मार्ग दर्शन प्रदान कर सकता है।

2.3 पुस्तकालय वर्गीकरण के विवरणात्मक सिद्धान्त (Descriptive Theory of Library Classification)

पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्तों के विकास के प्रथम चरण (1901-1937) को विवरणात्मक सिद्धान्तों के युग की संज्ञा दी जाती है। इस युग का वर्गाचार्य अपने व्यावहारिक अनुभव, अन्तर्ज्ञान व बौद्धिक क्षमता के आधार पर ही वर्गीकरण पद्धति की प्रक्रिया का निर्धारण करता था इसलिए इस अवधि में प्रतिपादित सिद्धान्तों की परिकल्पना भी इसी व्यावहारिक वर्गीकरण के अनुरूप थी। अर्थात- पहले वर्गीकरण का प्रयोग तत्पश्चात सिद्धान्तों का सृजन। इस कारण व्यावहारिक वर्गीकरण पर इन सिद्धान्तों का प्रभाव नगण्य था। व्यावहारिक वर्गीकरण को आधार मान कर प्रतिपादित किये गये ये सिद्धान्त वर्गीकरण पद्धति को आगे विकसित करने हेतु मार्ग दर्शक की भूमिका को पूरा करने में पूर्ण रूप से असमर्थ रहे। इस अवधि में प्रतिपादित मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :

2.3.1 ई.सी.रिचर्डसन (E.C.Richardson) (1860-1939)

पुस्तकालय विज्ञान के क्षेत्र में सिद्धान्तों के सृजन की दिशा में प्रथम प्रयास ई.सी.रिचर्डसन का था। रिचर्डसन ने पुस्तकालय वर्गीकरण हेतु कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का मानदण्डों (criteria)के रूप में प्रतिपादन किया जिनका वर्णन रिचर्डसन की 1901में प्रकाशित पुस्तक (Classification : Theoretical and Practical)में मिलता है। रिचर्डसन ने हार्टफोर्ड थियोलॉजिकल सेमीनरी (Hartford Theological Seminary) जिसके वे पुस्तकालयाध्यक्ष थे, के लिए वर्गीकरण पद्धति भी बनाई। प्रिंसटन विश्वविद्यालय पुस्तकालय के लिए भी रिचर्डसन ने वर्गीकरण पद्धति विकसित की जिसका प्रयोग आज भी इस पुस्तकालय में पुस्तकों को फलकों में व्यवस्थित करने के लिए किया जाता है। यद्यपि कुछ प्रलेखों की व्यवस्था के लिए संशोधित लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस वर्गीकरण पद्धति का भी प्रयोग किया जाता है। रिचर्डसन द्वारा प्रतिपादित मानदण्ड (Criteria) निम्नलिखित हैं :-

1. वर्गीकरण में जहाँ तक संभव हो सके, वस्तुओं या सत्ताओं के अन्तर्निहित क्रम का ही प्रयोग करना चाहिए। सही ढंग से वर्गीकृत पुस्तकालय एक लघु ब्रह्माण्ड की तरह ही है। मनुष्य का मस्तिष्क, जो सब कुछ जानता है, इस दृष्टिकोण से अधिक परिपूर्ण हो जाता है किन्तु यथार्थ में कोई भी मनुष्य सब कुछ अपने मष्तिष्क में उस तरह नहीं रख सकता है जैसे एक पुस्तकालय रखता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि वर्गीकरण के लिए जटिलता क्रम अथवा ऐतिहासिक क्रम अथवा, यदि आवश्यक हो तो, विकास का क्रम प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

2. वर्गों का विभाजन सूक्ष्म होना चाहिए।

3. वस्तुओं को उनकी समानता एवं असमानता के आधार पर व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

4. ग्रन्थों का संग्रह उपयोगार्थ होता है, उन्हें उपयोगार्थ ही व्यवस्थित किया जाता है अतः उपयोग ही वर्गीकरण का उद्देश्य है।

5. वर्गीकरण पद्धति में अंकन का प्रावधान होना चाहिए। अंकन ऐसा होना चाहिए कि उसके अपरमित विभाजन किए जा सकें। तदनुसार दशमलव आधारित मिश्रित अंकन के उपयोग को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। अंकन स्मृति सहायक विशेषताओं से युक्त होना चाहिए।

किसी भी वर्गीकरण पद्धति के सहज एवं सही प्रयोग के लिए अनुक्रमणिका (Index) का प्रावधान अति आवश्यक है। अतः इसमें विस्तृत तथा सुस्पष्ट अनुक्रमणिका दी जानी चाहिए।

2.3.2 जे.डी.ब्राउन (James Duff Brown) (1862.1914)

वर्गीकरण के सिद्धान्तों को व्यावहारिक वर्गीकरण में प्रयुक्त करने के दृष्टिकोण से ब्राउन को अग्रगामी पुस्तकालय वैज्ञानिक माना जा सकता है। 1898 में ब्राउन ने वर्गीकरण विषय पर Manual of Library Chassification पुस्तक लिखी। यह पुस्तक वर्गीकरण विषय पर अंग्रेजी भाषा में पहली पुस्तक मानी जाती है। इस पुस्तक में दिये गये उदाहरणों में वर्गीकरण के कुछ सिद्धान्त अन्तर्निहित थे। इसीलिए इसे पुस्तकालय तकनीक की अद्वितीय पुस्तक माना जाता है। इस पुस्तक में कुछ संशोधन करने के बाद 1912 में इसे Library classification and Cataloguing के नाम से प्रकाशित किया गया। 1890 के दशक में ब्राउन ने दो वर्गीकरण पद्धतियाँ बनाई- क्विन ब्राउन क्लासीफिकेशन 1894 में तथा एडजस्टेबल क्लासीफिकेशन 1897 में। किन्तु दोनों ही पद्धतियाँ उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। इसलिए 1906 में ब्राउन ने Subject Classification का निर्माण किया जिसमें कुछ स्पष्ट सिद्धान्तों का प्रयोग करके पद्धति को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयत्न किया गया। हालांकि उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त उपयोगी एवं प्रभावी है किन्तु जिस सीमा तक ब्राउन ने उनका प्रयोग किया है उससे उनकी व्यावहारिकता पर संदेह होता है।

'सब्जेक्ट क्लासीफिकेशन' की रूपरेखा का मुख्य आधार यह अवधारणा है कि प्रत्येक विज्ञान तथा कला के उदभव का एक निश्चित स्रोत होता है। सत्ताओं के उद्‌भव के क्रम में प्रथम मुख्य तत्व पदार्थ अथवा शक्ति (Matter or Force) है जिससे जीवन की उत्पत्ति होती है। जीवन (Life) से मष्तिष्क (Mind) की उत्पत्ति तथा मष्तिष्क

के एक निश्चित विकास के बाद अभिलेखों (Records) की उत्पत्ति होती है। इसी को आधार मान कर ब्राउन ने पद्धति में चार मुख्य विभाजनों - Matter or Force, Life, Mind and Records के अन्तर्गत सम्बन्धित मुख्य वर्गों को व्यवस्थित किया है। मुख्य वर्गों में विषयों को व्यवस्थित करने के लिए ब्राउन ने निम्नलिखित दो सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया -

1. एक - स्थान का सिद्धान्त (One Place Theory)

इस सिद्धान्त की मांग है कि विषयों को मूर्त एवं निश्चित विषय के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार पुस्तक वर्गीकरण में सामान्य दृष्टिकोणों पर यदा-कदा एवं प्रासंगिक रूप से प्रयुक्त होने वाले विषयों के स्थान पर मूर्त एवं स्थायी विषयों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ब्राउन के अनुसार प्रत्येक विषय की विवेचना तथा व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणों से की जा सकती है तथा प्रत्येक दृष्टिकोण पर विपुल साहित्य प्रकाशित हो सकता है। उदाहरण के लिए गुलाब (Rose)विषय का विवेचन वनस्पति शास्त्र, उद्यानविज्ञान, इतिहास, भूगोल, अलंकरण, प्रतीकवाद, वांङ्मय सूची आदि दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सुगन्ध, रोग खरपतवार आदि के सन्दर्भ में भी गुलाब पर साहित्य लिखा जा सकता है। ब्राउन के दृष्टिकोण से गुलाब मूर्त विषय को तथा उस पर विभिन्न दृष्टिकोण (Standpoints) सामान्य विषयों को ही प्रस्तुत करते हैं। गुलाब विषय में एक अध्ययनकर्ता की रूचि स्थायी होती है जबकि वांङ्मय सूची निर्माता की रूचि केवल प्रासंगिक होती है। इसलिए सामान्य दृष्टिकोण अथवा प्रासंगिक विषयों के स्थान पर स्थायी एवं मूर्त विषयों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

2. आधार-विषय के समीप रखने का सिद्धान्त (To keep as near as possible to the Subject on which it is base)

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक विषय को यथा संभव उस विज्ञान के निकट रखना चाहिए जिस पर वह आधारित है। इसलिए गुलाब को वनस्पति शास्त्र के अन्तर्गत व्यवस्थित किया जाना चाहिए। ब्राउन ने अपनी सम्पूर्ण पद्धति में व्यावहारिकता को प्राथमिकता दी है।

2.3.3 ई.डब्लू. ह्यूम (E.Wyndham Hulme) (1859-1954)

ह्यूम ने प्रकाशित साहित्य के स्वरूप एवं विशिष्ट विशेषताओं को ध्यान में रखकर मानकीय सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है।ह्यूम के अनुसार पुस्तक वर्गीकरण तथा ज्ञान वर्गीकरण का उद्देश्य पूर्णरूप से भिन्न है। उनका विचार था कि वर्गीकरण के विभिन्न विद्वानों ने ज्ञान के अमूर्त स्वरूप के वर्गीकरण के विचार को ही अधिक महत्व दिया है तथा साहित्य में अभिलिखित ज्ञान का वर्गीकरण करते समय आने वाली समस्याओं की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उनका मानना था कि वर्गीकरण पद्धति की

अनुसूचियों का स्वरूप प्रकाशित साहित्य की आवश्यकतानुसार ही बनाया जाना चाहिए। इसी धारणा को आधार मानकर ह्यूम ने कुछ मौलिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है।

ह्यूम ने किसी वर्गीकरण पद्धति की रचना नहीं की है। अपने सिद्धान्तों की व्याख्या उन्होंने अपने छः लेखों में की जो पुस्तक वर्गीकरण के सिद्धान्त (Principles of Book Classification) शीर्षक के अन्तर्गत Manual of Library Chassification अक्टूबर 1911 से मई 1912 के बीच प्रकाशित हुए। किन्तु ह्यूम इन लेखों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित न कर सके। 1950 में ब्रिटिश पुस्तकालय संघ ने इन लेखों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया ह्यूम द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त (Principles) निम्नलिखि हैं -

1- साहित्यिक प्रमाण का सिद्धान्त (Principle of Literary Warrant)

2. विषय संस्थिति का सिद्धान्त (Principle of Collocation)

3. वर्गों का सापेक्षता का सिद्धान्त (Principle of Relativity of Class)

4. समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Coordination)

1. साहित्यिक प्रमाण का सिद्धान्त (Principle of Literary Warrant)

ह्यूम का मानना था कि पुस्तक वर्गीकरण को पूर्णरूप से ज्ञान वर्गीकरण पर आधारित नहीं किया जाना चाहिए। उनके अनुसार पुस्तक वर्गीकरण विज्ञान नहीं अपितु एक कला है जिसमें बच्चों के पहेलीनुमा खिलौने की तरह विभिन्न हिस्सों को एक साथ जोड़ने के लिए प्रत्येक टुकड़े अथवा हिस्से से पूर्व परिचित होना आवश्यक है। इसलिए एक व्यक्ति द्वारा बनाई गई वर्गीकरण पद्धति कभी भी संतोषजनक नहीं हो सकती है। क्योंकि एक पुस्तकालयाध्यक्ष चाहे कितना ही जानकार क्यों न हो साहित्य की सभी शाखाओं की साधारण सी जानकारी भी रखना उसके लिए संभव नहीं है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर ह्यूम ने साहित्यिक प्रमाण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार साहित्यिक प्रमाण का अर्थ है एक वर्गीकरण पद्धति जो दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक पद्धति की तरह ज्ञान वर्गीकरण पर आधारित न होकर प्रकाशित पुस्तकों के विषय पर आधारित होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्गीकरण पद्धति का निर्माण प्रकाशित पुस्तकों के समूह पर आधारित होना चाहिए न कि अमूर्त विषय जगत के आधार पर। इसलिए जब किसी विषय पर यथेष्ट मात्रा में पुस्तकें प्रकाशित होती हैं तब ही उस विषय को वर्गीकरण पद्धति से सूचीबद्ध किया जाना चाहिए।

इस सिद्धान्त का सबसे अधिक उपयोग 'लायब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण पद्धति' में किया गया है। रंगनाथन ने भी सहायक अनुक्रम के लिए सिद्धान्त के रूप

में इस सिद्धान्त का प्रयोग 'कृषि' मुख वर्ग में विभिन्न फसलों को सुव्यवस्थित करने के लिए किया है। तथापि रंगनाथन का मानना है कि इस सिद्धान्त के प्रयोग में विवेक और सावधानी की अति आवश्यकता है।

यद्यपि ह्यूम ने तीन अन्य निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया है किन्तु ''साहित्यिक प्रमाण के सिद्धान्त'' के लिए ही वे प्रसिद्ध है।

2. विषय संस्थिति का सिद्धान्त (Principle of Collocation)

यह सिद्धान्त प्रलेखों की उपयोगिता के दृष्टिकोण से समान विषयों के प्रलेखों को साथ-साथ व्यवस्थित करने की माँग करता है।

3. वर्गों की सापेक्षता का सिद्धान्त (Principle of Relativity of Class)

इस सिद्धान्त की मांग है कि एक वर्ग के लिए अन्य सम्बन्धित विषयों में भी वैकल्पिक स्थान होने चाहिए।

4. समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Coordination)

इस सिद्धान्त के अनुसार एक समकक्ष वर्ग से दूसरे समकक्ष वर्ग के बीच की दूरी कम करने के दृष्टिकोण से वर्गों को उनकी समान विषय-वस्तु के क्रम में ही व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

ह्यूम द्वारा प्रतिपादित ये चार सिद्धान्त पुस्तक वर्गीकरण के दृष्टिकोण से पूर्ण नहीं है।ब्लिस तथा रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त वर्गीकरण के विभिन्न सूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करते हैं जबकि ह्यूम ने कई महत्वपूर्ण धारणाओं पर भी विचार नहीं किया है। ब्लिस के अनुसार ह्यूम के सिद्धान्तों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाय तो वे न तो प्रामाणिक है न ही व्यावहारिक।

2.3.4 डब्ल्यू. सी.बी. सेयर्स (W.C.B. Sayers) (1861-1860)

विलियम चार्ल्स बरविक सेयर्स 1905 में लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स में स्टेनले जास्ट (Stenley Jast) के शिष्य थे। सेयर्स ने यह स्वीकार किया है कि जास्ट ने ही उनमें पुस्तकालय वर्गीकरण के प्रति रूझान पैदा किया था। सेयर्स का आरम्भ से ही अपनी विभिन्न पुस्तकों व लेखों के माध्यम से वर्गीकरण के सिद्धान्तों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। उनके द्वारा वर्गीकरण पद्धति की रचना हेतु उपसूत्र तथा पुस्तकों को वर्गीकृत करने हेतु नियम इसके उदाहरण हैं। 1907 में सेयर्स ने पुस्तकालय सहायकों के संघ में एक लेख वर्गीकरण के कुछ सिद्धान्त (Some Principles of Classification)प्रस्तुत किया जो उस समय एक अज्ञात विषय था। 1907 में ही उन्होंने वर्गीकरण के कई नियमों को एक साथ व्यवस्थित कर उनको उपसूत्र की संज्ञा दी। तथा इन उपसूत्रों का ब्राउन की पद्धति Subject classification में परीक्षण किया। इस प्रकार

'वर्गीकरण के उपसूत्र' पद का वर्गीकरण विषय में प्रयोग करने का श्रेय सेयर्स को ही जाता है। अपने अध्यापन के अनुभव के आधार पर उन्होंने 1913 में व्यावहारिक वर्गीकरण में संक्षिप्त पाठ्यक्रम (A Short Course in Practical Classification) शीर्षक एक पुस्तक प्रकाशित की। बाद में सेयर्स ने अपनी पुस्तक पुस्तकालय वर्गीकरण का एक परिचय (An Introduction to Library Classification Ed. 2, 1922) में इसे समाविष्ट कियां यह पुस्तक तथा वर्गीकरण की पुस्तिका (Manual of Classification, 1926) दोनों ही उनके अध्यापक के रूप में दिये गये व्याख्यानों पर आधारित हैं। वर्गीकरण के सिद्धान्तों के विकास में इन दोनों ही पुस्तकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, क्योंकि इनमें वर्गीकरण के आधारभूत सिद्धान्तों, नियमों तथा विभिन्न पहलुओं की व्याख्या की गयी है। 1915 मे सेयर्स की वर्गीकरण के उपसूत्र (Canons of classification) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें पुस्तकालय वर्गीकरण के मूलतत्वों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया था। बाद में इसी पुस्तक की रूपरेखा के आधार पर सेयर्स ने निम्नलिखित तीन पुस्तकें लिखीं -

1. वर्गीकरण का व्याकरण (Grammer of Classification)
2. पुस्तकालय वर्गीकरण का परिचय (Introduction to Library Classification)
3. वर्गीकरण की नियम पुस्तिका (Manual of Classification)

इस प्रकार सेयर्स ने एक अज्ञात किन्तु आधारभूत विषय-वर्गीकरण के सिद्धान्तों को न केवल प्रचलित किया अपितु उसके लिए सुव्यस्थित आधार भी प्रदान किया। वर्गीकरण सिद्धान्त में सेयर्स के इस महान योगदान को रंगनाथन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है - ''क्रमसूचक अंकों की वर्गीकरणात्मक भाषा के सन्दर्भ में सेयर्स का कार्य वर्गीकरण हेतु व्याकरण की रचना के समान है। सम्पूर्ण पुस्तकालय वर्गीकरण विषय को न केवल अंकन स्तर पर अपितु वैचारिक तथा शाब्दिक स्तर से देखा जाय तो सेयर्स का योगदान पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्तों की रचना के समान है। ई.सी.रिचर्डसन तथा जेम्स डफ ब्राउन ने भी इस क्षेत्र में कुछ कार्य किये हैं किन्तु चिरकाल तक प्रभावित करने वाले सिद्धान्तों को पूर्ण स्वरूप प्रदान करने वाले सेयर्स हैं।''

- **सेयर्स द्वारा प्रतिपादित उपसूत्र**

सेयर्स द्वारा प्रतिपादित पांच उपसूत्रों का वर्णन उनकी पुस्तक Manual of Classification में किया गया है।इन पाँच उपसूत्रों को अधिक स्पष्ट एवं व्यावहारिक बनाने हेतु सेंयर्स ने इनको 29 उपसूत्रों में विभाजित किया है। सेयर्स के पाँच उपसूत्र निम्नलिखित हैं -

1. परिभाषा के उपसूत्र

परिभाषा के 6 उपसूत्र हैं जिनमें पुस्तकालय वर्गीकरण से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया है। इनके अनुसार -

1. वर्गीकरण शब्द में चार स्वीकृत अर्थ हैं -

(अ) वर्गीकरण एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो वस्तुओं अथवा सत्ताओं एवं अवधारणाओं में समानता तथा एकत्व की पहचान कर उनके आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट करता है।

(ब) वर्गीकरण वास्तविक वस्तुओं को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है।

(स) शब्दों अथवा पदों में लिखित अथवा मुद्रित अनुसूचियो, जो वर्गीकरण की प्रणाली चित्रित करती है को वर्गीकरण पद्धति कहा जाता है।

(द) सत्ताओं अथवा पुस्तकों को वर्गीकरण पद्धति में उनके उपयुक्त स्थान पर रखने की क्रिया को वर्ग निर्धारण (Classing) कहा जाता है।

2. ज्ञान जगत की भूतकाल, वर्तमान तथा अनुमानित भविष्य में विद्यमान सभी सत्ताएं वर्गीकरण के लिए विषय हो जाती है।।

3. एक सामान्य वर्गीकरण पद्धति सम्पूर्ण ज्ञान जगत को सम्मिलित करती है। जबकि विशिष्ट वर्गीकरण पद्धति मात्र कुछ हिस्से को जैसे प्रकृति विज्ञान अथवा समाज विज्ञान ।

4. वर्ग (Class) अवधारणाओं तथा वस्तुओं का एक समूह है जिसका संकलन उनकी कुछ ऐसी समानताओं के आधार पर किया जाता है जो उनको एकरूपता प्रदान कर सकें। इसी समानता को वर्गीकरण में अभिलक्षण (Characteristics) कहा जाता है।

5. वर्गों के संकलन को एक व्यवस्थित क्रम में रखना ही वर्गीकरण पद्धति है।

6. पद्धति में प्रयुक्त क्रम उस सिद्धान्त के आधार पर होता है जिसे वर्गाचार्य पाठकों के लिए सबसे उपयोगी समझता है।

2. विभाजन के उपसूत्र -

इस उपसूत्र को छः उपसूत्रों में विभाजित किया गया है। ये उपसूत्र वर्गीकरण पद्धति में वर्गों को विभाजित करने के अभिलक्षणों, क्रम में व्यवस्थित करने का ढंग तथा चुने गये अभिलक्षण आदि के बारे में मार्गदर्शन करते हैं।

1. वर्गों में सत्ताओं को उनकी समानता एवं उनकी असामानता के आधार पर पृथक किया जाता है। चुनी गयी समानता (विशेषता) प्राकृतिक अथवा कृत्रिम हो सकती है।

(अ) प्राकृतिक या स्वाभाविक विशेषता वर्गीकृत सत्ताओं का वह प्राकृतिक गुण होता है जो उनमें अन्तर्निहित (Inherent) तथा अपृथक्करणीय (inseparable) होता है।

(ब) कृत्रिम विशेषता वर्गीकृत सत्ताओं में समान रूप से विद्यमान तो होती है किन्तु उनकी पहचान का वह मुख्य गुण नहीं होता है, जैसे मनुष्य का रंग या कद।

2. इनमें से वे विशेषताएँ जो वर्गीकरण के दृष्टिकोण से अति उपयोगी हैं उन्हें अभिलक्षण (characteristics)कहा जाता है।

3. वर्गीकरण पद्धति में वर्गों को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया मुख्य वर्गों से आरम्भ होती है। ये ऐसे समकक्ष वर्ग होते हैं जिनका विस्तार अधिक तथा गहनता कम होती है। वर्गीकरण की इस प्रक्रिया को विभिन्न अभिलक्षणों का प्रयोग करके निरन्तर जारी रखा जा सकता है।

4. एक समकक्ष वर्ग के प्रत्येक उपविभाजन को अधीनस्थ वर्ग कहा जाता है। तथा ऐसी सभी अधीनस्थ वर्गों के एक समूह की स्थिति एक समान होती है।

5. विभाजन करने की प्रक्रिया आनुक्रमिक (sequential)होनी चाहिए। प्रत्येक चरण में वर्गों की सूक्ष्मतम भिन्नता का उपयोग किया जाना चाहिए। तथा

6. जिन अभिलक्षणों को विभाजन का आधार बनाया गया है उनका अनवरत प्रयोग किया जाना चाहिए, एक सिद्धान्त के पूर्णरूप से प्रयोग होने के पश्चात ही दूसरे का प्रयोग किया जाना चाहिए।

3. पदों के उपसूत्र -

इसमें निम्नलिखित चार उपसूत्र दिये गये हैं -

1. वर्गीकरण में वर्गों को उनके नाम अथवा पदों से अभिव्यक्त किया जाता है।
2. ये ऐसे शब्द अथवा वाक्यांश होते हैं जिनके द्वारा वर्गों को सही नाम दिया जा सके,
3. ऐसे पदों को स्पष्ट होना चाहिए। ये पद तकनीकी, प्रचलित किन्तु स्थायी हो ऐसे होने चाहिए;
4. वर्गीकरण की प्रत्येक क्रिया में इनका प्रयोग अनवरत रूप से एक ही अर्थ की साथ किया जाना चाहिए।

4. ग्रन्थ वर्गीकरण के उपसूत्र -

इसमें निम्नलिखित पाँच उपसूत्र हैं -

1. एक पुस्तक वर्गीकरण अथवा वर्गीकरण पद्धति को पुस्तकों अथवा अन्य पुस्तकालय सामग्री को उसके विषय अथवा रूप या दोनों के माध्यम से अथवा किसी

मान्यता प्राप्त तर्कसंगत क्रम से व्यवस्थित करने के लिए बनाया अथवा प्रस्तुत किया जाता है।

2. इसे सामान्य (general)होना चाहिए, जिसमें पुस्तकों से सम्बन्धित सभी प्रकार की विषय वस्तु को सम्मिलित किया जा सके।

3. इसमें विस्तार की क्षमता होनी चाहिए, जिससे बिना किसी अव्यवस्था के नये विषयों अथवा नये उपविभाजनों अथवा पुराने विषयों के नये दृष्टिकोण को स्थान प्रदान किया जा सके।

4. इसमें निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाना चाहिये -

(अ) सामान्य विषयों की पुस्तकों के लिए सामान्य मुख्य वर्ग (General Class)

(ब) रूप वर्ग (Form classes)

(स) सुसंबद्ध सारणियाँ (Systematic Schedules)

(द) अंकन

(इ) अनुक्रमणिका

5. वर्गीकरण पद्धति में प्रयुक्त शब्द आलोचनात्मक नहीं होने चाहिए तथा पुस्तक को वर्गीकृत करते समय भी आलोचनात्मक दृष्टिकोण स्वीकृत नहीं किया जाना चाहिए।

5. अंकन के उपसूत्र -

1. वर्गीकरण पद्धति में अंकन वर्गों के नाम को निरूपित करने के लिए सुव्यवस्थित तथा तर्कसंगत क्रम में प्रयुक्त सूक्ष्म प्रतीकों की श्रृंखला है।

2. अंकन में किसी भी तरह के प्रतीक सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन्हें सूक्ष्म, सरल, लचीला तथा स्मृतिसहायक होना चाहिए।

3. अंकन को शुद्ध कहा जाता है जब इसमें एक ही प्रकार या प्रजाति के (अंकों/वर्णाक्षरों आदि) का प्रयोग किया गया है।

4. अंकन में लचीलापन को सामान्य रूप से समायोजकता (adjustability) अथवा विस्तारणीयता (expansibility) कहा जाता है। जिसका अर्थ है कि वर्गीकरण पद्धति अथवा उसके अंकन में नये वर्गों अथवा उपवर्गों को ग्राह्यता प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए।

5. वर्गीकरण पद्धति में अनेक विषयों, रूपों अथवा दृष्टिकोणों की पुनरावृत्ति होती है। ऐसे विषयों के लिए एक अलग सारणी बना देनी चाहिए, जिससे ऐसे विषयों के लिए समान अंक प्रयुक्त हों जिससे उन्हें याद रखने में सहायता मिले। इस प्रकार के अंकन को स्मृतिसहायक अंकन कहते हैं।

6. ग्रन्थ वर्गीकरण पद्धतियों के उपसूत्र -

1. एक वर्गीकरण पद्धति को स्तम्भाकार अनुसूचियों में विषयों के अग्रता-क्रम (order of precedence) में मुद्रित किया जाता है जिससे कि विषयों का पदानुक्रम यथा संभव प्रदर्शित हो सके।

2. मुद्रित सारणियों से पहले पद्धति को प्रयोग करने से सम्बन्धित भूमिका तथा विषयों के मुख्य विभाजनों की सारणियाँ आदि होनी चाहिए, जिससे पद्धति में प्रयुक्त अनुक्रम तथा विषयों के विस्तार का अवलोकन किया जा सकें ।इसके साथ ही सामान्य सारणियाँ भी होनी चाहिए।

3. नये ज्ञान को सम्मिलित करने के लिए वर्गीकरण पद्धति का समय समय पर नियमानुसार संशोधन किया जाना चाहिए।

2.3.5 हेनरी एवलिन ब्लिस (Henry Evelyn Bliss) (1870-1955)

ब्लिस को एक विद्वान पुस्तकालयाध्यक्ष की श्रेणी में रखा जाता है। ब्लिस ऐसे प्रथम वर्गाचार्य हैं जिन्होंने वर्गीकरण पद्धति की नींव स्पष्ट सिद्धान्तों पर रखी। ब्लिस के अनुसार ज्ञान को सुव्यवस्थित करने के लिए वर्गीकरण एक मूलभूत आधार है। इसलिए वर्गीकरण के सिद्धान्तों, प्रणालियों एवं स्वरूपों का अध्ययन तथा विवेचन भी रूचिकर होना चाहिए। वर्गीकरण विषय पर ब्लिस की दो पुस्तकें -(Organisation of knowledge and the system of sciences - 1929 तथा Organisation of knowledge in libraries and the subject approach to books - 1933) इस संबंध में उल्लेखनीय हैं। ब्लिस की प्रथम पुस्तक में पुस्तकालय वर्गीकरण हेतु वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं तार्किक आधारों का वर्णन एवं विवेचन है। दूसरी पुस्तक में व्यावहारिक पुस्तकालय वर्गीकरण हेतु सिद्धान्त, अंकन, पुस्तकों को वर्गीकृत करने के विभिन्न पहलू तथा विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों का आलोचनात्मक विवरण है। इस पुस्तक में प्रस्तुत 32 सिद्धान्तों में अन्तर्निहित विभिन्न अवधारणाओं एवं प्रयुक्त शब्दों की स्पष्ट व्याख्या ब्लिस की प्रथम पुस्तक में की गयी है।इन दोनों पुस्तकों में प्रतिपादित सिद्धान्तों से पुस्तकालय वर्गीकरण के इतिहास में एक नये अध्याय की शुरूआत हुई। इससे ब्लिस ने इस विचार की स्थापना की कि एक पूर्ण एवं सफल वर्गीकरण पद्धति के निर्माण के लिए सैद्धान्तिक आधार अति आवश्यक है। अपने सिद्धान्तों के बारे में ब्लिस का मत है कि ये सिद्धान्त मात्र काल्पनिक परिकल्पना ही नहीं है, जैसा कि प्रायः सिद्धान्तिकरण पर आरोप लगाया जाता है । अपितु ये सिद्धान्त विषयों के वर्गीकरण की समस्याओं एवं व्यावहारिक वर्गीकरण में सामान्य रूप से लागू होते हैं।

ब्लिस द्वारा प्रतिपादित 32 सिद्धान्तों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(अ) वर्ग एवं अवधारणा (Classes and concepts)

(ब) वर्गों का अधीनीकरण एवं अवधारणा

(स) वर्गीकरण के स्वरूप एवं उनमें वर्गों की व्यवस्था, तथा

(द) उद्देश्यात्मक व्यावहारिक वर्गीकरण

(अ) वर्ग एवं अवधारणा (Classes and concepts)

इसके अन्तर्गत प्रथम दस सिद्धान्तों को रखा जा सकता है।

1. ज्ञान एवं वर्ग सापेक्षिक है (Relativity of knowledge and of classes)

वस्तु तथा वास्तविकता एक दूसरे के सम्बन्धों में, मष्तिष्क में तथा विषयों में विद्यमान होते हैं जो उनकी समानता के आधार पर उनकों वर्गों तथा सहसम्बन्धित अवधारणाओं से सम्बद्ध करते हैं। इनके ये सम्बन्ध ज्ञान में, उसकी सापेक्षता में, तथा विषय वस्तु के वर्गीकरण में आधारभूत होते हैं।

2. वर्ग अवधारणाओं, वर्ग-नामों अथवा शब्दों से वर्ग सहसम्बन्धित होते है तथा ये निश्चित होते हैं (Classes are correlative to class concepts and to class names or terms and they are definite)

वर्गों को उनके समान लक्षणों, विशेषताओं तथा उनके गुण धर्मों, सम्बन्धों स्वरूपों वैचारिक अथवा वास्तविक, प्राकृतिक अथवा भौतिक, इनमें से कोई भी अथवा इनका कोई संयोजन, जो वर्गों में सामान्य रूप से हो, को अनवरत रूप से विशेषता माना जा सकता है। तथा वर्गों को उनके लिए प्रयुक्त शब्दों के द्वारा परिभाषित भी किया जा सकता है।

3. बहुअभिलक्षणों या सम्बन्धों तथा मिश्रित विषय-वस्तुओं को संयुक्त करना (Plural Characteristic or relations and composite contents or forms may be combined)

ग्रन्थात्मक विषय वस्तु अथवा पुस्तकों या प्रलेखों के वर्गों में एक से अधिक अभिलक्षणों या सम्बन्धों तथा मिश्रित विषय-वस्तु या स्वरूपों को एक साथ सम्मिलित या संयुक्त किया जा सकता है। इनमें से किसी एक अथवा उनके किसी संयोजन का चयन किया जा सकता है तथा इस प्रकार विभिन्न वर्ग बनाये जा सकते हैं। इन बहुत अभिलक्षण वाले वर्गों को तदनुसार परिभाषित किया जा सकता है।

4. प्रभेदक शब्दों का प्रयोग (Terms distincitive)

प्रत्येक वर्ग के लिए प्रभेदक पदों अर्थात अन्य विषयों से उसका अंतर स्पष्ट करने वाले पदों का प्रयोग करना चाहिए तथा एक वर्ग के लिए निरन्तर एक ही शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।

5. वर्गों की समावेशता तथा सम्पूर्णता (Inclusiveness and Totality of Classes)

एक ग्रन्थात्मक वर्ग उन सभी वर्गों या उपवर्गों को जिनको इनकी परिभाषा तथा इनके पद या पदों के नाम के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है, समाविष्ट करता है।

6. वर्गों का विकास तथा अनुकूलनीयता (Development and Adaptiveness of Classes)

नये अथवा अतिरिक्त विवरण, सम्बन्ध, नये गुण या लक्षण जो मात्र उपजातीय या विकासात्मक हैं जिनको महत्वपूर्ण न होने के कारण अभिलक्षण नहीं माना गया है इनको भी बिना किसी नये वर्ग, उपवर्ग अथवा नाम की उत्पत्ति के वर्गों के रूप में अथवा उनको स्पष्ट करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

7. व्यापक वर्ग (Comprehensive Classes)

ऐसी पुस्तकें जिनमें विशिष्ट भिन्नताएं अथवा विवरण हो तथा जिनका प्रयोग उन पुस्तकों को वर्गीकृत करने के लिए नहीं किया जा सकता है, तो इनको सामान्य या व्यापक वर्ग में वर्गीकृत किया जा सकता है।

8. वर्गों का सापेक्षिक स्थायित्व (Relative Permanence of Classes)

वर्ग जितने अधिक सामान्य तथा अनुकूली होते हैं उतने की अधिक स्थायी होते हैं। विशिष्ट वर्गों के विपरीत इस प्रकार के वर्गों को छोटे छोटे परिवर्तन उनके सम्पूर्ण स्वरूप को प्रभावित करते हैं।

9. प्राकृतिक वर्ग अधिक उपलब्ध हैं (Natural Classes are more available)

पुस्तकों को वर्गीकृत करने के लिए ऐच्छिक अथवा बाह्य विवरण अथवा उद्देश्यों के स्थान पर वर्गों के प्राकृतिक मौलिक अथवा अन्तर्भूत विशेषताओं का प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि ये अधिक विस्तृत तथा व्यापक रूप से उपलब्ध हैं।

10. समूह सम्मिश्रित होते हैं (Groups are Composite)

ये पुस्तकों से बनाये जाते हैं । एक या अधिक वर्गों का चयन किया जाता है, ये आकस्मिक, स्थानीय व अस्थायी हो सकते हैं। एक समूह के भागों से फिर से अन्य समूह बनाये जा सकते हैं। ये वर्गों की तरह सम्पूर्णता को सम्मिलित करने वाले तथा व्यापक नहीं होते हैं।

(ब) अधीनीकरण एवं समन्वयन (Subordination and Coordination)

11 से 13 तक के सिद्धान्त वर्गों के विभाजन से सम्बन्धित हैं।

11. अधीनीकरण (Subordination)

वर्गों को उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है तथा इनको अधीनस्थ उपवर्गों में विभाजन के प्रत्येक स्तर पर भिन्न-भिन्न तथा विशिष्ट अभिलक्षणों एवं सम्बन्धों को प्रयुक्त किया जाना चाहिए।प्रत्येक उपवर्ग के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाए वे भी विशिष्ट होने चाहिए। ऐसे वर्ग जो अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं उनको अवशिष्ट वर्ग (Residual Classes) के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। इनको उपवर्ग का अवशिष्ट वर्ग माना जा सकता है।

12. समन्वयन (Coordination)

एक ही क्रम के विभाजनों के वर्ग तथा उपवर्ग समकक्ष होते हैं। समकक्ष वर्गों की व्यवस्था तथा संस्थिति उनकी विशेषताओं एवं सम्बन्धों तथा पाठकों की रूचि एवं पुस्तकालय के उद्देश्य के अनुसार की जानी चाहिए।

13. अधीनस्थ एवं समकक्ष वर्ग सम्बन्धित एवं पूरक होते हैं (Subordination and Coordination are relative and complementary)

एक ही वर्ग किसी अभिलक्षण एवं सम्बन्ध के दृष्टिकोण से अधीनस्थ वर्ग हो सकता है जबकि दूसरे पहलू अथवा वर्गीकृत करने के तरीके से यही वर्ग समकक्ष वर्ग हो सकता है।

(स) वर्गीकरण के स्वरूप तथा विषयों की स्थिति (Forms of Classification and collocation of Subjects)

ब्लिस के निम्नलिखित पांच सिद्धान्तों में वर्गीकरण पद्धति के स्वरूपों तथा उनमें वर्गों की व्यवस्था के विभिन्न तरीकों का वर्णन किया है।

14. आनुक्रमिक वर्गीकरण (Serial Classification)

आनुक्रमिक वर्गीकरण में एक वर्ग के उपवर्गों को श्रेणीबद्ध क्रम में व्यवस्थित किया जाता है तथा इसी प्रकार समकक्ष वर्गों की कई श्रृंखलाओं को अनवरत रूप से व्यवस्थित किया जा सकता है। जिससे कई श्रृंखलाओं की श्रृंखला अथवा आनुक्रमिक वर्गीकरण अथवा स्तम्भाकार अनुसूची बन जाये।

जैसे - T Educations (CC6)

Pre-Secondary:	Pre School child	
	Elementary	
University	Pass	
	Honours	
	Post-graduate	
	Research	

15. शाखादार व सोपानवत् वर्गीकरण (Branched and Scalar Classification)

शाखादर वर्गीकरण में वर्गों के उपवर्गों को शाखाएं तथा इनके उपविभाजनों को प्रशाखाएं समझा जा सकता है। यदि इनको समान एवं असमान वर्गों में विभाजित किया जाता है तथा इनमें से असमान वर्गों को हटाकर समाज वर्गों लगातार विशिष्ट वर्णन अथवा अधीनस्थ वर्गों में व्यवस्थित किया जाता है तो उसे सोपानवत वर्गीकरण कहा जाता है।

16. सारणीबद्ध वर्गीकरण, अनुसूची तथा पारगामी वर्गीकरण (Tabular Classification and Schedule and Cross-Classification)

समकक्ष वर्गों को समानांतर या क्षैतिज रेखा (horizontal line)तथा समकक्ष वर्गों के उपवर्गों को खड़ी या ऊर्ध्वाधर रेखा पर व्यवस्थित किया जाता है जिसके फलस्वरूप सारणीबद्ध वर्गीकरण अथवा अनुसूची बन जाती है। एक वर्गीकरण पद्धति में सारणीबद्ध तथा आनुक्रमिक (Serial)वर्गीकरण को संयोजित किया जा सकता है तथा सारणीबद्ध स्वरूप को आनुक्रमिक में या आनुक्रमिक को सारणीबद्ध स्वरूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

17. संश्लेषित तथा क्रमबद्ध वर्गीकरण (Synthetic and systematic classification)

संश्लेषित तथा क्रमबद्ध वर्गीकरण विषयों को उनके अन्तर्निहित तथा स्थिर सम्बन्धों के आधार पर एक साथ प्रस्तुत करता है जबकि विश्लेषणात्मक उपविभाजन तथा विशिष्ट विषय अनुक्रमणीकरण सम्बन्धित विषय-वस्तु को अलग अलग कर देता है।संरचना के दृष्टिकोण से अधीनीकरण सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है किन्तु क्रियात्मक दृष्टिकोण से क्रमबद्ध वर्गीकरण, जो संश्लेषित भी है, में यह प्रक्रिया सामान्य से विशिष्ट अथवा विशिष्ट से सामान्य हो सकती है।

18. सम्बन्धित विषयों की संस्थिति (Collocation of Related Subjects)

पुस्तकालयों के लिए संश्लेषित तथा क्रमबद्ध वर्गीकरण में स्वाभाविक, तार्किक अथवा वैज्ञानिक रूप से परस्पर सम्बन्धित विशिष्ट अथवा सामान्य विषयों को उपयोगकर्ताओं

की सुविधा तथा अभिरूचि की दृष्टि से एक साथ व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

(द) सोद्देश्य व्यावहारिक वर्गीकरण (Purposeful Practical Classification)

19. पुस्तकालयों में ज्ञान व्यवस्था (Organisation of knowledge)

पुस्तकालयों में ज्ञान को व्यवस्थित तथा पुनर्प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त तकनीकों, जैसे वर्गीकरण विषय सूची तथा ग्रन्थात्मक सेवाओं का आधार वैज्ञानिक एवं शैक्षिक सहमति (Scientific and educational consensus)होना चाहिए क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक स्थायी आधार है।

20. प्राकृतिक, तार्किक तथा वैज्ञानिक वर्गीकरण (Natural, Logical and Scientific classification)

पुस्तकालय में प्राकृतिक, तार्किक तथा वैज्ञानिक वर्गीकरण का प्रयोग किया जाना चाहिए। यह प्रभावी सेवा प्रदान करता है, व्यापकता से उपलब्ध है तथा मनमाने ढंग से बनाये गये वर्गीकरण से अधिक स्थायी है।

21. वर्गीकरण की सापेक्षता एवं सामंजस्यता (Relativity and consistency of classification)

विषयों को विभिन्न सिद्धान्तों, अभिलक्षणों, सम्बन्ध, क्रम, विचार अथवा उद्देश्य के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है, किन्तु इनमें तीन तरह से सामंजस्यता होनी चाहिए- (i) चुने गये सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों से सामंजस्यता । (ii) वर्गीकरण के मूल सिद्धान्तों के साथ सामंजस्यता, तथा (iii) जहाँ तक सम्भव है, प्राकृतिक क्रम तथा प्रासंगिक ज्ञान व्यवस्थापन से सामंजस्यता ।

22. संश्लिष्ट एवं मिश्रित वर्गीकरण (Composite and Complex classification)

एक वर्ग को उपवर्गों में तर्कसंगत रूप से विभाजित करने के लिए एक सिद्धान्त अथवा अभिलक्षण का ही प्रयोग किया जाना चाहिए, किन्तु उपविभाजनों के लिए अन्य अभिलक्षणों अथवा सिद्धान्तों का प्रयोग किया जा सकता है, तथा कई समकक्ष वर्गों अथवा श्रृंखलाओं को कई सिद्धान्तों तथा अभिलक्षणों के आधार पर विभाजित करके मिश्रित वर्गीकरण की संश्लिष्ट प्रणाली में संयोजित किया जा सकता है। इसी को संश्लिष्ट वर्गीकरण कहते हैं। ब्लिस ने उसी उद्देश्य से क्रमबद्ध सहायक अनुसूचियों (Systematic schedules) को अपनी पद्धति में सम्मिलित किया है।

23. मानकीकृत वर्गीकरण (Standardized classification)

वर्गीकरण की त्रिविध सामंजस्यता (जो ऊपर 21 में है) को समाज तथा विभिन्न संगठनों द्वारा अनुमोदित तथा मानकित किया जाना चाहिए। एक मानकीकृत प्रणाली में विशिष्ट विषय के मानक, राष्ट्रीय मानक, सामान्य मानक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानक हो सकते हैं। जहाँ तक सम्भव हो एक मानक वर्गीकरण में विकल्पों तथा दृष्टिकोणों तथा उद्देश्यों के लिए स्पष्ट प्रावधान होने चाहिए। इस सिद्धान्त को ध्यान में रख कर ही ब्लिस ने अपनी पद्धति में विकल्पों (Alternatives) का प्रावधान किया है।

24. विशिष्ट पुस्तकालय वर्गीकरण (Special library classification)

विशिष्ट विषय एवं उद्देश्यों के पुस्तकालयों के लिए वर्गीकरण में सामान्य मानक वर्गीकरण से सामंजस्यता होनी चाहिए। तथापि ऐसे वर्गीकरण में केवल सम्बद्ध विषयों को ही विस्तृत रूप से विभाजित किया जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार के विशिष्ट पुस्तकालयों के लिए सम्बन्धित विषयों से सामंजस्य रखने वाला अनुकूली वर्गीकरण (Adaptable classification) होना चाहिए।

25. पुस्तकालय वर्गीकरण में अधिकतम कार्य क्षमता (Maximal effeciency in library classification)

पुस्तकालय वर्गीकरण की कार्यक्षमता मुख्य रूप से उसमें सही अधीनीकरण, सम्बन्धित विषयों की संस्थिति (Collocation) के लिए प्रयुक्त सिद्धान्त, संश्लेषण तथा विषयों की तर्कसंत एंव वैज्ञानिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। पद्धति की कार्यक्षमता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह पुस्तकालय की परिस्थितियों, सेवाओं तथा पुस्तकों के उपयोग के कितना अनुकूल बन सकता है।

26. वैकल्पिक स्थान तथा विधियाँ (Alternative locations and methods)

सामान्य अथवा विशिष्ट विषयों को वर्गीकृत करने के लिए एक ग्रन्थ वर्गीकरण पद्धति में विभिन्न विचार, रूचि अथवा उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वैकल्पिक स्थान एवं विधियों का प्रावधान होना चाहिए। पुस्तकालय जिन विकल्पों को प्रयुक्त करने का निर्णय लेता है। उन्हें अपनी नियम पुस्तिका में लिख लेना चाहिए।

27. अंकन सहसम्बद्धता (Notation correlative)

वर्गों के क्रम को बनाये रखने के लिए पुस्तकालयों के लिए वर्गीकरण में अनुसूचियों, पुस्तकों तथा शेल्फ के लिए प्रयुक्त अंकन में सहसम्बद्धता होनी चाहिए। अंकन को अनुकूलनी, समायोज्य तथा मितव्ययी होना चाहिए।

28. क्रमबद्ध सहायक अनुसूचियाँ (Systematic auxiliary schedules)

एक ग्रन्थात्मक वर्गीकरण पद्धति के संकलन, प्रकाशन तथा प्रयोग में मितव्ययिता लाने हेतु पुनरावर्तक स्वरूपों, विधियों, सम्बन्धों, दृष्टिकोणों, भाषाओं, ऐतिहासिक काल, देश आदि के लिए मिश्रित उप वर्गीकरण का प्रावधान किया जाना चाहिए। एक मिश्रित वर्गीकरण में जहाँ भी इस प्रकार के दो या अधिक विवरणों का संयोजन है वहाँ इनमें से किसी एक को प्रथम तथा अन्य को दूसरा, तीसरा बनाया जा सकता है। इन विकल्पों को अनुसूची में दिया जाना चाहिए तथा इनमें से जिन विकल्पों का पुस्तकालय प्रयोग करता है उनको पुस्तकालय संहिता में रिकॉर्ड कर दिया जाना चाहिये।

29. अनुक्रमणिका (Index to classification)

विभिन्न अनुसूचियों में प्रयुक्त विषयों पदों को ढूँढने के लिए अनुक्रमणिका होनी चाहिए।

30. पुस्तकालय भवन (Library building)

पुस्तकालय भवन तथा पुस्तक संग्रह कक्ष की योजना पुस्तकों के वर्गीकरण को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए। इसके विपरीत वर्गीकरण का पुस्तकालय तथा उसके द्वारा दी जाने वाली सेवाओं के अनुसार प्रयोग किया जाना चाहिए।

31. विस्तरणीय व अनुकूली वर्गीकरण (Expansive and Adaptive classification)

नये तथा अतिरिक्त विषयों एवं सम्बन्धों के लिए विस्तरणीय एवं अनुकूली पद्धति एवं अंकन आवश्यक है।

32. पुनर्वर्गीकरण (Reclassification)

पुस्तकालय के सभी अथवा कुछ प्रलेखों के पुनर्वर्गीकरण की आवश्यकता हो सकती है। इसलिए अंकन का प्रयोग भविष्य के संभावित परिवर्तनों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

2.4 पुस्तकालय वर्गीकरण का गत्यात्मक सिद्धान्त

2.4.1 एस.आर. रंगनाथन (1892-1972)

विवरणात्मक सिद्धान्तों के युग में किये गये विभिन्न विद्वानों का योगदान मूलतः पुस्तकालयों में उनके व्यावहारिक अनुभव, निरीक्षण एवं विभिन्न माध्यमों के परीक्षण पर आधारित था। सेयर्स, रिचर्डसन, ब्लिस आदि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में वर्गीकरण

पद्धति के रचनातंत्र को ऐसी यांत्रिकी प्रदान करने की क्षमता नहीं थी कि अनवरत उत्पन्न होने वाले नये ज्ञान को वह यंत्रवत् स्वतः ग्राहयता प्रदान कर सके। रंगनाथन का प्रथम प्रयास भी इन विद्वानों के योगदान से अधिक भिन्न नहीं था। रंगनाथन ने Prolegomena to library classification के प्रथम संस्करण (1937) में जिन सिद्धान्तों का वर्णन किया था उनका आधार भी मुख्य रूप से उस समय का प्रचलित व्यावहारिक वर्गीकरण ही था। इसलिए रंगनाथन के ये सिद्धान्त भी वर्गीकरण पद्धति को ऐसी अन्तर्निहित क्षमता प्रदान करने में असमर्थ थे जो वर्गीकरण पद्धति को आवश्यक क्षमता प्रदान कर सकती। तथापि, प्रलेखों में प्रकाशित विषय-वस्तु के निरन्तर बदलते स्वरूप तथा विवरणात्मक सिद्धान्तों की सीमाओं से रंगनाथन पूर्णतः अवगत थे। इसीलिए गतिशील सिद्धान्तों को प्रतिपादित करना उनका मुख्य ध्येय बन गया।

1876 में जब प्रथम पुस्तकालय वर्गीकरण पद्धति, दशमलव क्लासीफिकेशन, प्रकाशित हुई उस समय के प्रलेखों की विषय-वस्तु तथा 1933 में जब प्रथम पक्षात्मक पद्धति, कोलन क्लासीफिकेशन प्रकाशित हुई तब के प्रलेखों की विषय-वस्तु में परिवर्तन स्पष्ट था। वैचारिक स्तर पर विषयों के विश्लेषण से यह स्पष्ट था कि निरन्तर नये वैज्ञानिक अनुसंधानों तथा बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण विषयों के एकल विचारों में विभिन्नता तथा जटिलता प्रकट होने लगी है। इन प्रलेखों को वर्गीकृत करना परिगणात्मक पद्धतियों प्रलेखों को वर्गांक के रूप में मात्र क्रमिक संख्या प्रदान कर सकती थी, निश्चित स्थान तथा वैयक्तिकता नहीं जो पुस्तकालयों की द्रुतगामी सेवा के लिए अतिआवश्यक होता है। रंगनाथन ने इसके समाधान हेतु एक नया मूलमंत्र पक्षात्मक सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित कर सम्पूर्ण पुस्तकालय जगत में एक नयी आशा का संचार कर दिया।

1931 में रंगनाथन की पुस्तक पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्र (Five Laws of Library Science) प्रकाशित हुई जिसमें सम्पूर्ण पुस्तकालय विज्ञान विषय हेतु पाँच सूत्रों को मौलिक सिद्धान्तों के रूप में प्रतिपादित किया गया था। इन पंचसूत्रों के कारण पुस्तकालय जगत के विभिन्न क्षेत्रों एवं हर कार्य प्रणाली के लिए स्पष्ट मानक स्थापित हो गये। रंगनाथन ने इन पांच सूत्रों की मांग के अनुरूप वर्गीकरण के क्षेत्र में अपना नया प्रयास वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक वर्गीकरण के रूप में आरम्भ किया जो 1933 में कोलन क्लासीफिकेशन के रूप में प्रकाशित हुआ। किन्तु रंगनाथन की यह श्रेष्ठतम तथा अद्वितीय उपलब्धि भी अन्य विद्यमान पद्धतियों की भाँति पूर्व निर्धारित एवं स्पष्ट सिद्धान्तों पर आधारित नहीं थी हालाँकि इसमें सिद्धान्त अन्तर्निहित अवश्य थे। रंगनाथन ने इस त्रुटि को शीघ्र ही अनुभव कर लिया तथा इन अन्तर्निहित सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या की प्रक्रिया 1937 में Prolegomana to library classification

को प्रकाशित कर आरम्भ कर दी । इस पुस्तक में दिये गये 28 उपसूत्रों का उपयोग कोलन क्लासीफिकेशन को संशोधित करने के लिए मार्गदर्शन सिद्धान्तों के रूप में किया गया जिसके आधार पर सी.सी. का दूसरा संस्करण 1939 में प्रकाशित हुआ। वर्गीकरण सिद्धान्तीकरण पर रंगनाथन यह प्रथम श्रेष्ठ उपलब्धि थी जिसमें पुस्तकालय वर्गीकरण हेतु सुस्पष्ट एवं ठोस मानक प्रदान किये गये थे। सेयर्स ने इसे पुस्तकालय वर्गीकरण के संदर्भ में सैद्धान्तिक, प्रयोगिक एवं तुलनात्मक वर्गीकरण का अति सटीक विवरण माना है। इसी के साथ ही गतिशील सिद्धान्तों का युग भी आरम्भ हुआ। Prolegomena to Library Classification का दूसरा संस्करण 1957 में प्रकाशित हुआ जो रंगनाथन के 1955 तक वर्गीकरण क्षेत्र में किये गये अनुसंधान, व्यावहारिक अनुभव तथा अध्यापन का प्रतिफल था। इस संस्करण में 35 उपसूत्र, **(Canons)** 11 सिद्धान्त **(Principles)**, 21 अभिधारणाएं **(Postulatels)** तथा क्षेत्र व्याख्या (Zone Analysis) की परिकल्पना सम्मिलित थी। इस पुस्तक के तीसरे संस्करण (1967) में वर्गीकरण विषय हेतु उच्च कोटि के अति विकसित गतिशील सिद्धान्तों का स्पष्ट वृत्तांत प्रस्तुत किया गया जो यह भी प्रमाणित करता है कि सम्पूर्ण पुस्तकालय वर्गीकरण प्रक्रिया को किस प्रकार तीन स्तरों पर विभाजित कर इसे वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जा सकता है। तीन स्तरों-वैचारिक, शाब्दिक तथा अंकन, स्तरों के कार्यों का सीमांकन कर रंगनाथन ने यह सुनिश्चित कर दिया कि अंकन स्तर का कार्य वैचारिक स्तर पर किये गये निर्णयों को क्रियान्वित करना है। Prolegomena के इस संस्करण में 11 नियम (Laws), 43 उपसूत्र (Canons), 13 अभिधारणाएँ (Postulates), 4 पक्षअनुक्रम के लिए सिद्धान्त (Principles for Facet Sequence) तथा 9 विधियाँ (Devices) प्रस्तुत की गयी थीं। इस प्रकार रंगनाथन ने विषय जगत में नित्य नये सृजित वृहत एवं सूक्ष्म विषयों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्तर्निहित क्षमता से परिपूर्ण वर्गीकरण के गतिशील सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

एस.आर.रंगनाथन ने अपने गत्यात्मक सिद्धान्त के द्वारा वर्गीकरण के सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन किये। रंगनाथन ने बहुआयामी ज्ञान को आयामी ज्ञान के रूप में परिवर्तित करने की समस्या को भली भाँति समझ लिया था। वर्गीकरण पद्धतियों को अभिकल्पित करने में वर्गीकरण प्रणाली प्रणेताओं (वर्गाचार्यो) के समक्ष यह एक मूलभूत तथा चिरस्थायी समस्या थी। रंगनाथन ने इस समस्या के न्यायोचित समाधान के लिए वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो मूलभूत नियमों, पुस्तकालय विज्ञान के सूत्रों, उपसूत्रों, सिद्धान्तों तथा अभिधारणाओं पर आधारित था। इन नियमों,उपसूत्रों तथा सिद्धान्तों की सहायता से ज्ञान जगत का मानचित्रण सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित इन सिद्धान्तों को मानकीय सिद्धान्त (Normative Principles)के नाम से जाना जाता है। रंगनाथन के अनुसार इन मानकीय सिद्धांतों को विभिन्न स्तरों-चिन्तन स्तर की मूल प्रक्रिया से लेकर, पुस्तकालय विज्ञान विषय के स्तर से होते हुए इसके विभिन्न उपविषयों जैसे वर्गीकरण तथा सूचीकरण तथा इससे भी नीचे स्तर तक के कार्यों के अनुरूप प्रतिपादित किया जा सकता है। अपने इस कथन के अनुरूप ही रंगनाथन ने हर स्तर पर कार्य के लिए स्पष्ट नामों के साथ निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं -

क्र.सं.	स्तर	सिद्धान्त का नाम
1.	चिन्तन की मूल प्रक्रिया (Basic Process of thinking)	मौलिक नियम (Basic Laws)
2.	पुस्तकालय विज्ञान (Library Science)	आधारभूत नियम (Fundamental Laws)
3.	वर्गीकरण (Classification)	उपसूत्र (Canons)
4.	पंक्ति में सहायक अनुक्रम (Sequence in Array)	सिद्धान्त (Principles)
5.	वर्गीकृत करने का कार्य (Working of Classifying)	अभिधारणाएं तथा पक्ष अनुक्रम के लिए सिद्धान्त (Postulates and Principles for Facet Sequence)

मौलिक नियम (BASIC LAWS)

जब पुस्तकालय विज्ञान के दो या अधिक नियमों अथवा वर्गीकरण के उपसूत्रों में एक विषय के बारे में परस्पर विरोध हो अथवा उनके द्वारा उस विषय के बारे में लिया गया निर्णय तर्कसंगत होते हुए भी भिन्न भिन्न हो तब चिन्तन स्तर की प्रक्रिया को नियन्त्रित करने वाले मौलिक नियमों की सहायता ली जाती है। अर्थात मौलिक नियम पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्रों तथा वर्गीकरण के लिए उपसूत्रों के द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी माँगों/आवश्यकताओं के निराकरण करने में वर्गाचार्य का मार्गदर्शन करते हैं। ये मौलिक नियम निम्नलिखित हैं -

1. निर्वचन के नियम (Laws of Inerpretation)

विधि विषय में कानूनों के विभिन्न पहलुओं तथा जटिलता को समझने तथा उनके समाधान के लिए निर्वचन कानून (Law of Interpretation) की सहायता ली जाती है। रंगनाथन ने वर्गीकरण विषय के लिए उपसूत्रों, सिद्धान्तों एवं नियमों को विधि विषय की संज्ञा दी है। इनमें यदि परस्पर कोई विरोध है तो उसके समाधान के

लिए निर्वचन नियम की सहायता ली जा सकती है। यदि आवश्यक हो तो इसके अनुरूप इनमें संशोधन भी किया जा सकता है।

2. निष्पक्षता का नियम (Law of Impartiality)

वर्गीकरण पद्धति को निर्मित अथवा प्रयोग करते समय दो या अधिक पक्षों, एकल विचारों अथवा अंकनों में से यदि किसी एक को चुनना हो या क्रम में किसे प्राथमिकता दी जाय या विभिन्न प्रकार के पाठकों की आवश्यकताओं में से किसे वरीयता दी जाय आदि का निर्धारण निष्पक्षता से ठोस आधारों पर किया जाना चाहिए। न कि स्वेच्छा तथा मनमाने ढंग से।

उदाहरण - कोलन क्लासीफिकेशन में इस नियम का पूर्ण रूप से पालन किया गया है।

(अ) पक्षों के अनुक्रम का निर्धारण करने के लिए निश्चित सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है।

(ब) सी.सी. पद्धति के प्रथम संस्करण (1933) से छठे संस्करण (1960) तक स्थान पक्ष व काल पक्ष के लिए एक ही संयोग चिह्न (dot) प्रयोग किया जाता था जो कि इस नियम के निर्देश के अनुरूप नहीं था। 1963 में इसकी अनुपालना करते हुए काल पक्ष के लिए नया चिह्न उल्टा अर्द्ध विराम (') योजक चिह्न के रूप में प्रयोग किया गया।

3. प्रतिसाम्यता का नियम (Law of Symmetry)

इस नियम के अनुसार वर्गीकरण में यदि दो तत्वों अथवा स्थितियों में प्रतिसाम्यता है तथा इनमें से एक को किसी संदर्भ में महत्व दिया जाता है तो दूसरे को भी समानान्तर रूप से महत्त्व दिया जाना चाहिए।

उदाहरण - कोलन पद्धति में पहले पंक्ति के अन्त में ही बहिर्वेशन (Extrapolation) का प्रावधान था किन्तु अब अंक 0 (शून्य) तथा कई अन्य अंकों के अर्थरिक्त अंक (empty digit) की तरह प्रयोग किये जाने से पंक्ति के आरम्भ में बहिर्वेशन संभव हो गया है।

4. मितव्ययिता का नियम (Law of Parsimony)

इस नियम के अनुसार किसी विशेष तथ्य से सम्बन्धित दो या अधिक विकल्पों में से उसे अधिमान्यता दी जानी चाहिए जिसके प्रयोग से मानवशक्ति, पदार्थ/सामग्री, धन एवं समय आदि की मितव्ययिता हो सकती हो।

वर्गीकरण के संदर्भ में मितव्ययिता के नियम को प्रयुक्त करने की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(अ) वर्गांक की लम्बाई - वर्गांक को लिखने तथा पढ़ने के दृष्टिकोण से छोटा होना चाहिए। अर्थात पद्धति की अंकन प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि सम्पूर्ण विषय का थोड़े से अंकों से बने वर्गांक में अनुवाद किया जा सके।

(ब) अनुसूचियों का आकार- यदि विशिष्ट व सामान्य एकल विचारों को ध्यान में रख कर इस प्रकार अनुसूचियाँ बनाई जॉय कि कई विषयों के साथ सामान्य रूप से प्रयोग होने वाले एकल विचारों के लिए एक ही सामान्य अनुसूची बना दी जाये, जैसे काल एकल, भौगोलिक एकल, भाषाएं तथा अन्य सामान्य एकल विचार तो अनुसूचियों का आकार कम किया जा सकता है।

सामान्यतः सभी वर्गीकरण पद्धतियों में इस नियम की माँग के अनुरूप सामान्य सारणियों एवं विधियों का प्रयोग किया गया है।

5. स्थानीय विभिन्नता का नियम (Law of Local Variation)

इस नियम के अनुसार प्रत्येक वर्गीकरण पद्धति में सामान्य विधियों के स्थान पर स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विकल्पों का प्रावधान होना चाहिए।

स्थानीय आवश्कताओं से तात्पर्य किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के पुस्तकालयों का उपयोग करने वाले पाठकों की विशिष्ट रूचि से होता है।

(अ) भौगोलिक एकल - कोलन क्लासीफिकेशन में भौगोलिक विभाजनों में अंक 2 व 3 का क्रमशः मातृभूमि व अधिमान्य राष्ट्र के लिए प्रयोग किया गया है। जैसे भारत के पुस्तकालयों में भारत के लिए 44 के स्थान पर 2 का तथा ग्रेट ब्रिटेन के लिए 56 के स्थान पर 3 का प्रयोग किया जा सकता है। इससे न केवल वर्गांक के अंकों में मितव्ययिता होगी अपितु शेल्फ विन्यास में भी इनसे सम्बनिधत प्रलेखों को प्राथमिकता मिल जायेगी।

(ब) अधिमान्य भाषा (Favoured Language)जिस भाषा की पुस्तकें पुस्तकालय में सबसे अधिक होती हैं उसे प्रायः पुस्तकालय की अधिमान्य भाषा के रूप में माना जाता है। कोलन क्लासीफिकेशन में ऐसी पुस्तकों के वर्गांक में उस भाषा के अंक का प्रयोग नहीं किया जाता है जिससे शेल्फ विन्यास में इन्हें स्वतः ही अन्य भाषाओं में लिखी पुस्तकों से प्राथमिकता मिल जाती है। जैसे मुख्य वर्ग (O Literature) में अंग्रेजी भाषा, जिसे भारत में प्रायः अधिमान्य भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता है के लिए 111 के स्थान पर (Dash) का प्रयोग किया जाता है।

इसी प्रकार R (Philosophy) में अधिमान्य प्रणाली के लिए R6 प्रयोग करके इसे भारतीय दर्शन को आवंटित किया गया है।

डयूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन में भी कई विषयों के अन्तर्गत स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विकल्पों के लिए निर्देश हैं जिनके अनुसार वर्गाकार को स्वतंत्रता है कि वह जिस देश अथवा भाषा पर लिखे साहित्य संग्रह को प्राथमिकता देना चाहता है उसके लिए पद्धति में दिये गये वर्गांक के स्थान पर उस देश अथवा भाषा के आधार पर वर्गांक बना कर शेल्फ विन्यास में प्राथमिकता प्रदान कर सकता है। जैसे

हिन्दी भाषा	491.42 या 40H
हिन्दी भाषा साहित्य	891.43 या 80 H

6. परासरणता का नियम (Law of Osmosis)

इस नियम के अनुसार यदि सूची संहिता अथवा वर्गीकरण पद्धति को प्रासंगिकता के उपसूत्र (Canon of Cotnext) की माँग के अनुरूप परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है तो एक निश्चित तिथि से -

(i) सभी नये अवाप्त (Accessioned) /प्राप्त (Received) प्रलेखों का नवीन सूची-संहिता अथवा वर्गीकरण पद्धति के अनुसार सूचीकरण अथवा वर्गीकरण किया जाना चाहिए;

(ii) प्रथम चरण में पुराने संग्रह में से जो अति आवश्यक प्रलेख हैं उनका पुर्नसूचीकरण अथवा पुर्नवर्गीकरण अतिरिक्त अस्थाई कर्मचारियों की सहायता से किया जा सकता है।

(iii) पुनर्वर्गीकृत तथा पुनर्सूचीकृत नवीन प्रलेखों तथा उनके सूचीपत्रों को नये संग्रह के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए।

(iv) पुराने बाकी संग्रह तथा उनके सूचीपत्रों को पुराने संग्रह के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए।

(v) सन्दर्भ पुस्तकालयाध्यक्ष को पाठकों को पुराने तथा नये दोनों प्रकार के संग्रहों के बारे में जानकारी देनी चाहिए।

(vi) पुराने संग्रह में से यदि पाठक प्रलेख निर्गम (issue) कराता है तो उस प्रलेख की वापसी पर उसी सूची संहिता तथा वर्गीकरण पद्धति के अनुसार उसका सूचीकरण तथा वर्गीकरण करके नये संग्रह में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

तथापि पुनर्सूचीकरण तथा पुनर्वर्गीकरण के बारे में निश्चित निर्णय पाठकों की सेवा, पुस्तकालय कर्मचारियों की उपलब्धता, धन आदि को ध्यान में रखकर ही लिया जा सकता है कि सम्पूर्ण संग्रह एक साथ पुनर्वर्गीकरण अथवा पुनर्सूचीकरण किया जाना चाहिए, अथवा प्रलेखों के उपयोग के साथ साथ धीर-धीरे यह कार्य किया जाना चाहिए।

इस प्रकार वर्गीकरण के गत्यात्मक सिद्धान्तों के विकास में रंगनाथन का योगदान अभूतपूर्व तथा अतुलनीय है। पक्ष विश्लेषण और मूलभूत श्रेणियों की उनकी अवधारणा को व्यापक समर्थन मिला। रंगनाथन के प्रमुख ग्रन्थ **प्रोलेगोमेना टू लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन (1967)** में तथा उनके अन्य ग्रन्थों में निरूपित अभिधाणाओं और सिद्धान्तों का प्रयोग करते हुए अनेक विशिष्ट पद्धतियाँ अभिकल्पित की गई हैं।

2.5 सारांश (Summary)

पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्तों के विकास की दो अवस्थाएँ हैं - प्रथम अवस्था में, विवरणात्मक सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हुआ। इसका आधार उस समय की प्रचलित वर्गीकरण पद्धतियों में प्रयुक्त व्यवहारिक प्रक्रियाएँ थी। विवरणात्मक सिद्धान्त का प्रादुर्भाव ब्राउन रिचर्डसन, ह्यूम, सेयर्स और ब्लिस के योगदान तथा प्रयासों का परिणाम था। इन विद्वानों ने अपने लेखन कार्यों से तथा इनमें से कुछ ने अपनी पद्धतियों के माध्यम से कतिपय आधारभूत सिद्धान्तों और उपसूत्रों का प्रतिपादन किया, जिससे पद्धतियों का प्रारूप तैयार करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

द्वितीय अवस्था में, हम वर्गीकरण के गत्यात्मक सिद्धान्त के प्रादुर्भाव को देखते हैं, जिसके द्वारा पद्धतियों को अधिक विस्तार से एवं परिशुद्धता से अभिकल्पित करने के लिए विधियों की रूपरेखा बनाना सम्भव हुआ। रंगनाथन ही प्रमुख रूप से गत्यात्मक सिद्धान्त की उत्पत्ति एवं विकास के लिए उत्तरदायी थे। रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पुस्तकालय वर्गीकरण के सूत्रों, उपसूत्रों, अभिधारणाओं तथा सिद्धान्तों ने पुस्तकालय वर्गीकरण को एक नई दिशा प्रदान की है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त की आवश्यकता को समझ गये होंगे। साथ ही ब्राउन, रिचर्डसन, ह्यूम, सेयर्स, ब्लिस और रंगनाथन जैसे विद्वानों द्वारा सिद्धान्तों के विकास में किए गये योगदानों के सम्बन्ध में भी आप जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

2.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किसे ज्ञान वर्गीकरण का व्याकरणाचार्य कहा जाता है’

    (1) मेल्विल ड्यूवी (2) डब्ल्यू.सी.बी.सेयर्स

    (3) एस.आर.रंगनाथन (4) जे.डी.ब्राउन

2. ज्ञान वर्गीकरण की अभिधारणा के तीन धरातल वैचारिक धरातल, शाब्दिक धरातल ओर अंकन धरातल का प्रतिपादन किसने किया?

    (1) एस.आर.रंगनाथन (2) डब्ल्यू.सी.बी.शेयर्स

(3) जे.डी0ब्राउन (4) उपरोक्त में से को नहीं

3. प्रोलोगेमनों टू लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन (Prolegomena to Library Classification)का लेखक कौन है?

(1) सी.ए.कटर (2) एच.ई.ब्लिस

(3) एस.आर.रंगनाथन (4) डब्ल्यू.सी.बी.सेयर्स

4. 'ग्रामर ऑफ क्लासीफिकेशन' (Grammar of Classification) के रचयिता कौन हैं -

(1) एस.आर.रंगनाथन (2) जे.एस.ब्लिस

(3) सी.ए.कटर (4) डब्ल्यू.सी.वी.सेयर्स

5. निम्नलिखित का मिलान कीजिए -

सूची 'अ'	सूची 'ब'
(1) रिचर्डसन (Richardson)	(अ) ग्रन्थ वर्गीकरण सिद्धान्त
(2) ह्यूम (Hulme)	(ब) वर्गीकरण के उपसूत्र
(3) सेयर्स (Sayers)	(स) प्रोलेगमना टू लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन
(4) रंगनाथन (Rangnathan)	(द) क्लासीफिकेशन थ्योरीटीकल एण्ड प्रैक्टिकल।

नीचे दिये गये विकल्पों में से सही उत्तर चुनिये।

(1)	1. (ब),	2. (स),	3. (द)	4. (अ)
(2)	1. (स),	2. (ब),	3. (अ)	4. (द)
(3)	1. (द),	2. (अ),	3. (ब)	4. (स)
(4)	1. (अ),	2. (ब),	3. (स)	4. (द)

6. सभी वर्गीकरणों को दो समूहों (श्रेणियों) यांत्रिक और दार्शनिक में व्यवस्थित किया जा सकता है। यह किसका कथन है -

(1) रिचर्डसन (2) डब्ल्यू.सी.बी.सेयर्स

(3) ह्यूम (3) एस.आर.रंगनाथन

7. सेयर्स के वर्गीकरण के उपसूत्रों की संख्या कितनी है -

(1) 25 (2) 29

(3) 27 (3) 30

8. 'आरगनाइजेशन आफ नालेज एण्ड दि सिस्टम आफ साइंस (Organisation of Knowledge and the system of science) की कृति के लेखक कौन हैं -

(1) एच.ई.ब्लिस (2) एस.आर.रंगनाथन

(3) डब्लू.सी.बी.सेयर्स (4) ई.डब्लू. ह्यूम

9. मितव्ययिता का नियम किसने प्रतिपादित किया -

(1) सेयर्स (2) रंगनाथन

(3) ह्यूम (4) ब्लिस

10. सब्जेक्ट क्लासीफिकेशन पद्धति के प्रणेता जे.डी.ब्राउन थे -

(1) सत्य (2) असत्य

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त के महत्त्व और आवश्यकता को संक्षेप में समझाइये।

2. पुस्तकालय वर्गीकरण के विवरणात्मक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में जे.डी.ब्राउन के योगदान पर संक्षेप में टिप्पणी लिखें?

3. साइंस एण्ड इट्स ऐप्लीकेशन थ्योरी' को संक्षेप में समझाइये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सब्जेक्ट क्लासिफिकेशन पद्धति में अपनाए गये ब्राउन के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।

2. पुस्तकालय वर्गीकरण के मौलिक सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए। पुस्तकालय वर्गीकरण के विवरणात्मक और गत्यात्मक सिद्धान्तों के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।

3. सेयर्स द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण के उपसूत्रों की विस्तार से विवेचना कीजिए।

2.7 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1.(2)	2. (1),	3. (3)	4. (4)	5. (3)
6.(4)	7. (2),	8. (1)	9. (2)	10. (1)

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इतर पाठ्य सामग्री

1. Bliss, H.E. (1929). Organisation of knowledge and the system of sciences, New York : Holt.

2. Bliss, H.E. (1935). System of Bibliographic Classification. New York : H.W. Wilson.

3. Brown, J.D. (1939). Subject classification. 3rd. ed. London: Grafton.

4. Hulme, E. Wyndham (1911-12). Principles of book classification. Library Association Record. 13-14.

5. Ranganathan, S.R. (1967). Prolegomena to library classification. 3rd. ed., Bangalore : Sarada Ranganathan Endowment for Library Science.

6. Sayers, W.C.B. (1958) . Introduction to library classification. Grafton and co. London.

7. त्रिपाठी, एस.एम. (1997) आधुनिक ग्रन्थालय वर्गीकरण : सैद्धान्तिक विवेचन, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा।

इकाई -3 : पुस्तकालय वर्गीकरण : प्रजातियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रजातियाँ
  3.2.1 परिगणनात्मक वर्गीकरण
  3.2.2 लगभग परिगणनात्मक वर्गीकरण
  3.2.3 लगभग पक्षात्मक वर्गीकरण
  3.2.4 अनम्य पक्षात्मक वर्गीकरण
  3.2.5 लगभग मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण
  3.2.6 मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण अथवा वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक वर्गीकरण
  3.2.7 परिगणनात्मक और पक्षात्मक वर्गीकरणों का तुलनात्मक अध्ययन
3.3 प्रमुख वर्गीकरण प्रणालियाँ
  3.3.1 ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन (डीडीसी)
  3.3.2 यूनिवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन (यूडीसी)
  3.3.3 कोलन क्लासीफिकेशन (सीसी)
  3.3.4 लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस क्लासीफिकेशन (एलसी)
  3.3.5 बिब्लियोग्राफिक क्लासीफिकेशन (बीसी)
  3.3.6 ब्रॉड सिस्टम ऑफ आर्डरिंग (बीएसओ)
3.4 सारांश
3.5 सम्बन्धित प्रश्न - बहुविकल्पीय, लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय
3.6 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर
3.7 संन्दर्भ एवं इतर पाठ्यसामग्री

3.0 प्रस्तावना (Introduction)

पुस्तकालय में संग्रहीत पाठ्य सामग्री को विषयानुसार व्यवस्थित करने के लिए अनेक प्रकार की वर्गीकरण पद्धतियों का प्रयोग किया जाता रहा है। ज्ञान जगत के विषयों की गूढ़ता में वृद्धि और शोध के नये नये आयामों का सीधा प्रभाव इन

वर्गीकरण पद्धतियों पर पड़ा, परिणामस्वरूप इनके स्वरूप में अनेक संशोधन एवं परिवर्तन होते रहे। रंगनाथन ने अपने अध्ययन तथा विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि वर्गीकरण प्रणालियों को मुख्यतः पाँच प्रजातियों में रखा जा सकता है। जिस प्रकार प्राणियों की या पेड़ पौधों की विभिन्न प्रजातियाँ होती हैं उसी प्रकार वर्गीकरण प्रणालियों की विभिन्न प्रकार की श्रेणियों को हम वर्गीकरण प्रणालियों की प्रजातियाँ कह सकते हैं। अलग-अलग प्रजातियों के अलग-अलग गुण, विशेषताएं लक्षण और अभिलक्षण आदि होते हैं। इनका अध्ययन इस इकाई में किया गया है।

पुस्तकालय वर्गीकरण के क्षेत्र में आधुनिक वर्गीकरण प्रणाली का निर्माण अमेरिका में 1876 में, ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन के प्रकाशन के साथ हुआ। इसके पश्चात अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों को अपनाते हुए तथा विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग करते हुए अनेक प्रकार की ग्रन्थ वर्गीकरण पद्धतियाँ विकसित करने का प्रयास किया जिनमें सी.ए.कटर की एक्सपैन्सिव क्लासिफिकेशन (Expansive Classification) (ई.सी.1893), लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस (1904) यूनिवर्सल डेसीमल क्लासिकल (1905) सब्जेक्ट क्लासिफिकेशन, बिब्लियोग्राफिकल (यू.डी.सी. 1905),जेम्स डफ ब्राउन की (एस.सी. 1906), रंगनाथन की कोलन क्लासिफिकेशन (सी.सी.1933), और एच.ई.ब्लिस की ग्रन्थात्मक वर्गीकरण (बी.सी.1935) आदि प्रमुख हैं। इन सभी का विवेचन इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई इकाई में आपका परिचय पुस्तकालय वर्गीकरण की विभिन्न प्रजातियों से कराया जाएगा। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय विज्ञान के विभिन्न विद्वानों द्वारा विकसित सामान्य वर्गीकरण प्रणालियों के विषय में भी जानकारी प्रदान की जायेगी। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- पुस्तकालय वर्गीकरण की विभिन्न प्रजातियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- पुस्तकालय वर्गीकरण की विभिन्न प्रजातियों के विकास के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- विभिन्न प्रजातियों की अभिलक्षणात्मक विशेषताओं, सीमाओं और समस्याओं के बारे में समझ सकेंगे, तथा
- पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रमुख सामान्य वर्गीकरण पद्धतियों से परिचित हो सकेंगे।

3.2 पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रजातियाँ (Species of Library Classification)

पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रजातियों के विकास के इतिहास पर दृष्टि डालने से

यह ज्ञात होता है कि वर्गीकरण के लिए निर्मित प्रणालियों के क्रमिक विकास की सामान्य दिशा परिगणनात्मक से वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक की ओर अग्रसर हुई है।प्रारम्भ से अभी तक प्रमुख रूप से निम्नलिखित 6 प्रजातियाँ वर्गीकरण पद्धतियों के निर्माण हेतु विकसित हुई हैं -

- परिगणात्मक वर्गीकरण (Enumerative classification)
- लगभग परिगणात्मक वर्गीकरण (Almost-Enumerative Classification)
- लगभग पक्षात्मक वर्गीकरण (Almost faceted classification)
- अनम्य पक्षात्मक वर्गीकरण (Rigidly Faceted Classification)
- लगभग मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण (Almost Freely Faceted classifica tion)
- मुक्त पक्षात्मक वर्गीकण (Freely Faceted Classification)-

3.2.1 परिगणात्मक वर्गीकरण (Enumerative classification)

परिगणना शब्द का अर्थ सूचीबद्ध करना अथवा परिगणित करना है। वर्गीकरण की परिगणनात्मक पद्धति में अनिवार्यरूप से एक ही अनुसूची होती है। जिसमें भूत, वर्तमान तथा भविष्य के सम्भावित विषयों को सम्मिलित कर लिया जाता है। परिगणनात्मक वर्गीकरण पद्धतियों की विचारधारा उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी विषय वर्गीकरण की विचारधारा। यह एक सरल पद्धति है। इस प्रकार की पद्धति की अनुसूचियों में वर्णित सभी विषयों को, जिनमें अधिकांश सरल विषय ही होते हैं, पूर्व निर्मित वर्गांक प्रदान कर दिये जाते हैं और उन्हें वरीयता के क्रम में परिगणित अथवा व्यवस्थित कर दिया जाता है। भविष्य के विषयों को पूर्वानुमान के आधार पर परिगणित किया जाना त्रुटिपूर्ण हो सकता है क्योंकि पूर्वानुमान के आधार पर विषयों की वर्ग संख्या का युक्तिपूर्ण निर्माण सम्भव नहीं है। भविष्य में निर्मित होने वाले विषयों के लिए इस प्रणाली में रिक्त स्थान युक्ति (Devices) के द्वारा कुछ स्थान रिक्त छोड़ दिये जाते है।ज्ञान और विषय जगत निरंतर वर्धनशील है अतः भविष्य में उत्पन्न होने वाले विषयों की संख्या की कोई सीमा नहीं है। इस प्रकार कुछ रिक्त स्थान छोड़ना पर्याप्त नहीं है।साथ ही भविष्य में उत्पन्न होने वाले विषयों के सहायक क्रम का पूर्वानुमान भी सम्भव नहीं है।

इस प्रकार की पद्धति के अनेक दोष हैं। प्रथम, इस प्रकार की पद्धति में नये विषयों को, उनके सह सम्बन्धित विद्यमान विषयों के साथ स्थान देना सम्भव नहीं हो पाता। दूसरे, इसकी अनुसूची अत्यन्त वृहताकार बन जाती है। तीसरे, इस प्रकार की पद्धति से निर्मित वर्गांकों की लम्बाई अधिक होती है। तथा पक्षों के अभाव में इन्हें खण्डों में विभाजित भी नहीं किया जा सकता है।

लाइब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण पद्धति (LC) तथा रायडर की अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण पद्धति **(RIC : Rider's International classification)** इस प्रकार की पद्धतियों के उदाहरण हैं।

लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस पद्धति 45 खण्डों में है।। वर्गकार के लिए किसी विषय का वर्गांक तैयार करते समय सम्बन्धित विषय को, इन सब खण्डों में ढूँढना एक जटिल कार्य है। इस पद्धति में सामान्य एकलों का भी पृथक से उल्लेख है।

रायडर पद्धति मे 18,000 विषयों का उल्लेख है। इसमें एक ही वर्गांक को एक से अधिक विषयों के लिए प्रयोग में लाने से भ्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों पद्धतियों ज्ञान जगत की आवश्यकाओं के अनुरूप विषयों को वर्गीकृत करने में असफल सिद्ध हुई हैं।

3.2.2 लगभग परिगणनात्मक वर्गीकरण (Almost Enumerative Classification)

इस प्रकार की पद्धति की अनुसूची में भूत, वर्तमान एवं भविष्य के सम्भावित विषयों के साथ-साथ, सामान्य एकलों की अनुसूचियों को भी सम्मिलित कर लिया जाता है। अनुसूची में सरल विषयों के साथ साथ यौगिक विषयों का भी उल्लेख होता है। कुछ यौगिक विषयों के वर्गांक सामान्य एकलों की अनुसूचियों की सहायता से निर्मित कर लिये जाते हैं।

इस प्रकार की पद्धति की अनुसूची में यौगिक विषयों को सम्मिलित करने से उनका आकार विस्तृत हो जाता है। यद्यपि सामान्य एकलों की अनुसूचियों की सहायता से कुछ यौगिक विषयों के वर्गांक बनाये जा सकते हैं। फिर भी ज्ञान जगत में उत्पन्न ऐसे विषयों को अनुसूची में स्थान देना सम्भव नहीं है, जिनका न तो अनुसूची में उल्लेख है, और न ही जिनके वर्गांक अनुसूची में वर्णित विषयों के संयोजन तथा सामान्य एकलों की सहायता से बनाये जा सकते हैं।

ब्राउन की विषय वर्गीकरण पद्धति (SC) तथा ड्यूई की दशमलव वर्गीकरण पद्धति (DDC) इस प्रकार की पद्धतियाँ हैं।

दशमलव वर्गीकरण पद्धति में मानक उपविभाजनों (Standard sub-divisions) का प्रावधान है। इनका प्रयोग अनुसूची के किसी भी विषय के साथ किया जा सकता है। इसी प्रकार स्थान स्थान पर योजक विधि (Add to device) के प्रावधान, ज्ञान जगत के उत्पन्न नये विषयों को पद्धति में स्थान देने में सहायक सिद्ध हुये हैं।

3.2.3 लगभग पक्षात्मक वर्गीकरण (Almost Faceted Classification)

वर्गीकरण की विभिन्न प्रजातियों के विकास क्रम की पंक्ति में लगभग पक्षात्मक वर्गीकरण का स्थान, लगभग परिगणनात्मक और मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण के बीच का

है। इस प्रकार की पद्धति की अनुसूची में भूत,वर्तमान तथा भविष्यकाल के सम्भावित विषयों के साथ-साथ कुछ अनुसूचियाँ सामान्य एकलों और कुछ अनुसूचियाँ विशिष्ट एकलों की होती हैं।

इस प्रकार की पद्धति में यौगिक विषयों के वर्गांक, प्रत्येक विषय के लिए दिये गये विशिष्ट एकलों की सहायता से निर्मित किये जा सकते हैं, जबकि सामान्य एकलों की अनुसूचियों का प्रयोग सामान्य रूप से सभी प्रकार के विषयों के वर्गांक निर्मित करने के लिए किया जा सकता है। वर्गांक निर्मित करने में योजक चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की पद्धति से निर्मित वर्गांक लम्बे बनते हैं। उदाहरण के रूप में यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन पद्धति **(UDC)** इसी प्रकार की पद्धति है।इस पद्धति में चार अनुसूचियाँ सामान्य एकलों से सम्बन्धित हैं । जैसे -

रचना (Form)

काल (Time)

स्थान (Place)

दृष्टिकोण (Point of view)

अनुसूची के किसी विषय के साथ इन्हें जोड़ने के लिए पृथक पृथक योजक चिह्नों का प्रावधान है।

भाषा एकल (Language isolate), प्रजाति (Race) तथा राष्ट्रीय समूह (Nationality) सामान्य एकल नहीं है।

इसके अतिरिक्त अनुसूची में वर्णित कतिपय मूल विषयों तथा संयुक्त विषयों के प्रयोग हेतु विशिष्ट एकलों की अनुसूचियाँ भी दी गयी हैं, जिनका प्रयोग संयुक्त विषयों के वर्गांक को निर्मित करने के लिए किया जा सकता है।

इस पद्धति में विषय में निहित पृथक-पृथक पक्षों को सूचित करने के लिए विभिन्न प्रकार के योजक चिह्नों का प्रावधान किया गया है। जैसे -

काल पक्ष के लिए - " " (Double inverted commas)

स्थान पक्ष के लिए ( ) (Starter and arrester)

दो विषयों को जोड़ने के लिए : (Colon) इत्यादि।

इस प्रकार यूनिवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन पद्धति विषय जगत में नवोदित विषयों को समायोजित करने में पूर्णरूप से लचीली सिद्ध हुई है।

3.2.4 अनम्य पक्षात्मक वर्गीकरण (Rigidly Faceted Classification)

अनम्य अथवा अपरिवर्तनीय पक्षात्मक वर्गीकरण पद्धति में, पद्धति के सभी

मूल वर्ग के विषयों के पक्ष परिसूत्र (Facet Formula)तथा उनका अनुक्रम पूर्व निर्धारित होता है। अर्थात प्रत्येक विषय के लिए विशिष्ट एकलों का प्रावधान होता है जिनका प्रयोग उस विशिष्ट मूल वर्ग के वर्गांक निर्मित करने के लिए आवश्यक रूप से किया जा सकता है। अपनी इस अपरिवर्तनीय प्रकृति के कारण ही इसे अनम्य पक्षात्मक पद्धति कहा जाता है।

कोलन वर्गीकरण पद्धति का प्रथम संस्करण (1933), द्वितीय संस्करण (1939), तथा तृतीय संस्करण (1950), इस प्रकार की पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन संस्करणों में पूर्व निर्धारित पक्ष परिसूत्र के अतिरिक्त न तो किसी अतिरिक्त पक्ष का अन्तर्निवेश (Interpolation), ना ही किसी अतिरिक्त पक्ष का बहिर्निवेश (Extrapolation) सम्भव था।

3.2.5 लगभग मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण (Almost Freely Faceted Classification)

यौगिक विषयों के वर्गांक निर्मित करने में पक्ष परिसूत्रों के साथ उनके पक्षों के लिए प्रयुक्त आवर्तनों (Rounds) तथा स्तरों (Levels) के प्रयोग द्वारा अपरिवर्तनशीलता अथवा अनम्यता कुछ सीमा तक दूर हो जाती है तथापि पक्ष के स्तरों की संख्या तथा उनके अनुक्रम में यह अपरिवर्तनशीलता निहित रहती है। इसी कारण, इस प्रकार की पद्धति को हम पूर्णतः पक्षात्मक पद्धति न कहकर लगभग मुक्त पक्षात्मक पद्धति कहते है।

कोलन वर्गीकरण पद्धति का संस्करण 4 (1952), संस्करण 5 (1957) तथा संस्करण 6 (1960) तथा संस्करण 6 पुर्नमुद्रित (1963) को लगभग मुक्त पक्षात्मक पद्धति की श्रेणी में रखते हैं।

3.2.6 मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण (Freely Faceted Classification)

मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण अभिधारणाओं और सिद्धान्तों पर आधारित होता है, इसमें मूल विषय के साथ प्रयुक्त यौगिक विषयों के लिए कोई अपरिवर्तनीय, पूर्व निर्धारित पक्ष-परिसूत्र नहीं होता। चूँकि ऐसी पद्धति विश्लेषण और संश्लेषण पर आधारित होती है, अतः प्रत्येक विषय ही अपना पक्ष-परिसूत्र निर्धारित करता है। पक्ष-परिसूत्र मुक्त होता है। चूँकि इस प्रकार के वर्गीकरण में पक्षों का विश्लेषण और संश्लेषण किया जाता है और पक्षों का अनुक्रम सुनिश्चित करने के लिए अभिधारणाएँ और सिद्धान्त मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। अतः इसका एक दूसरा नाम वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक वर्गीकरण (Analytico Synthetic Classification)भी है। कोलन क्लासिफिकेशन के 7वें संस्करण मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण का उदाहरण है। इस प्रकार की प्रजाति का एक अन्य उदाहरण जे.मिल्स द्वारा संशोधित बिब्लियोग्राफिक क्लासिफिकेशन का द्वितीय

संस्करण (BC-2) (1977) है। वस्तुतः ऐसे प्रजाति में असीमित लचीलापन होता है। इसकी वर्ग संख्याएं सहविस्तृत, संक्षिप्त तथा परिष्कृत होती है। कुछ विद्वान इन्हें लगभग मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण मानते हैं क्योंकि इनमें एक यौगिक विषय में प्रयुक्त होने वाले पृथक पृथक पक्षों के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के संकेतक अंकों का प्रयोग करके, साथ ही पक्षों की तथा उनके अनुक्रम की कठोर अपरिवर्तनशीलता को, जो यौगिक विषयों में होती है, आवर्तन एवं स्तर की अभिधारणाओं ने दूर कर दिया है। अतः कुछ विद्वान इसे लगभग मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण मानते हैं । फिर भी एक आवर्तन में प्रयुक्त होने वाले पक्ष के स्तरों में अपरिवर्तनशीता विद्यमान है।

सेक्टर अंकन की सहायता से पक्षों के स्तरों की संख्या और एक आवर्तन में उनके अनुक्रम की अनम्यता को, जो कोलन क्लासिफिकेशन के छठवें संस्करण तक विद्यमान थी, इसके सातवें संस्करण में दूर कर दिया गया। क्योंकि यह माना जाता है कि यौगिक विषय में पक्ष होते है न कि किसी मूल विषय में, अतः किसी मूल विषय के साथ मेल खाने की संभावना रखने वाले यौगिक विषयों के लिए, पक्षों के पूर्व निर्धारित होने की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया गया है। इसलिए इसे मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण पद्धति कहा गया है और विश्लेषण तथा संश्लेषण की प्रक्रिया का अनुसरण करने के कारण इस प्रणाली को वैश्लेषी संश्लेषणात्मक वर्गीकरण भी कहते हैं।

3.2.7 परिगणनात्मक और पक्षात्मक वर्गीकरणों का तुलनात्मक अध्ययन

पुस्तकालय वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त और उनके परिणामस्वरूप वर्गीकरण प्रजातियों का विकास, दोनों ही निरंतर परिवर्तनशील अवस्था में रहे हैं। यह परिवर्तन द्रुतगामी एवं क्रमिक रहा है। विकास की प्रवृत्तियों का प्रवाह वर्गीकरण की परिगणनात्मक से पूर्णतः मुक्त पक्षात्मक प्रणालियों की ओर रहा है। इसके मध्य कुछ कुछ अन्तर अथवा प्रभाव डालने वाली प्रजातियाँ लगभग पक्षात्मक, अनम्य पक्षात्मक और लगभग मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण के रूप में रही है।

अधिकांश विद्वान इन्हें सामान्यतः दो मूल प्रजातियों में विभाजित करते है, यथा परिगणनात्मक और पक्षात्मक वर्गीकरण। इन दोनों की सुस्पष्ट विशेषताओं, गुणों एवं दोषों का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा सकता है -

(1) परिगणनात्मक पद्धति में केवल एक अनुसूची एक होती है, जबकि पक्षात्मक पद्धति में इसके अतिरिक्त सामान्य उत्तरों इत्यादि की अलग अनुसूचियाँ होती हैं।

(2) परिगणनात्मक पद्धति की अनुसूची विस्तृत होती है। इसमें भूत, वर्तमान एवं भविष्य सम्भावित विषयों के बने बनाये वर्गांकों का उल्लेख होता है, जबकि पक्षात्मक पद्धति की अनुसूचियाँ आकार में तो छोटी होती हैं, किन्तु विभिन्न प्रकार की

विधियों (Devices) के प्रावधानों से उन्हें विस्तार प्रदान किया जा सकता है।

(3) परिगणनात्मक पद्धति में अनुक्रमणी को विशेष महत्व दिया जाता है। जबकि पक्षात्मक पद्धति में अनुक्रमणी विशेष महत्वपपूर्ण नहीं होती ।

(4) पक्षात्मक पद्धति में पक्ष विश्लेषण , योजक चिन्हों, संश्लेषण, नियमों, उपसूत्रों, अभिधारणों का प्रावधान होता है, जबकि परिगणनात्मक पद्धति में इन सबका प्रावधान नहीं होता।

(5) परिगणनात्मक पद्धति में अंकन का आधार संकुचित होने से विधियों का प्रावधान नहीं हो पाता। इसकी पंक्ति और श्रृंखला में ग्राह्यता का भी अभाव होता है, जबकि पक्षात्मक पद्धति में मिश्रित अंकन के प्रयोग के कारण आधार विस्तृत होता है और विभिन्न प्रकार की विधियों के प्रावधानों से पंक्ति एवं श्रृंखला में स्वतः ही असीमित ग्राह्यता का गुण उत्पन्न हो जाता है।

(6) परिगणनात्मक पद्धति में वर्गकार को स्वायत्तता नहीं होती, जबकि पक्षात्मक पद्धति वर्गकार को असीमित स्वायत्ता प्रदान करती है।

(7) परिगणनात्मक पद्धति द्वारा विषयों को स्थूल वर्गांक प्रदान किये जा सकत हैं, जबकि पक्षात्मक पद्धति द्वारा विषयों को सूक्ष्म वर्गांक प्रदान करना (गहन वर्गीकरण) सम्भव है।

(8) परिगणनात्मक पद्धति सामान्य पुस्तकालयों के लिए उपयुक्त पद्धति है, जबकि पक्षात्मक पद्धति विशिष्ट पुस्तकालयों के लिए उपयुक्त पद्धति है।

(9) परिगणनात्मक पद्धति आधुनिक ज्ञान जगत के बहु आयामी, निरन्तर गतिशील ज्ञान से उत्पन्न विषयों को वर्गीकृत करने में असफल रही है, जबकि वैश्लेषी संश्लेषणात्मक पद्धति आधुनिक ज्ञान जगत के बहुआयामी विषयों को वर्गीकृत करने की चुनौती का सामना करने में एक सक्षम पद्धति सिद्ध हुई है।

3.3 प्रमुख वर्गीकरण प्रणालियाँ (Main Classification Schemes)

व्यावहारिक पक्ष, उपयोगिता एवं व्यापक लोकप्रियता तथा प्रयोग की दृष्टि से प्रमुख 6 वर्गीकरण प्रणालियों का वर्णन आपके अध्ययन हेतु किया जा रहा है।

3.3.1 ड्यूवी डेसिमल क्लासीफिकेशन (डीडीसी)

मेलविल ड्यूवी ने दशमलव वर्गीकरण पद्धति की संरचना से पूर्व अन्यान्य समृद्ध पुस्तकालयों में ग्रन्थों के व्यवस्थापन तथा उस समय प्रचलित विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों का अध्ययन किया। ड्यूवी ने पुस्तकालय में पुस्तकों का विषयानुसार वैज्ञानिक व्यवस्थापन करने के संदर्भ में तत्कालीन पुस्तकालय विज्ञान मनीषी डब्लू.टी.हेरिस (W.T.Harris), जेकब स्वार्ज (Jacob Schwartz) एवं नताले बत्तेजटी (Natale Battezzati) से मार्गदर्शन प्राप्त किया तथा सन 1873 में संक्षिप्त वर्गीकरण पद्धति की

संरचना कर परीक्षण के तौर पर सन 1973-76 तक अमहर्स्ट कालेज के पुस्तकालय में पुस्तकों को वर्गीकृत एवं व्यवस्थित करने में किया। सन 1876 में इस पद्धति का प्रथम संस्करण 'डेसीमल क्लासीफिकेशन एण्ड रिलेटिव इण्डेक्स' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसके शीर्षक पृष्ठ **(Title page)** पर मेलविल ड्यूवी का नाम अंकित नहीं था। प्रथम संस्करण में कुल 42 पृष्ठ थे।

दशमलव वर्गीकरण पद्धति के 22 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं जिसमें से कुछ संस्करण 2 खण्डों में, कुछ 3 खण्डों में तथा बीसवाँ एवं इक्कीसवाँ तथा 22वाँ संस्करण 4 खण्डों में प्रकाशित हुए हैं।

प्रथम खण्ड तालिका (Tables), द्वितीय खण्ड के दो खण्डों (2 एवं 3) में अनुसूचियाँ (Schedules) तथा चतुर्थ खण्ड अनुक्रमणिका (Index) है।

दशमलव वर्गीकरण पद्धति में मेलविल ड्यूवी ने ज्ञान जगत (Universe of knowledge) का विभाजन मुख्यतः दस मुख्य वर्गो (Main classes) में किया है। सम्पूर्ण ज्ञान जगत के सभी प्राचीन, आधुनिक एवं भविष्य में प्रकट होने वाले सम्भावित विषयों के विभाजन एवं समायोजन की व्यवस्था सहित मुख्य वर्गों की रूपरेखा निर्मित की गयी है। डीडीसी में ज्ञान के सभी क्षेत्रों का अनुसूची (Schedule) में व्यवस्थापन विभिन्न उपविभाजनों सहित किया है जिससे वर्गीकरण हेतु किसी भी प्रकार की पाठ्यसामग्री की वर्ग संख्या निर्मित करने में सहायता प्राप्त होती है। डीडीसी में विभिन्न विभागों एवं उप विभागों में विभाजन की व्यवस्था निम्नलिखित स्तर तक की गयी हैं -

1. मुख्य वर्ग (Main classes)
2. विभाग (Division)
3. खण्ड (Section)
4. उप-खण्ड Sub-section)
5. उप-उप खण्ड (Sub-sub-section)
6. सूक्ष्म उप-विभाग (Micro-Sub-division)

3.3.1.1 सहायक सारणियाँ (Auxiliary Tables)

दशमलव वर्गीकरण पद्धति में ज्ञान जगत (Universe of knowledge)को दस मुख्य वर्गों में विभाजित कर विस्तृत अनुसूची निर्मित की गयी है। अनुसूची के साथ साथ विस्तृत ज्ञान को वर्गीकृत करने के लिए प्रथम खण्ड तालिका (Table) में सात विस्तृत सहायक सारणियाँ दी गयी हैं। वर्ग संख्या में विस्तारशीलता लाने के लिए इन सहायक सारणियों का प्रयोग किया जा सकता है।

सहायक सारणियों में प्रयुक्त उप-विभाजन (Sub-division) के प्रयोग की अपनी पृथक विशेषता होने के कारण इन्हें 2 भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) सामान्य उप-विभाजन

सहायक सारणियों में प्रयुक्त इस प्रकार के सामान्य उप-विभाजन का प्रयोग आवश्यकतानुसार किसी भी मुख्य वर्ग के साथ बिना किसी निर्देश के किया जा सकता है।

(ब) विशिष्ट उप-विभाजन

सहायक सारणियों में प्रयुक्त इस प्रकार के सामान्य उप-विभाजन जिनका प्रयोग सर्वत्र न होकर किसी मुख्य विषय के लिए होता है, अर्थात किसी मुख्य वर्ग विशेष के लिए ही निर्मित हुए है, इस प्रकार के उप-विभाजनों को विशिष्ट उप-विभाजन कहा जाता है। सहायक सारिणी की तालिका 3, 4, 6 के विभाजनों एवं उप-विभाजनों को इस श्रेणी में रखा जाता है।

3.3.1.2 दशमलव वर्गीकरण की विशेषताएँ

दशमलव वर्गीकरण पद्धति प्रमुख वर्गीकरण पद्धतियों में पहली है तथा इसके बाद की वर्गीकरण पद्धतियों को मार्ग दर्शन प्रदान किया है। विश्व के अधिकांश पुस्तकालयों में ग्रन्थों का वर्गीकरण इसी पद्धति के द्वारा किया जाता है। अन्य पद्धतियों की अपेक्षा इस पद्धति के नवीन परिवर्धित संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं, जिसे पुस्तकालय कर्मियों को समझने में कठिनाई नहीं होती है। इस पद्धति की विशेषताओं को सीमा में नहीं बांध जा सकता तथापि इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- परिगणनात्मक पद्धति (Enumerative Scheme)
- शुद्ध अंकन (Pure Notation)
- पदानुक्रमिक अंकन (Hierarchical Notation)
- स्मृति सहायक (Mnenomics)
- सहायक सारणियाँ (Auxiliary Tables)
- विधियाँ (Devices)
- सामान्य एवं विशिष्ट काल सारणी (General & Special tables for time)
- सापेक्षिक अनुक्रमणिका (Relative Index)
- नवीन संस्करणों का प्रकाशन (Publication of new editions)
- सभी प्रकार के पुस्तकालयों के लिए उपयोगी (Useful for all type of Librar ies)

यह अत्यधिक लोकप्रिय वर्गीकरण पद्धति है।इसे 135 देशों के लगभग 2,00,000 पुस्तकालय उपयोग में ला रहे हैं। इसका अनुवाद 35 भाषाओं में हो चुका है। इसे प्रकाशनाधीन -सूचीकरण (CIP- Catalouging-in-publication)डेटा और 'मार्क' (MARC)रिकॉर्डस में भी उपयोग में लाया जा रहा है। इस प्रकार ड्यूवी डेसिमल क्लैसीफिकेशन पद्धति ऑनलाइन युग में प्रवेश कर चुकी है। इसकी सम्पादकीय नीति

समिति (Editorial Policy Committee) वर्गीकरण के विकास को निरन्तर गति प्रदान करती है। और ऐसी नीतियों का सुझाव देती है जो ऑन लाइन सूचना संग्रह और पुनर्प्राप्ति की दृष्टि से इसे और अधिक ग्राह्य और अनुकूल बनाने में सहायक हो सकें। यह सीडी रोम (CD-ROM) पर पहले से ही उपलब्ध है। इस प्रकार वर्तमान में यह पद्धति सर्वव्यापक और लोकप्रिय है।

3.3.2 यूनीवर्सल डेसीमल क्लॉसीफिकेशन (यू.डी.सी.)

सन 1895 में ब्रुसेल्स में वांग्डमय सूची (Bibliography)पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हुआ था, जिसमें विषय विशेषज्ञों ने अन्तर्राष्ट्रीय वांग्डमयात्मक संस्थान (Institute International de bibliography (IIB)की स्थापना के लिए अनुसंशा की थी। परिणामस्वरूप, ब्रुसेल्स नगर में बेल्जियम के पेशे से वकील, दो उत्साही युवकों - हेनरी लॉ फॉउन्टेन (Henry La Fountain) और पॉल ऑटलेट (Paul Otlet) ने 'Institute International de Bibliography' (IIB)नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था ने ज्ञान जगत के सभी ग्रन्थों की 'अन रेपरटायर बिब्लियोग्राफिक यूनीवर्सल (Un Rrepertiore bibliography Universal) बनाने के लिए एक परियोजना प्रायोजित की जिसका उद्देश्य एवं कार्य समस्त प्रकाशित पाठ्य सामग्री की सूचना के लिए 'वर्गीकृत पत्रक अनुक्रमणिका' (Classified card index) का निर्माण करना था। यह कार्य वर्गीकरण पद्धति के बिना सम्भव नहीं था। अतः आई.आई.बी. (IIB) ने दशमलव वर्गीकरण पद्धति के जनक मेलविल ड्यूवी से डी डी सी का प्रयोग इस परियोजना में करने की अनुमति प्राप्त की। वास्तव में यह पद्धति दशमलव पद्धति में पंचम संस्करण (5th Edition, 1894) के सिद्धान्तों पर आधारित है। हेनरी लॉ फॅान्टेन तथा पॉल ऑटलेट के सार्थक प्रयासों के बाद सन् 1905 में फ्रेंच भाषा (French Language)में मैन्युल द रेपटायर बिब्लियोग्राफिक यूनीवर्सल (Manual de Repertior bibliographic Universal) के नाम से इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ।

इस पद्धति के संशोधन तथा परिवर्धन के लिए पॉल ऑटलेट तथा हेनरी लॉ फॉन्टेन ने डंकर ड्यूस (Donker Duyuis) को सम्मिलित किया, जिसने कालान्तर में इस पद्धति की विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी (Science and Technology) की अनुसूची के संशोधन में और संरचना में महत्पूर्ण कार्य किया। पॉल ऑटलेट तथा हेनरी लॉ फॉन्टेन ने सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी (Social Science and Humanity)विषयों से सम्बन्धित अनुसूची में आवश्यक संशोधन किए। अतः इस पद्धति का द्वितीय संस्करण (2nd Edition) 1927 से 1933 के मध्य पूर्ण कर, 'क्लासीफिकेशन डेसीमल यूनीवर्सल' (Classification Decimal Universal) के नाम से चार भागों में प्रकाशित हुआ।

इस पद्धति का तृतीय संस्करण जर्मन भाषा में सन 1934 से प्रारम्भ होकर सन 1952 में पूर्ण होकर 'डेसीमल क्लासीफिकेशन' (Decimal Classification) के नाम से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण की अनुक्रमणिका सन 1952 में पूर्ण हुई।

इस पद्धति का चतुर्थ संस्करण अंग्रेजी भाषा में ब्रिटिश स्टैन्डर्ड्स इन्स्टीट्यूशन (British Standard Institution 'BSI') के निर्देशन में 'यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन (Universal Decimal Classification)के नाम से सन 1936 से प्रारम्भ हो कर सन 1968 में पूर्ण हुआ। इस संस्करण की प्रथम अनुसूची सन 1943 में प्रकाशित की गयी। सन 1948 में प्रथम बार अंग्रेजी भाषा में इस पद्धति का संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हुआ तथा क्रमशः सन 1957 एवं 1961 में अंग्रेजी भाषा में द्वितीय एवं तृतीय संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हुए। इस पद्धति का तृतीय संशोधित संस्करण भी सन 1961 में प्रकाशित हुआ। इस पद्धति के फ्रेंच, जर्मन एवं अंग्रेजी भाषा में सम्मिलित रूप से संक्षिप्त संस्करण 1958 में प्रकाशित हुए। दस वर्ष बाद इसका सम्पूरक (Suppliment) सन 1968 में प्रकाशित हुआ। इसके संक्षिप्त संस्करण (Abridged Edition)13 भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में इस पद्धति का पुनर्निर्माण मुक्त पक्षात्मक प्रणाली के रूप में किया जा रहा है।

3.3.2.1 यू.डी.सी. की विशेषताएँ

इस पद्धति की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

- पद्धति का अंकन दशमलव वर्गीकरण पद्धति के समान सरल एवं स्पष्ट हैं। अनुसूची में हिन्दी अरबी अंक 0 से 9 का प्रयोग दशमलव भिन्न (Decimal Fraction) के सिद्धान्त पर हुआ है। मिश्रित अंकन के प्रयोग से इसके अंकन में असीमित ग्रहायता (Hospitality) है।
- इस पद्धति के वर्गांक को वैकल्पिक रूप में परिवर्तित करने का प्रावधान होने के कारण इसके अंकन में लचीलापन है।
- इस पद्धति में विभिन्न सहायक सारणियों (Auxiliarlies)का प्रयोग होने के कारण यह पद्धति वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक (Analytico-synthetic)गुणों से युक्त है।
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (Science & Technology)पुस्तकालयों के लिए यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी है।
- इस पद्धति की अनुक्रमणिका में अनुसूची के पदों के वर्गानुक्रम में व्यवस्थापन के कारण अनुक्रमणिका बहुत ही उपयोगी है।
- इस पद्धति के संशोधन कार्य में पाठकों के सुझाव भी प्राप्त किये जाते हैं।

इस पद्धति का प्रयोग व्यापक स्तर पर विश्व के सभी देशों में विभिन्न पुस्तकालयों एवं सूचना केन्द्रों में ग्रन्थों के व्यवस्थापन एवं सूचना पुनर्प्राप्ति (Information retrieval) के लिए किया जा रहा है। अमेरिका, जापान, इटली, फ्रांस, रूस आदि देशों में इस पद्धति का प्रयोग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित पुस्तकालयों से अधिक किया जा रहा है। भारत में भी इस पद्धति का प्रयोग पुस्तकों के व्यवस्थापन के साथ-साथ

सामयिकियों के अनुक्रमणीकरण एवं सारांशीकरण के लिए किया जा रहा है। एशिया तथा अफ्रीका के देशों में भी इस पद्धति का प्रयोग करने के प्रति अभिरूचि जागृत हुई है।

3.3.3 कोलन क्लासीफिकेशन (सी सी)

इस प्रणाली के प्रर्वतक डा. एस.आर.रंगनाथन (1892-1972) ने विभिन्न प्रचलित वर्गीकरण पद्धतियों का गहन अध्ययन कर वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक (Analylico-Synthetic) वर्गीकरण पद्धति की संरचना की। यह मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण है जो वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त के अनुरूप है तथा यह अभिधारणाओं एवं सिद्धान्तों पर आधारित है। इस पद्धति की मुख्य संरचना पर आधारित मूल नियमों, अनुसूचियों तथा सामान्य स्थलों, पाँच मूलभूत श्रेणियां व्यक्तित्व, पदार्थ, उर्जा स्थान तथा काल से सम्बन्धित है। इस पद्धति में वैचारिक, शाब्दिक और अंकन तीन धरातलों की पहचान के पश्चात वर्गीकरण का कार्य वस्तुपरक बन जाता है।

कोलन वर्गीकरण पद्धति का प्रथम संस्करण 1933 में प्रकाशित हुआ। इस पद्धति के प्रथम संस्करण में कोलन (:) का एकमात्र योजक चिह्न होने के कारण 'कोलन क्लासीफिकेशन' के नाम से जाना जाता है। इसमें मिश्रित अंकन का प्रयोग किया गया है, जिसमें रोमन दीर्घ तथा लघु अक्षर एवं अरेबिक अंकों का प्रयोग किया गया था। द्वितीय संस्करण सन 1939 में प्रकाशित हुआ जिसमें पाँच मूलभूत श्रेणियाँ (Five Fundamental Catagories)PMEST को विषय के विभाजन तथा वर्गीकरण का आधार बनाया गया। तृतीय संस्करण 1950 में प्रकाशित हुआ, जिसमें दो प्रकार के योजक चिन्ह : (Colon), - (Hyphen) का प्रयोग हुआ। पहले सभी श्रेणियों के पृथक्कीकरण के लिए : (colon) का ही प्रयोग किया जाता था। सन 1952 में इस पद्धति का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें चार प्रकार के योजकों का प्रयोग किया गया। व्यक्तित्व पक्ष के लिए, (Comma), पदार्थ पक्ष के लिए; (Semicolon), ऊर्जा पक्ष के लिए : (Colon) तथा देश एवं काल दोनों पक्षों के लिए संयुक्त रूप से .(Dot) का प्रयोग किया गया। सन 1954 में पद्धति का पाँचवां संस्करण प्रकाशित हुआ जिसकी अनुसूची में काफी परिवर्तन किये गये। छठवाँ संस्करण सन 1960 में प्रकाशित हुआ जिसमें अनेक संशोधन किये गये। अनुसूची में परिवर्तन के साथ-साथ स्थान, काल पक्ष के स्तरों का प्रावधान किया गया तथा ऊर्जा सामान्य एकलों का प्रयोग विषय वर्गीकरण के लिए किया गया। छठवाँ पुनर्मुद्रित एवं संशोधित संस्करण सन 1963 में प्रकाशित किया गया जिसमें विभिन्न मुख्य वर्गों एवं नियम भागों में किये गये परिवर्तनों का उल्लेख परिशिष्ट (Annexure) में पृष्ठ संख्या 19 से 28 में दिया गया है।

कोलन वर्गीकरण पद्धति के पुर्नसंशोधित छठवें संस्करण को तीन भागों (Three parts) में विभाजित किया गया है।प्रथम भाग में क्रमांक संख्या (Call Number), वर्ग संख्या (Class number), ग्रन्थ संख्या (Book number), संग्रह

संख्या (Collection number) का विवरण है। अध्याय 5 में Focus and Facet, एकल (Isolate), आवर्तन एवं स्तर (Round and Levels) तथा विभिन्न विधियों (Devices) के प्रयोग के नियम हैं। इसी भाग में वर्गीकरण के उपसूत्रों (Canon of Classification),सामान्य एकल (Common Isolate) के प्रकार एवं प्रयोग की विधियों, समय एकल, दशा सम्बन्ध तथा सभी मुख्य वर्गों द्वारा वर्ग संख्या निर्माण के नियमों को दिया गया हैं।

द्वितीय भाग में अनुसूची (Schedules) दी गयी है, जिसमें ग्रन्थ संख्या, मुख्य वर्ग, सामान्य एकल, समय एकल, देश एकल, भाषा एकल, तथा दशा सम्बन्धों की सारणियों के साथ साथ प्रत्येक मुख्य वर्ग से सम्बन्धित विषयों का वर्गीकरण करने तथा वर्ग संख्या निर्मित करने हेतु पक्ष-उपसूत्र का प्रावधान किया गया है। प्रत्येक विषय के विभाजन एवं उपविभाजनों को पक्षों में तथा पक्षों को एकलों में विभाजित कर प्रत्येक को अंक से सूचित किया गया है। इसी भाग में प्रत्येक मुख्य वर्ग के अन्तर्गत अर्थात अनुसूची में प्रयुक्त प्रत्येक पद का व्यवस्थापन वर्णानुसार (Alphabetical Arrangement)किया गया है। जिस अनुसूची की अनुक्रमणिका (Index to Schedule) कहते हैं।

तृतीय भाग में Classic (श्रेष्ठ ग्रन्थों) तथा विशिष्ट नामों सहित धार्मिक ग्रन्थों के विशिष्ट नामों की अनुसूची (Schedules of classics and Sacred Books with special names) दी गयी है। जिसमें साहित्य, धर्म, दर्शन एवं आयुर्वेद से सम्बन्धित विभिन्न श्रेव्य ग्रन्थों की आख्याओं एवं नामों के साथ उनके सम्मुख निर्मित वर्ग संख्या (Readymade class number) दी गयी है जिसे अनुक्रमणिका में वर्णानुक्रम में व्यवस्थित किया गया है।

कोलन वर्गीकरण पद्धति का सप्तम संस्करण सन 1987 में प्रकाशित हुआ है। जिसके 5 भाग है। सप्तम संस्करण में मुख्य वर्गों, अनुसूची, अनुक्रमणिका तथा प्रतीक अंकों में काफी परिवर्तन किया गया है। अभी इसका प्रयोग किसी भी पुस्तकालय में नहीं हो रहा है।

पुस्तकालय विज्ञान के विशेषज्ञ तथा रंगनाथन के मार्गदर्शक सेयर्स ने रंगनाथन की प्रतिभा से प्रभावित होकर कहा था कि ''एक युग मेल्विल ड्यूवी का था तो आने वाला युग डॉ. रंगनाथन के नाम से जाना जाएगा।'' निःसन्देह भारत में पुस्तकालय विज्ञान जगत को रंगनाथन युग कहा जाता हैं।

3.3.4 लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस क्लासीफिकेशन (एल सी)

पुस्तकालय विज्ञान विशेषज्ञ डॉ. हरबर्ट पुटनम (1862-1955) ने लाइब्रेरी आफ कांग्रेस के सम्पूर्ण वृहत संकलन को आधुनिक ज्ञान वर्गीकरण की किसी मान्य पद्धति के अनुसार व्यवस्थित करने के लिए विषय विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया। इस समिति में चार्ल्स मारटेल, और विलियम पार्कर कटर सम्मिलित थे। इस समिति

ने तत्कालीन प्रचलित पद्धतियों का विषद् अध्ययन तथा अवलोकन करने और उनकी आवश्यक विशेषताओं को अपनाकर एक ऐसी पद्धति का निर्माण की योजना तैयार की जो पुस्तकालय वर्गीकरण की दृष्टि से व्यावहारिक और सुविधाजनक हो।

समिति के घोर परिश्रम के पश्चात 1904 में लाइब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण की रूपरेखा का प्रकाशन हुआ। यह विशुद्ध परिगणनात्मक पद्धति है। इसके 45 खण्ड हैं। इसके 21 वर्ग हैं, जो 29 भगों में विभाजित है।

मुख्य वर्गो की रूपरेखा में लाइब्रेरी आफ कांग्रेस की योजना में अंग्रेजी वर्णमाला के बड़े अक्षरों का प्रयोग अंकन के लिए किया गया है। जिनमें I,O,W,X,Y, को सम्भाव्य विषयों के लिए रिक्त रखा गया है।

एल सी का अंकन मिश्रित अंकन है जिसमें अक्षरों तथा अरेबिक संख्याओं का प्रयोग किया गया है। विभाजन विस्तार 1-9999 तक संख्याकित किया गया है।इसमें प्रमुख विभागों और वर्गों के लिए एक अथवा दो बड़े अक्षरों (Capital letter) का प्रयोग किया गया है। विभाजनों और उपविभाजनों के लिए इन अक्षरों के साथ संख्याओं को सम्मिलित किया गया है। उदाहरण -

Q विज्ञान
QA गणित
QB खगोल विद्या
QC भौतिकी
1 सामयिकी
3 संकलित कृतियाँ
5 शब्दकोश
7 इतिहास आदि।

इस प्रकार यह पद्धति पूर्णतः परिगणनात्मक है और इसमें कुछ सहायक अनुसूचियाँ दी गयी हैं। पक्ष विश्लेषण और दशा विश्लेषण का प्रावधान नहीं हैं

एल.सी. में प्रत्येक वर्ग को एक पृथक आनुवर्णिक सापेक्षिक अनुक्रमणी (Alphabetical Relative index) प्रदान की गयी है। ये अनुक्रमणिकाएँ केवल अपने स्वयं के वर्ग से सम्बन्धित हैं और अन्य किसी सम्बन्धित विषय वर्ग के प्रकरणों को प्रस्तुत नहीं करती।

लाइब्रेरी आफ कांग्रेस वर्गीकरण एक प्रभावकारी पद्धति है जिसमें प्रत्येक विषय का सूक्ष्मतम वर्गीकरण किये जाने तथा पृथक अनुक्रमणिका होने के कारण किसी भी विशिष्ट पुस्तकालय के लिए अधिक उपादेय है। एल. सी. का उपयोग संयुक्त राज्य अमेरिका के 60 प्रतिशत शोध पुस्तकालयों तथा 50 प्रतिशत महाविद्यालय

पुस्तकालयों में हो रहा है। इसका उपयोग अफ्रीका, एशिया और यूरोप के कुछ विशाल पुस्तकालयों में भी हो रहा है। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस क्लासीफिकेशन की वर्ग संख्याएं सी आई पी डेटा (CIP- Data) और मार्क रिकार्ड (Mark Records) पर भी उपलब्ध हैं। यह पद्धति अन्य केन्द्रीयकृत ऐजेन्सियों द्वारा भी उपयोग में लाई जा रही हैं। इसका उपयोग आन लाइन सूचियों के लिए भी किया जा रहा है। इसे भारी संस्थागत समर्थन प्राप्त होने के कारण इसका भविष्य उज्वल है।

3.3.5 बिब्लियोग्राफिक क्लासीफिकेशन (Bibliographic Classification)

एच.ई. ब्लिस द्वारा निर्मित बिब्लियोग्राफिक क्लासीफिकेशन (बी.सी.) अमेरिका की आधुनिकतम ग्रन्थ वर्गीकरण पद्धतियों की अंतिम पद्धति है। इसका प्रकाशन 1935 में किया गया । और अनुसूचियों का अंतिम पूर्ण भाग 1953 में प्रकाशित हुआ।

बी.सी. का विस्तृत संस्करण चार खण्डों में 1940 और 1953 के बीच प्रकाशित किया गया।

प्रथम खण्ड- 1940 में पूर्ण रूप से विस्तृत अनुसूचियों सहित प्रकाशित हुआ जिसमें A से G तक के मुख्य वर्ग-दर्शन और विज्ञान, प्रस्तावना, सहायक सारणियाँ तथा इसके साथ वर्गों की सापेक्षिक अनुक्रमणी सम्मिलित थे।

द्वितीय खण्ड - इसका प्रकाशन 1947 में हुआ जिसमें मानव विज्ञान (Human Science) के वर्ग H से K प्रस्तावना तथा अनुक्रमणी सम्मिलित किये गये थे।

तृतीय खण्ड - इसका प्रकाशन 1953 में किया गया जिसमें L से Z तक विशेष मानव विज्ञान, इतिहास, धर्म, नैतिक शास्त्र, विशेष सामाजिक अध्ययन, भाषा और साहित्य आदि सम्मिलित थे।

चतुर्थ खण्ड - इसका प्रकाशन भी 1953 में हुआ जिसमें सामान्य अनुक्रमणी तीनों खण्डों की अनुसूचियों के लिए दी गयी है और साथ ही प्रस्तावना भी दी गयी है।

सम्पूर्ण वर्गीकरण पद्धति की योजना 2000 पृष्ठों की है।इसकी वास्तविक आख्या है - "A Bibliographic classification, extended by systematic auxiliary schedules for composite specification and notation by Henry Evelyn Bliss, in four volumes. N.Y., H.W. Wilson company, 1940."

इस पद्धति का अंकन मिश्रित अंकन है और मुख्यतः संक्षिप्त है। इसमें 35 अंकों का आधार चुना गया है। 1/9 और A/Z जिसमें 1/9 का प्रयोग सर्वसामान्य संख्यात्मक उप विभाजनों और A/Z को भौगोलिक विभाजनों के लिए किया गया है।

बी.सी.की अनुक्रमणिका अधिक वृहत है। इसमें 45000 प्रविष्टियाँ हैं ।

इस पद्धति के द्वितीय संस्करण को बी.सी.-2 के नाम से जाना जाता है। इसे यूनाइटेड किंगडम में जे. मिल्स द्वारा तैयार किया गया था। यह सामान्य वर्गीकरण

पद्धतियों में, सबसे अधिक वैज्ञानिक पद्धति है और पक्षात्मक वर्गीकरण का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। इसका विवरण निम्नलिखित है।

Mills, J. (*el. al*). Bliss Bibliographic Classification, 2nd ed. London : Buterworths.

इसके मुख्य वर्ग और अंकन इस प्रकार हैं -

मुख्य वर्ग और अंकन

A	दर्शन, गणित इत्यादि (Philosophy,Maths etc.)	Q	समाज कल्याण (Social Welfare)
B/G	भौतिकी, प्राकृतिक विज्ञान (Physics,Natural Sciences)	R	राजनीतिशास्त्र (Political Science)
H	मानव, मानवशास्त्र (Man, Anthropology)	S	विधि (Law)
I	मनोविज्ञान	T	अर्थशास्त्र (Economics)
J	शिक्षा (Education)	U	प्रौद्योगिकी (Technology)
K	सामाजिक विज्ञान (Social Sciences)	V	ललित कलाएँ (Fine Arts)
L/O	इतिहास (History)	W	भाषा विज्ञान और साहित्य (Languages & Literature)
P	धर्म (विकल्प Z) (Religion (Alternative)-Z)	Z	धर्म (विकल्प P) (Religion (Alternative P)

इसके अतिरिक्त अंकों के संश्लेषण के लिए 6 सहायक तालिकाएँ दी गयी हैं।

(1) सामान्य उपविभाजन (Common subdivisions)

(2) व्यक्ति (Persons)

(3) स्थान (Places)

(4) भाषा (Languages)

(5) प्रजाति समूह (Ethnic Groups)

(6) समयावधि (Periods of time)

विशिष्ट विशेषताएँ

(1) इसके मुख्य वर्गों का अनुक्रम सुनियोजित है। इसका आधार ब्लिस की वैज्ञानिक और शैक्षिक सहमति की विचारधारा है।

(2) स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप कुछ मुख्य वर्गों को वैकल्पिक स्थान प्रदान किये गये हैं। उदाहरणार्थ - धर्म (Religion)को या तो P के अंतर्गत या Z के अंतर्गत रखा जा सकता है। इसी प्रकार आर्थिक इतिहास को या तो सामान्य इतिहास के साथ या अर्थशास्त्र के साथ रखा जा सकता है।

अंकन

इसका अंकन प्रशंसनीय है। यह जटिलता में संतुलित है। यह तर्कसंगत रूप में मिश्रित, सरल, सूक्ष्म किन्तु प्रभावी है। यह पूर्वव्यापी (Retroactive) है अर्थात इसे पीछे की ओर से जोड़ा जा सकता है।

JK Curriculum

JN Secondary Education

JNK Secondary School curriculum

पद्धति का केवल कुछ भाग ही प्रकाशित किया गया है।, जबकि दूसरे भागों के प्रकाशन का कार्य प्रगति पर है।

उपयोग

यह अभी भी बहुत लोकप्रिय नहीं है। यू के, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के लगभग 90 पुस्तकालय इसका उपयोग कर रहे हैं। तकनीकी दृष्टि से आधुनिक और उत्कृष्ट वर्गीकरण पद्धति होने के कारण इसका भविष्य उज्जवल है।

3.3.6 ब्रॉड सिस्टम ऑफ आर्डरिंग (बी एस ओ)

अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान सूचना प्रणाली (World Science Information System) का नाम कालान्तर में यूनिसिस्ट (UNISIST) कर दिया गया। यूनेस्को को 1971 में यूनिसिस्ट प्रोग्राम के लिए एक परिवर्तन-परक भाषा (Switching language)की आवश्यकता थी इसके लिए एक कार्यदल का गठन किया गया जिसने एसलिब से उपलब्ध वर्गीकरण योजनाओं का अध्ययन कर यूनिसिस्ट हेतु एक उपयुक्त वर्गीकरण प्रणाली जो परिवर्तनकारी भाषा का कार्य कर सके, के लिए रूपरेखा तैयार की। सन 1972 में बुडापेस्ट में इंटरनेशनल फेडरेशन आफ डाक्युमेंटेशन (FID) का सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमें केन्द्रीय वर्गीकरण समिति के पैनल का आकार बढ़ाने का निश्चय किया गया जिससे एक नए कार्यकारी समूह FID/SRC (Subject field Reference Code) की स्थापना हुई। इसका कार्यक्षेत्र ज्ञान के समस्त क्षेत्रों के लिए सूचना तंत्रों के मध्य आपसी संबंध एवं सहयोग स्थापित करना था। इसके लिए एक ऐसी विस्तृत विषय आर्डरिंग प्रणाली का प्रारूप तैयार करना और विकसित करना था, जिसका उपयोग हस्तचालित प्रणाली और यांत्रिकी सूचना तंत्रों में किया जा सके। इसका प्रथम प्रारूप इरिक जे. कोट्स और जी.ए. लॉयड ने तैयार किया। बीएसओ (BSO) की प्रथम रूपरेखा 1975 में प्रस्तुत की गई। इसका प्रकाशन संशोधन सहित 1976 में हुआ।

1977 में इसकी द्वितीय संशोधित रूपरेखा प्रकाशित की गई।

यूनेस्को की आर्थिक सहायता एवं एफआईडी (FID) के सहयोग से बीएसओ के तृतीय संस्करण का प्रकाशन संशोधन के साथ 1978 में "BSO-Broad system of ordering" आख्या से किया गया जो सूचना स्थानान्तरण के लिए एक सामान्य वर्गीकरण पद्धति है। इसका मैन्युअल 1979 में प्रकाशित किया गया। इसमें इस पद्धति को विस्तृत किया गया है और सैद्धान्तिक तथा भौतिक अवधारणा के विकास का उल्लेख किया गया है।

बी एस ओ का लक्ष्य एक ऐसी वर्गीकरण पद्धति का निर्माण करना था जो एक सर्वोपरि वर्गीकरण का कार्य कर सके जिससे अनुक्रमणीकरण भाषाओं, विशिष्ट वर्गीकरण प्रणालियों एवं सम्बद्ध सूचना केन्द्रों, प्रणालियों एवं सेवाओं में पर्याप्त सूचना स्थानान्तरण की प्रक्रिया को नियन्त्रित किया जा सके।

इस वर्गीकरण प्रणाली के अन्तर्गत विषयों का आकलन तथा अनुक्रम तीन स्तरों पर किया गया है। विषय क्षेत्रों, विषय विशेष तथा विषय विशेष के विभाजन।

विषय क्षेत्रों की रूपरेखा निम्नलिखित प्रकार हैं -

100	सामान्य ज्ञान (Knowledge in general)	500	मानविकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक विज्ञान (Humanities, cultural and social science)
200	विज्ञान और प्रौद्योगिकी (Science and technology)	600/890	प्रौद्योगिकी (Technology)
300	जीव विज्ञान (Life science)	910	भाषा, भाषा विज्ञान और साहित्य (Language,Linguistics & Literature)
460	शिक्षा (Education)	940	कलाएँ (Arts)
480	मनोरंजन एवं खेलकूद (Sports and Games)	970	धर्म (Religion)

इसके अंकन सैकड़ों एवं हजारों के पूर्णांकों की पंक्तियों में व्यवस्थित किये गये है। इसमें संख्याओं का संश्लेषण सम्भव है। केवल दो विराम चिह्नों ' -' (Hypen) और ' , ' (Comma) का प्रयोग किया गया है। इसमें बहुआयामी तथा बहुविषयी दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति भी अंकन के माध्यम से की जा सकती है।

उदाहरणार्थ -

510 - 112 Philosophy of History

395, 60 Environmental Pollution

बी.एस.ओ. पूर्णतः पक्षात्मक वर्गीकरण पद्धति पर आधारित है। इसमें 4000 पदों को सम्मिलित किया गया है। विश्लेषण/संश्लेषण का प्रावधान जटिल और मिश्रित

विषयों के वर्गांकों के निर्माण हेतु किया गया है।

इसकी अभिकल्पना एक परिवर्तन-परक भाषा के रूप में की गयी थी अर्थात एक मध्यस्थ अथवा परिवर्तन की भाषा के रूप में, जिसके द्वारा सूचना को, एक अनुक्रमणीकरण भाषा से दूसरी भाषा में परिवर्तित किये जा सके। इसका अर्थ है कि इसकी मूल परिकल्पना सूचना केन्द्रों को वर्गीकृत करने के लिए की गयी थी, न की प्रलेखों को। किन्तु इसके अभीष्ट उद्देश्य के बावजूद इसका उपयोग कुछ पुस्तकालयों में शेल्फ वर्गीकरण के लिए किया जा रहा है। इसे खोज नीति के निरूपण एवं उसे रूपांतरिक करने में सहायक के रूप में उपयोगी पाया गया है।

ब्रॉड सिस्टम ऑफ ऑडरिंग (बी एस ओ) एम एस - डॉस (MS-DOS) के परिवेश में कम्प्यूटर डिस्क पर उपलब्ध है। इसका प्रतिलिप्याधिकार (Copyright) नवनिर्मित बी एस ओ पैनल लिमिटेड के निर्देशक ई.जी. कोट्स के पास है।

3.4 सारांश (Summary)

पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रथम आधुनिक पद्धति अर्थात् ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन के 1876 में प्रकाशन के बाद अनेक सामान्य वर्गीकरण पद्धतियों का विकास हुआ। रंगनाथन ने इन्हें छः प्रजातियों में विभाजित किया है, जिनके नाम हैं- परिगणनात्मक, लगभग परिगणनात्मक, लगभग पक्षात्मक, अनम्य पक्षात्मक लगभग मुक्त पक्षात्मक और मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण पद्धतियाँ। प्रजातियों की श्रेणियाँ इस बात पर निर्भर करती है कि परिगणन किस सीमा तक है अथवा इसमें मुख्य अनुसूचियों तथा विशिष्ट एवं सामान्य एकलों की सहायता से संश्लेषण का प्रावधान किस सीमा तक है। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस क्लासीफिकेशन अथवा ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन के प्रारम्भिक संस्करण परिगणनात्मक वर्गीकरण पद्धति के उदाहरण हैं। कोलन क्लासीफकेशन के चतुर्थ संस्करण (1952) के बाद के संस्करण मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण के उदाहरण हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह विकास परिगणनात्मक के पक्षात्मक वर्गीकरण की ओर हुआ है। यह कहना सही होगा कि पुस्तकालय वर्गीकरण का भविष्य वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक प्रकृति वाली पक्षात्मक पद्धतियों के साथ सुनिश्चित है।

सामान्य वर्गीकरण पद्धतियों में ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन का प्रथम प्रकाशन 1976 में हुआ। इसकी परिकल्पना मेलविन ड्यूवी ने की थी। इस पद्धति को 135 देशों के 2 लाख पुस्तकालय उपयोग मे ला रहे हैं। यह अत्यधिक प्रचलित पुस्तकालय वर्गीकरण पद्धति है। यू डी सी वर्गीकरण पद्धति डी डी सी पर आधारित वर्गीकरण पद्धति है। इसकी परिकल्पना सूक्ष्म साहित्य को वर्गीकृत करने के लिए एक ग्रन्थात्मक वर्गीकरण के रूप में की गयी थी। यह सम्पूर्ण, मध्यम और संक्षिप्त इन तीन प्रकार के संस्करणों में उपलब्ध है। इसका उपयोग पूरे विश्व में लगभग 1 लाख

पुस्तकालय और सूचना केन्द्र कर रहे हैं। कोलन क्लासीफिकेशन पद्धति की परिकल्पना एस.आर. रंगनाथन ने की थी तथा इसका प्रथम संस्करण 1933 में प्रकाशित हुआ। इन्हें भारत में पुस्तकालय विज्ञान ओर पुस्तकालय आन्दोलन का जनक कहा जाता है। इसका सातवां संस्करण 1987 में प्रकाशित हो चुका है। यह मुक्त पक्षात्मक वर्गीकरण का एक नमूना है, जिसका सैद्धान्तिक आधार सुदृढ़ है। इसका अंकन जटिल है। जिसका आधार मिश्रित है। दूसरी ओर, लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस क्लासीफिकेशन को लाइब्रेरी आफ कांग्रेस, यू.एस.ए के लिए निर्मित किया गया था। इसके 45 खण्ड है, जिनमें 11000 से अधिक पृष्ठ हैं यह एक परिगणनात्मक वर्गीकरण पद्धति है जिसमें 21 मुख्य वर्ग है। इसका अंकन मिश्रित है। यद्यपि इसका सैद्धान्तिक आधार सुदृढ़ नहीं है, तथापि यह यू एस ए के बड़े पुस्तकालयों में लोकप्रिय है। बिब्लियोग्राफिक क्लासीफिकेशन की परिकल्पना 1940-1953 में यू.एस ए में एच ई ब्लिस ने की थी। इसके द्वितीय संस्करण का 1977 से अंशतः संशोधन यू.के.के.जे. मिल्स द्वारा किया जा रहा है। रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पक्ष विश्लेषण की आधुनिक विधियों पर आधारित होने के कारण, यह अत्यधिक वैज्ञानिक वर्गीकरण पद्धति समझी जाती है। इसे लगभग 90 पुस्तकालयों में उपयोग में लाया जा रहा है। ब्राड सिस्टम आफ आर्डरिंग (BSO) की परिकल्पना 1977 में एक परिवर्तनपरक भाषा के रूप में की गयी थी। कुछ पुस्तकालय इसका उपयोग शेल्फ व्यवस्था के लिए कर रहे हैं

3.5 सम्बन्धित प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन (संस्करण 21) किस प्रकार की पद्धति है?
   (1) परिगणनात्मक पद्धति (2) लगभग परिगणनात्मक पद्धति
   (3) लगभग पक्षात्मक पद्धति (4) पक्षात्मक पद्धति
2. कोलन क्लासीफिकेशन (संस्करण सात) किस प्रकार की पद्धति है।
   (1) मुक्त पक्षात्मक (2) परिगणनात्मक
   (3) लगभग पक्षात्मक (4) पक्षात्मक
3. बिब्लियोग्राफिक क्लासीफिकेशन के प्रवर्तक हैं -
   (1) सी ए कटर (2) एस आर रंगनाथन
   (3) जे डी ब्राउन (4) एच ई ब्लिस
4. निम्नलिखित का मिलान कीजिए-

सूची (अ)	सूची (ब)
(1) एस.आर.रंगनाथन	(अ) बिब्लियोग्राफिक क्लासीफिकेशन

(2) आटलेट एवं हेनरी ला फॉन्टेन (ब) ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन

(3) मेलविल ड्यूवी (स) यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन

(4) एच ई ब्लिस (द) लाइब्रेरी ऑफ काँग्रेस क्लासीफिकेशन

(य) कोलन क्लासीफिकेशन

उत्तर -

(1) 1. (य), 2.(स), 3. (ब), 4. (अ)

(2) 1. (अ), 2.(ब), 3. (स), 4. (द)

(3) 1. (ब), 2.(द), 3. (य), 4. (स)

(4) 1. (द), 2.(य), 3. (अ), 4. (स)

5. वैश्लेषी - संश्लेषणात्मक वर्गीकरण पद्धति स्वतः निर्मित वर्गांक प्रदान करती है।- (1) सत्य (2) असत्य

6. यू डी सी एक .... वर्गीकरण पद्धति है -

(1) मुक्त पक्षात्मक (2) लगभग पक्षात्मक

(3) परिगणनात्मक (4) लगभग परिगणनात्मक

7. वर्गीकरण के सम्बन्ध में 1876 निम्नलिखित में से किससे सम्बन्धित है।

(1) जे.डी.ब्राउन (2) सी.ए.कटर

(3) डब्ल्यू.सी.बी.सेयर्स (4) मेलविल ड्यूवी

8. ब्रॉड सिस्टम ऑफ ऑर्डरिंग से निम्नलिखित में से क्या हैं-

(1) एक सूची संहिता (2) एक वर्गीकरण पद्धति

(3) कम्प्यूटर साफ्टवेयर (4) उपरोक्त में से कोई नहीं

9. एफ आई डी द्वारा 1978 में प्रकाशित वर्गीकरण पद्धति निम्नलिखित में से कौन सी है। -

(1) यू डी सी (2) डी डी सी

(3) बी एस ओ (4) सी सी

10. पुस्तकालय वर्गीकरण की समस्त सामान्य पद्धतियाँ परिगणनात्मक हैं।

(1) सत्य (2) असत्य

लघुउत्तरीय प्रश्न -

1. पक्षात्मक प्रणाली की विवेचना कीजिए।

2. परिगणनात्मक प्रणाली की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

3. वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक वर्गीकरण प्रणाली पर टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. वर्गीकरण की विभिन्न प्रजातियों की विस्तार से विवेचना कीजिए।

2. परिगणनात्मक और पक्षात्मक वर्गीकरण प्रणालियों की विशेषताओं की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

3. ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन (डी डी सी) की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

3.6 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (2) 2. (1), 3. (4), 4. (1) 5. (2)

6. (2) 7. (4), 8. (2), 9. (3) 10. (2)

3.7 संदर्भ एवं इतर पाठ्य सामग्री

1. चंपावत, जी.एस. (1993) पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त, जयपुर : आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स

2. ध्यानी, पुष्पा (1993), पुस्तकालय वर्गीकरणः नई दिल्ली एस.एस.पब्लिकेशन्स।

3. शर्मा, बी.डी. (1998), सैद्धान्तिक ग्रन्थालय वर्गीकरण, आगरा वाई.के. पब्लिशर्स ।

4. शर्मा, पाण्डेय एस.के. (1996), सरलीकृत पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त, दिल्ली : ज्ञान गंगा।

5. त्रिपाठी, एस.एम. (1997), आधुनिक ग्रन्थालय वर्गीकरण : सैद्धान्तिक विवेचन, आगरा

6. Hussain, Shabahat (1993) : Library classification : Facet and Analysis, New Delhi : Tata McGraw Hill.

7. Ranganathan, S.R. (1967). A descriptive account of the colon classification, Bombay : Asia publishing.

8. Ranganathan, S.R. (1989). Prolegomena to library classification. 3rd ed. Bangalore : Sarada Ranganathan Endowment for Library Science.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

BLIS-03

ज्ञान संगठन एवं प्रक्रियाकरण

खण्ड

2

पुस्तकालय वर्गीकरण के तत्त्व एवं उपागम

इकाई -4 5

अंकन, क्रामक संख्या एवं उसकी संरचना

इकाई -5 38

पाँच मूलभूत श्रेणियाँ, पक्ष विश्लेषण एवं पक्ष अनुक्रम

इकाई -6 77

विषयजगत् की संरचना एवं विषय निर्माण की विधियाँ

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 बी0 एन0 सिंह	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति - पाठ्यक्रम अभिकल्पन

डॉ0 पाण्डेय एस0 के0 शर्मा	अवकाश प्राप्त मुख्य ग्रंथालयी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली,
डॉ0 ए0 पी0 गक्खर	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इला0
डॉ0 यू0 सी0 शर्मा	एसोसियेट प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष, बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ0 सोनल सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ0 ए0 पी0 सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0संजीव सर्राफ	उपपुस्तकालयाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 टी0एन0 दुबे (सदस्य सचिव)	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक मण्डल

डॉ0 टी0 एन0 दुबे	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री आर0 जे0 मौर्य	सहायक ग्रन्थालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री राजेश गौतम	प्रवक्ता, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 बी0 के0 शर्मा	भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, डॉ0 वी0 आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

परिमापक

डॉ0 वी0 पी0 खरे	एसोसिएट प्रोफेसर, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-978-81-921668-4-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ0 ए0 के0 सिंह, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मई 2011 मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-2 : पुस्तकालय वर्गीकरण के तत्व एवं उपागम

खण्ड परिचय

पुस्तकालय में संग्रहीत प्रत्येक ग्रन्थ को एक निश्चित स्थान प्रदान करने तथा उन्हें अन्य ग्रन्थों के बीच उसकी अलग पहचान दिखने के दृष्टिकोण से एक संख्या आवंटित की जाती है जिसे क्रामक संख्या (Call Number) कहा जाता है। अंकन से तात्पर्य किसी वर्गीकरण पद्धति में वर्गों को प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त क्रमिक अंकों की विधि से है। अंकन का प्रमुख कार्य ज्ञान जगत के विषयों के पदों को क्रमिक मूल्य चिह्न सहित उनके क्रम को निश्चित करना होता है।

पुस्तकालय वर्गीकरण में विषय जगत को विभाजित करने के लिए डॉ. रंगनाथन ने अपनी द्विबिन्दु वर्गीकरण पद्धति में पांच मूलभूत श्रेणियों का उल्लेख किया है जो अलग-अलग विशेषताओं के कारण पहचानी जाती है।

विषय जगत निरन्तर वर्धनशील है, अतः इसकी संरचना एवं नियम निर्माण किस प्रकार से हुआ है, इसके अध्ययन हेतु विभिन्न नियम आज के सन्दर्भों में अत्यन्त प्रासांगिक है।

यह पाठ्यक्रम BLIS-03 का खण्ड दो है जो पुस्तकालय वर्गीकरण के तत्व एवं उपागम से सम्बन्धित है। इसमें तीन इकाईयाँ हैं - प्रथम इकाई (इकाई - 4) अंकन में क्रामक संख्या एवं उसकी संरचना का उल्लेख है। द्वितीय इकाई (इकाई- 5) पाँच मूलभूत श्रेणियाँ, पक्ष विश्लेषण एवं पक्ष अनुगम से सम्बन्धित हैं तथा तृतीय इकाई (इकाई-6) विषय जगत की संरचना एवं विषय निर्माण की विधियों से सम्बन्धित हैं।

इकाई -4 : अंकन, क्रामक संख्या एवं उसकी संरचना

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 अंकन का अर्थ एवं परिभाषा

4.2.1 अंकन की आवश्यकता

4.2.2 अंकन के उद्देश्य

4.2.3 अंकन के कार्य

4.3 अंकन के प्रकार एवं गुण

4.3.1 अंकन के प्रकार

4.3.2 अंकन के गुण

4.4 क्रामक संख्या एवं उसकी संरचना

4.4.1 क्रामक संख्या

4.4.2 क्रामक संख्या के भाग एवं संरचना

4.5 सारांश

4.6 सम्बन्धित प्रश्न - बहुविकल्पीय, लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय

4.7 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

4.8 संदर्भ एवं इतर पाठ्यसामग्री

4.0 प्रस्तावना (Introduction)

विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों में ग्रन्थों के व्यावहारिक वर्गीकरण के लिए जिस-जिस प्रकार के अंकनों का प्रयोग किया गया है, उनका वर्णन इस इकाई में किया गया है। आपको अंकन का पूर्णरीति से ज्ञान कराने के लिए अंकन का अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता, उद्देश्य, अंकन के प्रकार एवं उसकी विशेषताओं की उदाहरणों सहित विवेचना की गई है।

पुस्तकालय में संग्रहीत प्रत्येक ग्रन्थ को एक निश्चित स्थान प्रदान करने तथा अन्य ग्रन्थों के बीच उसकी पहचान सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से उसे एक संख्या आवंटित की जाती है जिसे क्रामक संख्या कहते हैं। यही क्रामक संख्या (Call Number) प्रत्येक ग्रन्थ को वैयक्तिक्ता प्रदान करती है। क्रमांक संख्या में वर्गांक, (Class Number) ग्रन्थांक (Book Number) और संग्रहाँक (Collection Num-

ber) सम्मिलित होते हैं। इनकी विस्तृत व्याख्या करते हुए क्रामक संख्या निर्मित करने की विधियों की उदाहरणों सहित व्याख्या की गई है जिससे आप इनके व्यवहारिक रूप से पूर्णतः परिचित हो सकेंगे।

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- अंकन का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
- क्रामक संख्या की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों में क्रामक संख्या निर्मित करने की विधियों से परिचित हो सकेंगे।

4.2 अंकन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Notation)

वर्गीकरण के सैद्धान्तिक पक्ष को कार्यान्वित करने तथा व्यावहारिक रूप प्रदान करने का श्रेय अंकन (Notation) को है जो वर्गीकरण पद्धति का व्यवहारिक आधार है तथा इसका एक आवश्यक अंग है।

पुस्तकालय विज्ञान का आधार वर्गीकरण है तथा ग्रंथ वर्गीकरण की व्यावहारिक आधारशिला अंकन है जिसके अभाव में पुस्तकालय व्यवस्था तथा सूचना पुर्नप्राप्ति प्रायः असम्भव है। सैद्धान्तिक पक्ष विषय व्यवस्था का सहायक क्रम स्थापित करने का विवेचन है। परन्तु क्रम व्यवस्था का सैद्धान्तिक पक्ष निश्चित कर लेने पर भी वर्गीकरण पद्धति कार्यरत होने में तब तक असमर्थ है जब तक कि इसको अंकन न प्रदान किया जाय।

सेयर्स (WCB Sayers) के अनुसार जब वर्गीकरण को समान्य वर्ग **(Generalia)** और रूपों तथा विभाजनों **(From classes and divisions)** से सुसज्जित कर दिया जाता है। तब उसको ग्रन्थों के लिए व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए दो अत्यन्त सहायक वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जिसमें पहला अंकन **(notation)** है और दूसरी अनुक्रमणिका **(Index)** है। इसमें अंकन अति महत्वपूर्ण है।

वर्गीकरण में ग्रन्थों में वर्णित विषयों का प्राकृतिक भाषा में वर्गीकरण की कृत्रिम भाषा में अनुवाद किया जाता है जो मात्र अंकन के ही द्वारा सम्भव है। इसलिए ही कहा जाता है कि ग्रंथों के वर्गीकरण का आधार अंकन होता है क्योंकि अंकन के अभाव में ग्रंथों का वर्गीकरण करना सम्भव नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विषयों में निहित पदों की अभिव्यक्ति के लिए वर्गीकरण में जिन प्रतीकों अथवा चिन्हों

का प्रयोग किया जाता है वे प्रतीक/चिन्ह ही अंकन (Notation) कहलाते हैं।

उदाहरण - भौतिकशास्त्र का इतिहास के लिए -

डी डी सी में अंकन - 530.9

सी सी में अंकन - Cv

यू डी सी में अंकन - 53 (091)

अंकन की परिभाषा

अंकन को पुस्तकालय विज्ञान के विद्वानों में भिन्न-भिन्न रूप में परिभाषाबद्ध किया है, लेकिन सभी का वास्तविक रूप में अर्थ समान है। प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्नांकित हैं-

रिचर्डसन (E.C. Richardson) के अनुसार, ''अंकन एक संक्षिप्त प्रतीक है। अंकन को न केवल विभाजन के प्रस्तुतीकरण को ही व्यक्त करना चाहिए बल्कि क्रम की भी अभिव्यक्ति जहाँ तक हो सके करनी चाहिए और न केवल कृत्रिम क्रम का ही बल्कि तार्किक क्रम की अभिव्यक्ति होनी चाहिए''।

ब्लिस (H.E. Bliss) के अनुसार ''अंकन किसी क्रम व्यवस्था में चिन्हों अथवा प्रतीकों की एक विधि है जिसमें पदों अथवा वस्तुओं के व्यवस्था क्रम को निर्धारित किया जाता है।''

सेयर्स (W.C.B. Sayers) के अनुसार, ''वर्गीकरण में पदों के लिए निर्धारित प्रतीकों अथवा सांकेतिक चिह्नों के अंकन कहते हैं। अंकन अपनी व्यवस्था के द्वारा वर्गीकरण पद्धति की व्यवस्था को प्रदर्शित करते हैं''।

मान (Margaret Mann) के अनुसार, ''वर्गों तथा उनके उपविभाजनों के लिए निर्दिष्ट चिह्नों को उस पद्धति का अंकन कहते हैं''।

फिलिप्स (W.H. Phillips) के अनुसार, ''किसी वर्ग अथवा वर्ग के विभाजन या उपविभाजन के नामों के लिए प्रयुक्त प्रतीकों की श्रृंखला को अंकन कहते हैं। यह किसी वर्गीकरण की व्यवस्था को प्रस्तुत करने का सुगम साधन है''।

पामर एवं वेल्स (B.I. Plamer and A J. Welles) के अनुसार, अंकन व्यवस्था को यंत्रवत् ठीक रखने की एक विधि है और उसका निर्माण निर्धारित क्रम में उल्लिखित प्रतीकों द्वारा किया जाना चाहिए।

रंगनाथन (S. R. Ranganathan) के अनुसार, ''किसी वर्गीकरण पद्धति में

वर्गों को प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त क्रमिक अंकों की विधि को अंकन कहते हैं।''

पुस्तकों की व्यवस्था को व्यवहारिक रूप प्रदान करने की दृष्टि से **सेयर्स (W.C.B. Sayers)** ने वर्गीकरण को स्पष्टतः परिभाषित करते हुए कहा है कि अंकन पदों के नाम को निर्धारित करने के लिए प्रतीकों अथवा चिन्हों की एक प्रकार की श्रृंखला है। यह वर्गीकरण के लिए एस सुविधाजनक साधन के रूप में प्रयुक्त होता है।

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि अंकन (Notation) वर्गीकरण की एक कृत्रिम भाषा है जिस पर वर्गीकरण पद्धति का सम्पूर्ण व्यवहारिक पक्ष आधारित है। अंकन के द्वारा ही वर्गीकरण में गतिशीलता आती है और तभी इसका प्रयोग सम्भव है।

4.2.1 अंकन की आवश्यकता (Need of Notation)

पुस्तकालय में संग्रहीत ग्रन्थों को वर्गीकृत अवस्था में व्यवस्थित करने के लिए प्रयुक्त किसी भी वर्गीकरण पद्धति के लिए अंकन का प्रयोग किया जाना नितान्त आवश्यक है। पुस्तकालय वर्गीकरण के क्षेत्र में अंकन की आवश्यकता के संदर्भ में कहा गया है कि ''अंकन वर्गीकरण के लिए नितान्त आवश्यक है, ग्रन्थों के विषय एवं उनकी आख्या की प्राकृतिक भाषा को वर्गीकरण की कृत्रिम भाषा में परिवर्तित करना परमावश्यक है, जो अंकन के द्वारा ही सम्भव है।''

वर्गीकरण पद्धति में पंक्ति में ग्राह्यता (Hospitality in array) तथा श्रृंखला में ग्राह्यता (Hospitality in chain) करने के लिए अंकन आवश्यक है।

4.2.2 अंकन के उद्देश्य (Objective of Notation)

किसी भी वर्गीकरण पद्धति में अंकन का प्रमुख उद्देश्य वर्गीकरण व्यवस्था को व्यवस्थित एवं सुनिश्चित क्रम पर आधारित सदृढ़ आधार प्रदान करना है। वर्गीकरण पद्धतियों में अंकन का प्रयोग करने में अनूसूची (Schedule) में विभिन्न मुख्य वर्गों में प्रयुक्त प्राकृतिक भाषा के पदों (Term) अथवा शब्दों (Word) को सुनिश्चित अनुक्रम में विषय वस्तु की विशेषताओं एवं गुणों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत कर अंकन के द्वारा पृथक्कीकरण भी किया जा सकता है, जैसा कि वर्गीकरण की आवश्यकता में अंकन रहित एवं अंकन सहित वर्गांक के उदाहरण से स्पष्ट किया जा चुका है।

वर्गीकरण पद्धति में अंकन के प्रयोग का अन्य दूसरा प्रमुख उद्देश्य इसकी अपरिवर्तनशीलता है। प्राकृतिक भाषा के पद ज्ञान के विकास के परिणामस्वरूप समय-

समय पर परिवर्तित होते रहते हैं। किन्तु अंकन अपरिवर्तनशील, सरल, सहज तथा स्थिर होते हैं। अंकन के प्रयोग का अन्य उद्देश्य वर्गीकरण पद्धति की अनुसूची में प्रयुक्त पदों को अधीनस्थता क्रम (Subordination sequence) में व्यवस्थित करना है इसके द्वारा सह सम्बन्धित (Co-related) विषयों को एक साथ तथा अधीनस्थता क्रम में भी व्यवस्थित किया जा सकता है।

4.2.3 अंकन के कार्य (Function of Notation)

वर्गीकरण के क्षेत्र में अंकन के प्रयोग का अपना विशिष्ट महत्व है। अंकन के प्रयोग एवं उपादेयता के आधार पर पुस्तकालय विज्ञान वेत्ताओं ने इसके कार्यों के सन्दर्भ में निम्न विचार व्यक्त किये हैं-

अंकन के कार्य के सन्दर्भ में मिल्स (J. Mills) का कथन है-

''अंकन का प्रमुख कार्य ज्ञान जगत् के विषयों के पदों अथवा शब्दों को क्रमिक मूल्य चिह्न सहित उनके क्रम को यन्त्रवत् करना है। अंकन वर्गीकरण अनुसूची का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके बिना अनुसूची का कोई महत्व नहीं है।''

अंकन की उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए इसके निम्नांकित कार्य निश्चित किये गये हैं :

(1) विषयों का यन्त्रवत् क्रम में व्यवस्थापन :

अंकन का प्रमुख कार्य पुस्तकालय में संग्रहीत समस्त पाठ्य सामग्री की सहायक अनुक्रम में व्यवस्थित करना है। पुस्तकालय के एक विषय पर संग्रहीत समस्त ग्रन्थों को वर्ग संख्या में प्रयुक्त अंकन के आधार पर विषय के उप-विषयों का व्यवस्थापन भी यन्त्रवत् किया जा सकता है यथा -

Library cataloguing	2 : 55
Library classification	2 : 51

उक्त उदाहरणों में हम अंकन के अनुसार सूचीकरण से सम्बन्धित सभी ग्रन्थों को एक स्थान पर तथा वर्गीकरण से सम्बन्धित सभी ग्रन्थों को एक स्थान पर यंत्रवत क्रम में व्यवस्थित कर सकते हैं।

(2) पुस्तकालय सूची की उपादेयता में वृद्धि :

अंकन के प्रयोग से पुस्तकालय सूची की उपादेयता एवं कार्यशीलता में वृद्धि होती है। पुस्तकालय में संग्रहीत पुस्तकों में से वांछित पुस्तक को प्राप्त करने के लिए

पाठक वर्णानुक्रम सूची (Alphabetical catalogue) का अवलोकन कर अपनी पुस्तक की पुस्तकालय में उपलब्धता ज्ञात कर लेते हैं। प्रत्येक सूची पत्रक पर वर्ग संख्या अंकित रहती हैं, जिसकी सहायता से ग्रन्थ संग्रह कक्ष में अपने विषय से सम्बन्धित ग्रन्थ को शीघ्र खोजकर प्राप्त कर लेते हैं। अतः अंकन पुस्तकालय सूची की कार्यशीलता एवं उपादेयता बढ़ाने में सहायक है।

(3) स्मृति सहायक का गुण उत्पन्न करना :

विविध विषयों में समान विचारधाराओं के लिए मुख्यवर्ग की अनुसूची में सामान्यतः एक ही अंकन का प्रयोग किया जाता है। जिससे अंकन में स्मृत्ति सहायक (Mnemonics) गुण की वृद्धि होती है, जैसे कोलन क्लासीफिकेशन में बीमारी (Diseases) या बीमारी की विचारधारा के व्यक्त करने वाले पद के लिए का सभी स्थानों पर ऊर्जा पक्ष (E) में एक समान एकल 4 का प्रयोग हुआ है। डीडीसी एवं यूडीसी में भी इसी प्रकार के उदाहरण देखने को मिलते हैं। अतः अंकन का अन्य प्रमुख कार्य अंकन में स्मृत्ति सहायक का गुण पैदा करना है।

(4) विषयों के पदों का अधीनस्थता क्रम में व्यवस्थापन :

वर्गीकरण पद्धति में अनुसूची में विविध विषयों के पदों का व्यवस्थापन उनके क्रमदर्शक मूल्य (Ordinal value) के आधार पर किया जाता है। अंकन के द्वारा अनुसूची में वर्णित विभिन्न पदों की समकक्षता एवं अधीनस्थता का ज्ञान होता है यथा-मुख्य वर्ग 2 (Library science) में 21 Trans local, 22 Local, 23 Academical, 24 Business आदि सभी समकक्ष वर्ग है किन्तु 231 Elementary School, 232 Secondary school, 233 College, 234 University आदि 23 Academical के उपविभाजन हैं, जिनको एक-दूसरे के अधीनस्थता क्रम में व्यवस्थित किया गया है।

(5) अनुसूची निर्माण में सहायक :

किसी भी वर्गीकरण पद्धति में अनुसूची का निर्माण अंकन के बिना सम्भव नहीं है। वर्गीकरण पद्धति की संरचना करते समय ज्ञान-जगत् को मुख्य वर्गों में विभाजित कर प्रत्येक मुख्य वर्ग से सम्बन्धित वर्तमान एवं भविष्य में प्रकाशन वाले विषयों को अधीनस्थता क्रम में अंकन की कृत्रिम भाषा में उल्लेखित कर लिया जाता है अथवा उनके लिए प्रावधान दिया जाता है। अतः ज्ञान जगत के सभी विषयों को निश्चित अनुक्रम में व्यवस्थापन का कार्य अंकन के माध्यम से आसानी से हो जाता है।

(5) विषयानुसार आँकड़े बनाने में सहायक :

अंकन के माध्यम से पुस्तकालय में अधिगृहीत एवं संग्रहीत पुस्तकों के विषय-

अनुसार आँकड़े तैयार किये जा सकते हैं। अंकन के माध्यम से निर्धारित अवधि में निर्गमित एवं आगत पुस्तकों के विषयानुसार आँकड़े सहज निर्मित किये जा सकते हैं। इस प्रकार के आँकड़ों से पुस्तकों के प्रयोग एवं अप्रयोग की स्थिति, विभिन्न पाठकों द्वारा ग्रन्थों के प्रयोग एवं अप्रयोग की स्थिति के आँकड़े भी तैयार किये जा सकते हैं।

(7) प्रलेखों का सहायक अनुक्रम में व्यवस्थापन :

पुस्तकालय में संग्रहीत प्रलेखों का सहायक अनुक्रम में व्यवस्थापन अंकन की कृत्रिम भाषा के बिना सम्भव नहीं है। अंकन के प्रयोग के कारण प्रतिवर्ष क्रय की गयी नवीन पुस्तकों का व्यवस्थापन भी सह सम्बन्धित विषयों के साथ आसानी से किया जा सकता है।

4.3 अंकन के प्रकार एवं गुण (Types and Quality of Notations)

4.3.1 अंकन के प्रकार

अंकन वर्गीकरण की कृत्रिम भाषा है जिस पर वर्गीकरण पद्धति का सम्पूर्ण व्यवहारिक पक्ष आधारित होता है। अंकन के द्वारा ही वर्गीकरण में गतिशीलता आती है।

पुस्तकालय वर्गीकरण की प्रमुख सात वर्गीकरण पद्धतियों में विभिन्न प्रकार के अंकनों का प्रयोग वर्गीकरण की आवश्यकता को दृष्टिगत रखकर किया गया है। विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों में प्रयुक्त अंकन के स्वरूप के आधार पर मुख्यतः अंकन का निर्माण लघु एवं दीर्घ अक्षरों, अंकों, गणितीय चिह्नों विरामादि चिह्नों तथा अन्य विविध प्रकार के चिह्नों के द्वारा होता है। प्रयुक्त अंकनों की विविधता के आधार पर प्रमुख रूप से अंकन का दो श्रेणियों अथवा प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है।

(i) शुद्ध अंकन (Pure Notation)

(ii) मिश्रित अंकन (Mixed Notation)

(i) शुद्ध अंकन (Pure Notation) - एक ही प्रजाति के प्रतीकों (Symbols) से निर्मित अंकन शुद्ध अंकन कहलाता है। जैसे - 0 1 2 3 4 5 6 7 8 9 अथवा A B C D -------------XY Z अथवा अंग्रेजी लघु अक्षर a b c d --------xyz आदि।

शुद्ध अंकन के गुण - शुद्ध अंकन के निम्नांकित गुण हैं -

1. शुद्ध अंकनों का प्रयोग अत्यधिक सरल एवं सहज होने के कारण पुस्तकालय कर्मियों एवं पाठकों के समय की बचत होती है।

2. शुद्ध अंकन में एक ही प्रकार एवं स्वरूप के चिह्नों या प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है अतः इस प्रकार के अंकन को लिखने, टंकित तथा स्मरण करने में आसानी होता है तथा त्रुटि होने की सम्भावना नहीं रहती है।

3. अंकन की सरलता एवं संक्षिप्तता के कारण पुस्तकालय कर्मी इसको बिना किसी विशेष प्रशिक्षण को आसानी से समझ लेते हैं।

4. शुद्ध अंकन वर्गों के क्रम को सरलता से निश्चित किया जा सकता है।

5. शुद्ध अंकन वाली वर्गीकरण पद्धतियों में मिश्रित अंकन वाली पद्धतियों की तुलना में प्रयोग के नियम कम होते हैं।

(i) शुद्ध अंकन के दोष (Demerits of pure notation)

1. शुद्ध अंकन पर आधारित वर्गीकरण पद्धति का आधार बहुत ही संकुचित एवं सीमित होता है। शुद्ध अंकन वाली पद्धति से ज्ञान के सूक्ष्मतम विषयों की वर्ग संख्या के निर्माण में कठिनाई होती है।

2. शुद्ध अंकन वाली वर्गीकरण पद्धति में नवीन अन्वेषित विषयों को पद्धति से सम्बन्धित विषयों के साथ समाविष्ट करने में कठिनाई आती है।

3. शुद्ध अंकन वाली पद्धति में विभिन्न प्रकार की विधियों के प्रयोग का अभाव होता है।

4. शुद्ध अंकन वाली वर्गीकरण पद्धति द्वारा स्थूल प्रलेखों अर्थात् पुस्तकों को ही वर्गीकृत किया जा सकता है, इसके द्वारा सूक्ष्मतम विषयों का वर्गीकरण सम्भव नहीं है।

(ii) मिश्रित अंकन (Mixed Notation)

वर्गीकरण पद्धति में एक से अधिक प्रतीकों एवं चिह्नों से निर्मित अंकन 'मिश्रित अंकन' कहलाते हैं। अर्थात् जिस पद्धति में विभिन्न प्रकार के अंकन यथा - अंग्रेजी के लघु एवं दीर्घ अक्षरों, अंकों, विरामादि चिह्नों आदि अन्य विविध प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। उसे मिश्रित अंकन (Mixed Notation) वाली पद्धति कहते हैं। मिश्रित अंकन वाली पद्धति में डॉ. रंगनाथन कृत कोलन वर्गीकरण पद्धति सभी से अग्रणी है। इस पद्धति में विविध प्रकार के अंकनों का प्रयोग किया गया है जो निम्नलिखित हैं-

(i) भारतीय अरबी अंक (Indo-Arabic Numerals)
0 से 9

(ii) रोमन दीर्घ अक्षर (Roman Capital Letters)
A से Z

(iii) रोमन लघु अक्षर (Roman Small Letters)
a से z (i, 1, 0 को छोड़ कर)

(iv) विरामादि चिह्न (Punctuation marks)

, comma, ; semi-colon, : colon, . dot, ' single inverted comma

(v) गणित चिह्न (Mathematical marks) + Plus, - Minus or Dash

(v) अग्रमुखी एवं पश्चमुखी तीर (Forword and backword arrow)

⟶ ⟵

(vi) वृत्ताकार कोष्ठक (Circular Bracket)

( ) (starter and arrester)

(vii) डेल्टा (Greek alphabet Delta) △

सार्वभौमिक दशमलव वर्गीकरण पद्धति (Universal Decimal Classification) में प्रधानतः निम्न प्रकार के मिश्रित अंकनों का प्रयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया गया है-

(i) अरबी अंक (Arabic Numerals)

(ii) रोमन दीर्घ अक्षर (Roman Capital Letters)

(iii) रोमन लघु अक्षर (Roman Small Letters)

(iv) गणितीय चिह्न (Mathematical Symbols)

मिश्रित आंकन के गुण (Merits of Mixed Notation) - मिश्रित अंकन वाली पद्धतियों में विभिन्न प्रकार के अंकनों के प्रयोग तथा विभिन्न विधियों का प्रावधान होने के कारण ज्ञान जगत के सभी विषयों के सूक्ष्मतम विषयों को भी वर्गीकृत किया जा सकता है। मिश्रित अंकन के निम्नलिखित गुण हैं -

1. मिश्रित अंकन के प्रयोग से वर्गांक का आकार लघु होता है, जो व्यवहारिक दृष्टिकोण से उपयोगी है।

2. मिश्रित अंकन वाली वर्गीकरण पद्धति द्वारा एक अंक मे भी वर्गांक निर्मित हो सकता है, जबकि शुद्ध अंकन वाली पद्धति में यह सम्भव नहीं है।

3. मिश्रित अंकन वाली वर्गीकरण पद्धतियों में सामान्यतया विभिन्न विधियों (devices) का प्रावधान होता है, जिससे पंक्ति एवं श्रृंखला में ग्राह्यता **(Hospitality in array and chain)** के कारण ज्ञान जगत के सभी विषयों एवं अन्वेषित नवीन विषयों का पद्धति में यथास्थान समावेशन तथा सूक्ष्म वर्गीकरण सम्भव है।

4. मिश्रित अंकन वाली वर्गीकरण पद्धति का आकार शुद्ध अंकन वाली वर्गीकरण पद्धति की अपेक्षा लघु होता है तथा वर्ग संख्या निर्मित करने की क्षमता अधिक होती है।

मिश्रित अंकन के दोष (Demerits of mixed notation) - मिश्रित अंकन के साथ-साथ इसके कतिपय दोष भी हैं जो निम्नवत् हैं-

1. मिश्रित अंकन वाली वर्गीकरण पद्धति में विविधि प्रकार के प्रतीकों के प्रयोग के कारण वर्ग संख्या बनाने में गलती की सम्भावना अधिक रहती है।

2. मिश्रित अंकन से निर्मित वर्ग संख्या का स्वरूप अत्यधिक जटिल होता है। इनके क्रमदर्शक मूल्य को समझाकर पुस्तकालय में संग्रहीत ग्रन्थ को निधानी से प्राप्त करना तथा पुनः उसी स्थान पर रखना दुष्कर होता है।

3. मिश्रित अंकन वाली वर्गीकरण पद्धति विभिन्न नियमों एवं प्रविधियों से युक्त होता है अतः इसका विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है।

4. मिश्रित अंकन वाली पद्धति से निर्मित वर्ग संख्या में प्रायः विविध प्रकार के अंकनों एवं प्रतीकों का प्रयोग करना पड़ता है।

निष्कर्षतः आधुनिक ज्ञान एवं विज्ञान के युग में प्रकाशित पुस्तकों की बहुलता को दृष्टिगत रखते हुए सूक्ष्मतम विषयों को वर्गीकृत करने वाली मिश्रित अंकन पर आधारित वर्गीकरण पद्धति की आवश्यकता है। रिचर्डसन ने कहा था कि मिश्रित आधार तथा दशमलव भिन्न पर आधारित अंकन ही आदर्श अंकन है।

ब्लिस एवं सेयर्स भी रिचर्डसन के उक्त कथन से सहमत थे। डॉ. रंगनाथन ने अपनी कोलन वर्गीकरण पद्धति में मिश्रित अंकन का प्रयोग व्यापक स्तर पर किया है। सन् 1955 में अन्तर्राष्ट्रीय प्रलेखन संघ के संयोजक पद से बोलते हुए उन्होंने कहा था कि- ''वर्तमान समय में प्रत्येक वर्गीकरण पद्धति का झुकाव मिश्रित अंकन की ओर है। शुद्ध अंकन पर आधारित दशमलव वर्गीकरण पद्धति ने भी शनैः-शनैः मिश्रित अंकन का प्रयोग 19वें संस्करण के बाद से करना प्रारम्भ कर दिया है।''

4.3.2 अंकन के गुण

उत्तम अंकन के गुण एवं विशेषताओं के सन्दर्भ में पुस्तकालय विज्ञान वेत्ताओं के मत निम्नलिखित हैं -

डॉ0 रंगनाथन के अनुसार अंकन में निम्नलिखित तीन गुणों का समावेश होना चाहिए -

(i) अनन्यता (Uniqueness)

(ii) संक्षिप्तता (Brevity)

(iii) अभिव्यंजकता (Expresiveness)

अनन्यता के सन्दर्भ में डा0 रंगनाथन का कहना है कि अंकन को वर्गांक में केवल एक अर्थ को ही व्यक्त करना चाहिए। जिससे भाषा के समानार्थी एवं भिन्नार्थी से उत्पन्न कठिनाई से बचा जा सके। संक्षिप्तता से अभिप्राय यह है कि अंकन इस प्रकार का हो जिससे वर्गांक संक्षिप्त बनना चाहिए। अभिव्यंजकता का तात्पर्य यह है कि अंकन में किसी भी विषय के समस्त अभिलक्षणों को अभिव्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए।

इन गुणों के अतिरिक्त डॉ0 रंगनाथन ने अपने विशिष्ट ग्रन्थ 'प्रोलेगोमेना के पृष्ठ सं0 228-31 (Prolegomena, page 228-31) पर अंकन में वर्गांक की संक्षिप्तता, लिखने में गतिशीलता, अभिव्यक्ति में सरलता, खण्डीय स्वरूप, पक्षात्मक आदि गुणों का होना आवश्यक बताया है।

सेयर्स (W.C.B. Sayers) के अनुसार अंकन में निम्नलिखित चार गुण होने चाहिए-

(i) संक्षिप्तता (Brevity)

(ii) सरलता (Simplicity)

(iii) नम्यता (Flexibility)

(iv) स्मरणशीलता (Mnemonic quality)

फिलिप्स (W. H. Philips) ने अच्छे अंकन के सन्दर्भ में कहा है कि - "अंकन में प्रचलित, संक्षिप्त स्मृत्ति सहायक, वर्द्धनशील तथा स्पष्ट रूप में क्रम निर्धारित करने वाले प्रतीकों को सम्मिलित करना चाहिए।"

वास्तविक रूप में अच्छा अंकन वह है जो पुस्तकालय वर्गीकरण में प्रत्येक ग्रन्थ को वैयक्तिकता एवं पृथकत्व प्रदान कर सके।

उपर्युक्त विद्वानों द्वारा अंकन के गुणों के सन्दर्भ में व्यक्त कथनों के आधार पर उत्तम अंकन में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है-

(1) संक्षिप्तता (Brevity)

(2) सरलता (Simplicity)

(3) ग्राह्यता (Hospitality)

(4) स्मृत्ति सहायक (Mnemonics)

(5) संश्लेषणात्मकता (Synthesis)

(6) अभिव्यंजकता (Expresiveness)

(7) सापेक्षिकता (Relativity)

1. संक्षिप्तता (Brevity) :

संक्षिप्तता अंकन का अति आवश्यक गुण है। वर्गीकरण की सफलता अंकन की संक्षिप्तता पर केन्द्रित होती है। वर्गीकरण पद्धति का अंकन जितना संक्षिप्त होगा उसे लिखने, पढ़ने, बोलने तथा स्मरण करने में उतनी ही आसानी होगी। पुस्तकालय में वर्गांक को ग्रन्थ के अन्दर निर्धारित स्थान पर तथा उसमें चिपकाई गयी तिथि, पर्णी, टैग, बुक स्लिप आदि पर लिखना होता है। इसी के साथ वर्गांक को सूची पत्रकों, परिग्रहण पंजिका एवं अन्य पुस्तकालय अभिलेखों में अंकित करना पड़ता है, अतः अंकन के संक्षिप्त होने से वर्गांक को यथास्थान अंकित करने में गलतियाँ होने की सम्भावना कम हो जाती है तथा पुस्तकालय कर्मियों के समय की भी बचत होती है।

2. सरलता (Simplicity) :

अंकन की सरलता से तात्पर्य इस प्रकार के अंकनों से हैं जिन्हें सहज रूप में लिखा, पढ़ा एवं आसानी से स्मृत्ति में रखा जा सके। अंकन की सरलता साधारणतया अंकन की बनावट एवं प्रकारों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए दशमलव वर्गीकरण पद्धति का अंकन सभी वर्गीकरण पद्धतियों में प्रयुक्त अंकनों की अपेक्षा सरल है क्योंकि इसमें एक ही प्रकार के अंकन 0 से 9 इण्डो-अरेबिक अंकों का प्रयोग किया गया है। कोलन वर्गीकरण पद्धति में विविध स्वरूपों एवं प्रजातियों के अंकों का प्रयोग किया गया है जो डी0डी0सी0 के अंकन की तुलना में कठिन हैं तथा स्मरण करने में कठिनाई आती है। वैसे भी पक्षात्मक वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक वर्गीकरण पद्धति (Facated analytico-synthetic scheme of classification) का अंकन सरल नहीं हो सकता।

बिल्स (H.E. Bliss) ने अंकन की संक्षिप्तता एवं सरलता को एक-दूसरे का पर्याय माना है अर्थात् संक्षिप्त अंकन सरल अवश्य होगा।

सेयर्स (W.C.B. Sayers) ने अंकन की सरलता के सन्दर्भ में कहा है कि, सरलता अंकन का उत्तम गुण है लेकिन इस गुण से अंकन की कार्यशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। अंकन की सरलता के लिए अंकन की कार्यशीलता के गुण की उपेक्षा उचित नहीं है।"

डॉ0 रंगनाथन (S.R. Ranganathan) ने अंकन की सरलता की अपेक्षा अंकन की सह-विस्तारशीलता (Co-extensiveness) को अधिक महत्व दिया है।

(3) ग्राह्यता (Hospitality) :

ज्ञान का निरन्तर विकासशील ज्ञान जगत में है और विविध नवीन विषयों का प्रादुर्भाव होता रहेगा। अतः प्रत्येक वर्गीकरण पद्धति में गुण होना चाहिए कि उसमें प्रचलित विषयों पर प्रकाशित नवीन विचारों तथा नवीनतम मूल विषयों को अनुसूची (Schedule) में सह-सम्बन्धित विषयों के साथ पंक्ति एवं श्रृंखला (Array and claim) में समायोजित किया जा सके। अतः वर्गीकरण पद्धति में प्रयुक्त अंकन में यह गुण होना चाहिए कि अनुसूची को अस्त-व्यस्त किये बिना नवीन विषयों को अनुसूची में उपयुक्त स्थान प्रदान किया जाय। वर्तमान व्यवस्था में उचित व्यवस्थापन की क्षमता होनी चाहिए। इसे ग्राह्यता (Hospitality) का गुण कहते हैं।

इस संबंध में **सेयर्स (W.C.B. Sayers)** ने कहा है कि-

''अंकन के विद्यमान अनुक्रम में बिना किसी व्यतिक्रम में नवीन विषयों के समायोजन वाले अंकनों का निर्माण करना चाहिए।''

मिल्स (J. Mills) के अनुसार अंकन की ग्राह्यता पंक्ति एवं श्रृंखला (Array and claim) दोनों में होना चाहिए। ग्राह्यता अंकन की प्रधान विशेषता है। अंकन में ग्राह्यता के सन्दर्भ में मिल्स का कहना है कि -

''अंकन में नवीन विषयों को उनके सही स्थान पर व्यवस्थित करने की ग्राह्यता होनी चाहिए।''

कोलन वर्गीकरण पद्धति में श्रृंखला एवं पंक्ति में ग्राह्यता (Hospitality in chain and array) के लिए विभिन्न विधियों (Devices) का प्रयोग किया गया है। आवर्तन एवं स्तर (Rounds and level) का प्रयोग भी श्रृंखला एवं पंक्ति में ग्राह्यता के लिए ही किया गया है।

(4) स्मरणशीलता (Mnemonics) :

वर्गीकरण पद्धति में प्रयुक्त अंकन में स्मरणशीलता का गुण होना चाहिए। यह भी अंकन के अन्य गुणों-सरलता (Simplicity) ग्राह्यता (Hospitality) संक्षिप्तता (Brevity) के समान ही अति महत्वपूर्ण है। अंकन में स्मरणशीलता का तात्पर्य यह है कि वर्गीकरण पद्धति में समान अर्थ या भाव को व्यक्त करने वाले विषयों/पद का प्रतिनिधित्व के लिए प्रयोग स्थान एक ही स्थान पर अंक आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे उसे आसानी से रखा जा सके।

(5) संश्लेषणात्मकता (Synthesis) :

किसी भी वर्गीकरण पद्धति में ऐसे अंकन की व्यवस्था होनी चाहिए। जिससे किसी भी विषय को विभिन्न पक्षों में आसानी से संश्लेषित किया जा सके।

कोलन वर्गीकरण पद्धति वैश्लेषी संश्लेषणात्मक पद्धति है जिसमें ज्ञान-जगत् को मुख्य वर्गों में तथा प्रत्येक मुख्य वर्ग को पक्ष-उपसूत्र (Facet formula) में व्यक्त किया गया है। जिसमें प्रत्येक मुख्य वर्ग के विषय के विभिन्न आयामों को भिन्न-भिन्न पक्षों में रखकर भिन्न-भिन्न योजक चिह्नों से पृथकत्व प्रदान किया गया है। दशमलव वर्गीकरण पद्धति मूलतः परिगणनात्मक (Enumernative) पद्धति है जिसके कारण इसके अंकन में संश्लेषण का अभाव है तथापि कुछ मुख्य वर्गों में पक्ष-विश्लेषण की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है।

(6) अभिव्यंजकता (Expresiveness) :

अभिव्यंजकता का तात्पर्य है कि अनुसूची में अंकन का प्रयोग अधीनस्थता क्रम (Subordinates sequence) में होना चाहिए। अर्थात् अनुसूची से यह आसानी से स्पष्ट हो सके कि कौन सा वर्ग किस वर्ग के अंकन के अधीनस्थ है। कोलन वर्गीकरण पद्धति के अंकन में अभिव्यंजकता के गुण का अनुप्रयोग सामान्यतया सभी मुख्य वर्गों में किया गया है।

डॉ0 रंगनाथन के अंकन में इस गुण का प्रयोग अधिकाधिक करने के लिए अपनी वर्गीकरण पद्धति के लिए अभिव्यंजनता के उपसूत्र (Canon of Expressive-ness) का प्रयोग किया है।

दशमलव वर्गीकरण पद्धति के अंकन में भी अभिव्यंजकता के गुण का प्रयोग किया गया है यथा -

620	Engineering
621	Mechanical Engineering
621.43	Internal cumbusion engine

(7) सापेक्षिकता (Relativity) :

अंकन में सापेक्षिकता के गुण का तात्पर्य वर्गीकरण पद्धति में वर्गांक की विस्तारशीलता उस वर्गांक में प्रयुक्त अंकों की संख्या, उस वर्गांक में प्रयुक्त वर्ग (Class) के अनुपात में होनी चाहिए। अर्थात् किसी भी मुख्य वर्ग में प्रथम क्रम वाले

वर्गों को एक अंक, द्वितीय क्रम वाले वर्गों को दो अंक तथा तृतीय क्रम वाले वर्गों को तीन अंकों में व्यक्त करना चाहिए।

ज्ञान जगत को प्रथम क्रम में मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है। अतः प्रथम क्रम का वर्गांक एक अंक द्वारा द्वारा जाना चाहिए। एक अंक वाले वर्ग के विषय का विस्तार अधिक होता है। जैसे-जैसे वर्गों के क्रम में वृद्धि होती जाती है वैसे ही विषय के विस्तार में कमी तथा विषय में गहनता बढ़ जाती है। कोलन वर्गीकरण पद्धति में सापेक्षिकता का गुण पर्याप्त मात्रा में है। डॉ0 रंगनाथ ने इसके लिए सापेक्षिकता के उपसूत्र (Canon of Relativity) का प्रतिपादन किया है। दशमलव वर्गीकरण पद्धति में भी इस गुण का प्रयोग देखने को मिलता है।

4.4 क्रामक संख्या एवं उसकी संरचना (Call Number of Its Structure)

4.4.1 क्रामक संख्या (Call Number)

पुस्तकालय में संग्रहीत प्रत्येक ग्रन्थ को विशिष्टता प्रदान करने के लिए क्रामक संख्या का प्रयोग किया जाता है। क्रामक संख्या के अनुप्रयोग से ''एक ग्रन्थ, एक व्यक्तिगत संख्या'' के सिद्धान्त का पालन होता है। डॉ0 रंगनाथन ने क्रामक संख्या को परिभाषाबद्ध करते हुए कहा है कि -

पुस्तकालय में एक प्रलेख की अन्य प्रलेखों के मध्य तथा सूची में प्रविष्टि की स्थिति को सापेक्षिक स्थिति में प्रदर्शित करने वाली संख्या को क्रामक संख्या कहते हैं।

मेलविल ड्यूवी ने क्रामक संख्या के सन्दर्भ में कहा है कि -

''ग्रन्थ की क्रामक संख्या सामान्यतया वर्गांक तथा ग्रन्थांक दोनों के समायोजन से बनती है। तथापि मेलविल ड्यूवी भी अपनी वर्गीकरण पद्धति में ग्रन्थ संख्या निर्मित करने की किसी विधि का उल्लेख नहीं किया है।''

रंगनाथन ने प्रत्येक ग्रन्थ को एक निश्चित स्थान प्रदान करने तथा अन्य ग्रन्थों में उसकी पहचान सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से प्रत्येक ग्रन्थ को उसका नाम प्रदान करने की प्रक्रिया सुनिश्चित की है। इसीलिए कोलन क्लासीफिकेशन में किसी भी क्रामक संख्या को निर्मित करने के लिए ग्रन्थ के तीनों आधार तत्वों की व्याख्या निम्नांकित प्रकार से पूरी करनी आवश्यक है-

(1) विशिष्ट विषय : - जिस विषय की व्याख्या अथवा विवेचना ग्रन्थ में की गई है उसका कृत्रिम अंकों में अनुवाद किया जाता है जिसे वर्गांक (Class number) कहा जाता है।

(2) बाह्य विशेषताएँ :- ग्रन्थ की प्रासंगिक बाह्य विशेषताओं जैसे-भाषा, प्रकाशन वर्ष, खण्ड संख्या आदि का कृत्रिम भाषा में अनुवाद किया जाता है जिसे ग्रन्थांक (Book number) कहा जाता है।

(3) विशिष्ट संग्रह :- एक पुस्तकालय में विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों का अधिग्रहण किया जाता है, इन विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों को पाठकों के दृष्टिकोण से विभाजित करने के लिए भी एक विशिष्ट अंक प्रयोग किया जाता है। जिसे संग्रहांक (Collection Number) कहा जाता है।

अतः रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित इस प्रक्रिया के आधार पर एक ग्रन्थ की क्रामक संख्या निर्मित करने के लिए एक ग्रन्थ की तीन आधारभूत विशेषयों का प्रयोग करना आवश्यक है, अर्थात् - वर्गाक + ग्रथांक + संग्रहांक = क्रामक संख्या

रंगनाथन के अनुसार पुस्तकालय वर्गीकरण एक पुस्तक के विशिष्ट विषय के नाम को क्रमसूचक अंकों की अधिमान्य कृत्रिम भाषा में अनुवाद करना तथा अनेक पुस्तकें जो एक ही विशिष्ट विषय से सम्बन्धित हैं उनको उनकी विषयवस्तु के अतिरिक्त अन्य विशेषताओं के आधार पर दूसरे प्रकार के क्रमसूचक अंकों द्वारा वैयक्तिकता प्रदान करना है।

क्रामक संख्या की उपयोगिता :-

1. पुस्तकालय में संग्रहित ग्रन्थों में से किसी इच्छित ग्रन्थ को पाठक के द्वारा मांगने पर उसे अविलम्ब प्राप्त किया जा सकता है।

2. पाठक द्वारा किसी ग्रन्थ को उपयोग के पश्चात् लौटाने पर उसे पुनः निर्धारित स्थान पर रखा जा सकता है।

3. पुस्तकालय द्वारा अधिग्रहीत नवीन ग्रन्थों को उसी विषय से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों के साथ उसके उपयुक्त स्थान पर व्यवस्थित किया जा सकता है।

4. यह पुस्तकालय के ग्रन्थों की वर्गीकृत सूची का आधार होता है।

4.4.2 क्रामक संख्या के भाग :-

पुस्तकालय में संग्रहीत प्रत्येक ग्रन्थ को विशिष्टता प्रदान करने के लिए केवल वर्गीकरण पद्धति द्वारा निर्मित वर्गांक पर्याप्त नहीं है क्योंकि इसके द्वारा सभी ग्रन्थों को व्यक्तित्व प्रदान कर एक-दूसरे से पृथक करना सम्भव नहीं है। डॉ0 रंगनाथन ने इस समस्या के समाधान तथा प्रत्येक ग्रन्थ को, चाहे वह समान आख्या वाले क्यों न हों, पृथक् स्थान देने के लिए वर्गांक के साथ-साथ अन्य प्राविधियों का यथा-ग्रन्थांक,

संग्रहाक का प्रयोग किया है। डॉ0 रंगनाथन ने ग्रन्थ वर्गीकरण में क्रामक संख्या को तीन भागों में विभाजित किया है, जो निम्न है-

1. वर्गांक (Class - Number) = (Knowledge classification) ज्ञान वर्गीकरण।
2. ग्रन्थांक (Book - Number = (Book Classification) ग्रन्थ वर्गीकरण
3. संग्रहांक (Collection-Number) = (Sequence classification) अनुक्रम वर्गीकरण

(1) वर्गांक (Class Number) :

ग्रन्थ के क्रामक संख्या का वह भाग जो किसी ग्रन्थ के विषय को कृत्रिम भाषा में व्यक्त करता है, वर्गांक कहलाता है। प्रत्येक प्रकार के पुस्तकालय में संग्रहीत सामग्री को वर्गीकृत अवस्था में व्यवस्थित करने के लिए प्रचलित एवं व्यवहारिक वर्गीकरण पद्धति द्वारा प्रत्येक ग्रन्थ को विषय के अनुसार वर्गांक प्रदान किया जाता है। वर्गांक किसी भी ग्रन्थ के विषय का सांकेतिक चिह्नों/कृत्रिम भाषा में अनुवाद है।

डॉ0 रंगनाथन ने वर्गांक को परिभाषाबद्ध करते हुए कहा है कि-

''एक ग्रन्थ का वर्गांक उसके विशिष्ट विषय के नाम का क्रमदर्शक अंकों का कृत्रिम भाषा में अनुवाद है।'' इसका यह तात्पर्य है कि किसी ग्रन्थ का वर्गांक बनाने के लिए सर्वप्रथम उस ग्रन्थ के विशिष्ट विषय को सुनिश्चित करना होगा। रंगनाथन के शब्दों में ''एक ग्रन्थ का विशिष्ट विषय ज्ञान का वह भाग है जिसका विस्तार एवं गहनता विचार वस्तु के समानान्तर हो।''

पामर एवं वेल्स के अनुसार - ''एक प्रलेख का विशिष्ट विषय ज्ञान का वह भाग है जिसमें उन सभी प्रमुख तत्वों का सही समावेश हो जो उसे बनाते हैं।''

(2) ग्रन्थांक (**Book Number**) : पुस्तकालय में संग्रहीत पाठ्य सामग्री को विशिष्ट स्थान देने तथा प्रत्येक ग्रन्थ को वैयक्तिकता प्रदान करने के लिए उसे वर्गांक प्रदान किया जाता है। लेकिन एक ही विषय पर अनेक लेखकों द्वारा रचित ग्रन्थों को वर्गांक द्वारा विशिष्टता एवं पृथकत्व प्रदान नहीं किया जा सकता। इस प्रकार समस्या के समाधान के लिए ग्रन्थांक (Book Number) की परिकल्पना की गयी। एक विषय पर समान आख्या वाली पाठ्य सामग्री को ग्रन्थ के आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूप यथा- ग्रन्थ का लेखक, संस्करण, प्रकाशन वर्ष भाषा, खण्ड संख्या आदि के आधार पर पृथक-पृथक पहचान प्रदान की जा सकती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यदि वर्गांक (Class Number) प्रलेख के विशिष्ट विषय को प्रतिनिधित्व करता है। तो ग्रथांक प्रत्येक प्रलेख को स्वतन्त्र पहचान प्रदान करता है। रंगनाथन के शब्दों में ग्रथांक एक पुस्तक का प्रतीक चिह्न है जिसका प्रयोग समान अन्तिम वर्ग की पुस्तकों के मध्य उस पुस्तक का सापेक्षिक स्थान निर्धारित करने के लिए किया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि एक प्रलेख को नाम देने की प्रक्रिया वर्गांक से आरम्भ होती है जिसका कार्यक्षेत्र प्रलेख का विचार-तत्व तक ही सीमित है। केवल वर्गांक आधार पर प्रत्येक प्रलेख को उसका वैयक्तिक नाम देना सम्भव नहीं है। इस अधूरी प्रक्रिया को ग्रथांक पूरी करता है। ग्रन्थांक में प्रत्येक प्रलेख को एक वैयक्तिक व सुनिश्चित नाम देने की पूर्ण क्षमता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ वर्गांक का कार्य समाप्त होता है वहां से ग्रथांक का कार्य आरम्भ हो जाता है।

ग्रथांक निर्मित करने की विधियाँ

डेसीमल वर्गीकरण पद्धति की उत्पत्ति के साथ ही ग्रथांक का प्रयोग भी आरम्भ हो गया था। ड्यूवी ने प्रथम चरण में एमहर्स्ट कॉलेज (Amherst college) में एक ही विषय की कई पुस्तकों के वर्गांक के बाद ग्रथांक के नियम के रूप में लेखक का पूरा नाम अथवा संक्षिप्त नाम का प्रयोग किया किन्तु यह विधि सहायक सिद्ध नहीं हुई। इसलिए ड्यूवी ने एक ही विषय की पुस्तकों को फलक में सुव्यवस्थित करने के लिए अंकों का प्रयोग वर्गांक के बाद निम्नलिखित प्रकार से किया-

513	Geometry
513.1	इस विषय की प्रथम पुस्तक
513.11	इस विषय की ग्यारहवीं पुस्तक

अर्थात् वर्गांक के साथ ही यह संख्या एक विषय पर कितनी पुस्तकें हैं यह भी बता देता था। तथापि डी0सी0 के संस्करण 12 की भूमिका मे ड्यूवी ने कटर लेखक अंक' व 'बिस्कों काल अंकों के बारे में लिखा है।

ड्यूवी के बाद पुस्तकालय विज्ञान के विभिन्न विद्वान प्रलेख को वैयक्तिक प्रदान करने हेतु निरन्तर प्रयास करते रहे हैं। इनके इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप ग्रन्थांक को निर्मित करने की विभिन्न विधियों का प्रतिपादन किया गया है। जिसमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं-

(1) लेखक के नाम के उपयोग की विधि

(2) पुस्तक के प्रकाशन वर्ष के उपयोग की विधि

(3) रंगनाथन की ग्रंथांक प्रणाली

(1) लेखक के नाम के उपयोग की विधि -

(अ) कटर लेखक चिह्न (Cutter Author Marks) कटर लेखक चिह्न विश्वव्यापी एवं प्रचलित विधि है। कटर द्वारा निर्मित वर्गीकरण प्रणाली (Expansive classification) के अंत में कटर लेखक चिह्न विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इसे 1887 में संशोधित भी किया गया। 1888 में इस सारणी को कई संशोधनों के साथ प्रकाशित किया गया। इस सारणी में लेखक चिह्न दो अक्षरों तक सीमित थे, किन्तु दो अक्षरों की यह सारणी बड़े तथा बढ़ते हुए पुस्तकालयों के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुई। इस सारणी में लेखक के कुल नाम (Surname) के प्रारम्भिक अक्षरों अथवा अक्षरों के साथ एक संख्या का प्रयोग निम्नलिखित रीति से किया जाता था-

(i) जब नाम का पहला अक्षर व्यंजन (consonants) है (शब्द S के अतिरिक्त) तो पहले एक अक्षर का प्रयोग सारणी में दी गई एक निर्धारित संख्या के साथ किया जाता है-

Balfour	B 197
Bread	B34

(ii) जब नाम का पहला अक्षर स्वर (vowel) अथवा S है तो पहले दो अक्षरों का प्रयोग समायोजित की गई एक निर्धारित स्वर (vowel) को कोई अक्षर अथवा S हो तो दो अक्षर-

Abbot - Ab2	Evans - Ev15
Allen -A153	Sharp-Sh26
Edwards-Ed 95	Swain-SW

(iii) जब नाम के प्रथम अक्षर SC हो तों प्रथम तीन अक्षरों का प्रयोग किया जायेगा -

Scammon	Sca 5
Scudder	Scu 23
Schneider	Sch57

इस सारणी को अपने पुस्तकालय में प्रयोग करते हुए कटर ने तीन अक्षरों के लेखक चिह्नों को जोड़ना प्रारम्भ किया। तथापि 1899 से 1901 के बीच इस सारणी में योजनाबद्ध रूप से संशोधन किये गये। इसी बीच कुमारी केट ई. सनबोर्न **(Kate**

E. Sanborn) ने भी तीन अंकों की कटर की सारणियाँ तैयार की, जो दो भागों में प्रकाशित हुई - प्रथम भाग स्वर **(Vowel)** सारणी 1892 में तथा दूसरा भाग व्यंजन **(Consonant)** सारणी 1895 में। इसका तीसरा संस्करण 1899 में प्रकाशित हुआ। यह पद्धति कटर-सनबोर्न लेखक चिह्न **(Cutter-Sanborn Author Markers)** के नाम से अत्यधिक प्रचलित लेखक सारणी है जिसका प्रयोग दशमलव क्लासीफिकेशन पद्धति के वर्गांकों के साथ भी किया जाता है।

(ब) मेरिल लेखक अंक (Merrill's Author Number)

न्यूबेरी पुस्तकालय, शिकागो के पुस्तकाल्याध्यक्ष विलियम एस0 मेरिल **(William Stetson Merril)** ने भी ग्रंथांक की एक विधि बनाई जिसमें वर्णमाला के A-Z अक्षरों के लिए 100 ग्रथांक प्रदान किये गये हैं। उदाहरण के लिए -

01A	10 Bix	21 D	96 Wats
02 Agre	14 C	22 Day	97 Wha
03 Als	15 Carr	24 Doy	98 Wit
04 Ap	16 Chan	25 E	99 X - Z

इस प्रकार लेखक का नाम जिस अक्षर से प्रारम्भ होता है उसी के आधार पर इस सारिणी में उसका ग्रंथांक बनाया जाता है।

(स) जास्ट लेखक अंक (Jast Author Number)

जास्ट (L. Stanley Jast) ने 1900 में एक सरल लेखक अंक विधि का निर्माण किया। जास्ट ने इस विधि का वर्णन Library World के खण्ड-3 में प्रकाशित एक लेख A New Book Number के अन्तर्गत किया। इस विधि का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार किया जाता है-

1. यदि एक नाम का एक ही लेखक है तो ग्रंथांक के लिए उसके नाम के प्रथम दो अक्षर प्रयोग किये जायेंगे, जैसे - Johans के लिए Jo

2. यदि कुछ पहले दो अक्षर समान हैं तो नाम के अक्षरों के बाद अरैबिक अंक 1, 2, 3....... आदि का प्रयोग किया जाता है, जैसे -

Johans	Jo
Johnson, R	Jo1

Johnson Sma	Jo3
Johnson, Samual	Jo3
Jokai	Jo3
Jojari	Jo4

अरैबिक अंक का प्रयोग पुस्तकाल्याध्यक्ष में पुस्तक की प्राप्ति पर आधारित है न कि लेखकों के नाम के तीसरे, चौथे अक्षरों पर, अर्थात् पुस्तकों के अधिग्रहण के क्रम पर निर्भर करेगा।

3. एक ही लेखक की दो कृतियों का नाम यदि एक ही अक्षर से आरम्भ होता है तो उसमें विशिष्टता प्रदान करने के लिए भी अंकों का निम्नलिखित प्रकार से प्रयोग किया जाता है-

प्रेमचन्द	गबन	PRE. G
प्रेमचन्द	कर्मभूमि	PRE. K

(2) पुस्तक का प्रकाशन वर्ष प्रयोग करने की विधि

(अ) बिस्को काल अंक (Biscoe time number) बिस्कों (Walter Stanley Biscoe) 1885 में बिस्को तिथि सारणी (Biscoe date Table) का निर्माण किया जिसमें ग्रथांक बनाने का आधार प्रलेखों के प्रकाशन वर्ष को बनाया गया है। सारिणी में 1000BC से 2000 AD तक की संख्याएँ प्रदान की गयी हैं।

A ईसा से पूर्व (BC)	T 1930 से 1939 AD
B1 से 999 AD	U 1940 से 1949 AD
C 1000 से 1499 AD	V 1950 से 1959 AD
D से 1599 AD	W 1960 से 1969 AD आदि।

इस सारणी के आधार पर निम्न प्रकार से ग्रंथांक बनाया जाता है-

प्रकाशन तिथि	ग्रंथांक
534 BC	A 534
320 AD	B 320
1273 AD	C 273

1512 AD	D 12
1969 AD	W69

एक ही विषय तथा एक ही वर्ष में प्रकाशित दो पुस्तकों को वैयक्तिता प्रदान करने के लिए छोटे रोमन अक्षर प्रयोग किये जाते हैं। जैसे -

भारत का इतिहास 1989	Y 9
भारत का इतिहास 1989	Y 9a

(ब) राइडर ग्रंथांक (Rider Book Number) राइडर ने विस्को काल अंक का ही संशोधन प्रस्तुत किया है जिसमें प्रकाशन वर्ष के लिए दशक का पहला अंक ही प्रयोग में लाया गया है। दूसरे अंक के लिए लेखक के कुलनाम का पहला अक्षर प्रयुक्त किया गया है। राइडर ने इसे दो चिह्नों का ग्रंथांक की संज्ञा दी है। विशिष्ट परिस्थितियों में इस अंक को बढ़ाया भी जा सकता है।

(3) रंगनाथन ग्रंथांक प्रणाली (Ranganathan Book Number System) डॉ0 रंगनाथन ने कोलन वर्गीकरण पद्धति में ग्रंथांक निर्मित करने के लिए पक्ष उपसूत्र (Facet Formula) का प्रतिपादन किया है। पक्षसूत्र का उपयोग कर सभी प्रकार के ग्रंथों की विशिष्टता के लिए ग्रंथांक प्रदान किया जा सकता है। ग्रंथांक का यह परिसूत्र कोलन वर्गीकरण पद्धति के अध्याय 02 पृष्ठ सं0 2.3 पर दिया गया है, तथा इस पक्ष उपसूत्र के अनुप्रयोग सम्बन्धी नियम अध्याय 03 पृष्ठ सं0 1.3 पर दिये गये हैं।

कोलन वर्गीकरण पद्धति में ग्रंथांक के निर्माण हेतु निर्मित पक्ष उपसूत्र योजक चिन्हों (Connecting symbols) सहित निम्नवत् हैं।

[L], [F] [Y] [A] [V] - [S]; [C] : [EVN]

उपर्युक्त पक्ष परिनियम में प्रयुक्त चिन्ह निम्नलिखित विशेषताओं के लिए प्रयोग किये गये हैं -

L प्रलेख की भाषा (Language)

F प्रलेख किस रूप में प्रकाशित हुआ है (Form)

Y प्रलेख का प्रकाशन वर्ष (Year)

A ग्रंथांक प्राप्ति भाग (Accession)

V प्रलेख की खण्ड संख्या (Volume Number)

S प्रलेख के खण्ड का परिशिष्ट अंक (Supplement Number)

C प्रलेख की प्रतियाँ (Copy Number)

EVN समालोचना

भाषा अंक (Language Number) जिस भाषा में ग्रंथ लिखा गया है उसके कृत्रिम भाषा में अनुवाद को ही भाषा अंक कहा जाता है। कोलन क्लासीफिकेशन में विभिन्न भाषाओं के लिए भाषा अंकों की सूची संस्करण 6 के अध्याय 5 भाषा विभाजन में दी हुई है। जैसे -

अंग्रेजी भाषा - 111

हिन्दी भाषा - 152

प्रत्येक ग्रन्थ की भाषा का कृत्रिम अंकों में अनुवाद करना आवश्यक नहीं है। कोलन क्लासीफिकेशन में इसके लिए निम्नलिखित निर्देश दिये गये हैं जिनके आधार पर ग्रंथांक में भाषा अंक के प्रयोग के बारे में निश्चित किया जा सकता है-

1. मुख्य वर्ग साहित्य के अतिरिक्त यदि प्रलेख की भाषा पुस्तकालय की अधिमान्य भाषा (Favoured language) है तब प्रलेख के ग्रंथांक में भाषा अंक की आवश्यकता नहीं है। पुस्तकालय में जिस भाषा में लिखे गये अधिकांश प्रलेखों अधिग्रहण किया जाता है। वही पुस्तकालय की अधिमान्य भाषा होती है। सामान्यतः अधिमान्य भाषा उस देश की मातृभाषा होती है किन्तु विशिष्ट परिस्थिति में अन्य भाषा भी हो सकती है। जैसे भारत के अधिकांश पुस्तकालयों में अंग्रेजी भाषा को अधिमान्य भाषा की तरह स्वीकृत किया गया है क्योंकि यहाँ के पुस्तकालयों में प्राप्त होने वाली अधिकांश पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में होती हैं।

2. मुख्य वर्ग साहित्य (Literature) में यदि पुस्तक की भाषा वही है जिसमें साहित्य लिखा गया है तो ग्रंथांक में भाषा अंक प्रयोग नहीं किया जाता है। क्योंकि इस भाषा के लिए अंक वर्गांक में प्रयोग किया जाता है। अर्थात् जब साहित्य की भाषा पुस्तक की भाषा होती है तब ग्रंथांक में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है।

3. यदि मूल पुस्तक के साहित्य का दूसरी भाषा में अनुवाद किया गया हो अथवा समीक्षा, जीवनी हो, तब मुख्य वर्ग साहित्य में भी जिस भाषा में अनुवाद किया गया है उस भाषा का अंक ग्रंथांक में प्रयोग किया जायेगा।

4. मुख्यवर्ग भाषा शास्त्र (Linguistics) में भी व्यक्तिगत पक्ष (Personality Facet) भाषा ही होती है। इसलिए मुख्यवर्ग साहित्य की तरह इस मुख्यवर्ग के ग्रंथांक में भाषा के अंक का प्रयोग तब ही किया जायेगा, जब पुस्तक की मूलभाषा में लिखी गई विषय वस्तु का अनुवाद, समीक्षा आदि किसी दूसरी भाषा में किया गया हो।

5. कोलन क्लासीफिकेशन में सामयिक प्रकाशन (Periodical publication) के वर्गांक में देश पक्ष का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः सामयिक प्रकाशनों की भाषा उस देश की ही भाषा होती है जहाँ से वे प्रकाशित होती है। इसलिए ग्रंथांक में भाषा अंक की आवश्यकता नहीं होती है।

रूप अंक (Form number)

ग्रंथांक का दूसरा पक्ष वह रूप है जिसमें प्रलेख में विषय की अभिव्यक्ति की गई है। यह अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में हो सकती है। जैसे-कविता, नाटक, उपन्यास, चित्रलिपि, भाषण अथवा सूची आदि रूप में। प्रलेख का यह विशिष्ट रूप भी विशेष महत्व रखता है। जिसका उल्लेख ग्रंथांक में आवश्यक होता है। रूप पक्ष को कृत्रिम अंक प्रदान करने के लिए कोलन क्लासीफिकेशन संस्करण 6 के अध्याय 03 तथा संस्करण 7 के अध्याय CC में निम्नलिखित रूप सारणी प्रदान की गयी है।

उदाहरण	सी0 सी0 6	सी0 सी0 7
Index	b	b
List	c	c
Data book	d	d
Picture	f	f
Press Cutting	xy	xy
Negative	-	y32
Xerograph	-	y4
Photocopy	-	y5

अंक w1 से w4 के अन्तर्गत दिये गये रूप एकलों का मुख्य वर्ग साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकों के ग्रंथांक में प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि मुख्यवर्ग साहित्य के व्यक्तित्व पक्ष का दूसरा पक्ष [P2] इन्ही रूपों से बना है तथा उसके अन्तर्गत इन रूपों के लिए अंक दिये गये हैं जैसे-

	रूप एकल	साहित्य [P2]
Drama	w2	O,2
Fiction	w3	O,3

सामान्यतः गद्य (Prose) के रूप में ही अधिकांश प्रलेख लिखे जाते हैं। इसलिए अधिकांश पुस्तकालयों में इसे अधिमान्य रूप (Favoured form) माना जाता है। ऐसे सभी पुस्तकालयों मे गद्य रूप में प्रकाशित प्रलेखों के ग्रंथांक के रूप अंक देने की आवश्यकता नहीं है।

वर्ष अंक (Year Number)

वर्ष अंक से अभिप्राय प्रलेख के प्रकाशन वर्ष से है। सामान्यतः प्रत्येक ग्रन्थ में उसका प्रकाशन वर्ष अनिवार्यतः दिया जाता है। इसलिए ग्रंथांक में इस अंक के आधार पर ही प्रलेखों को वैयक्तिकता प्रदान करना संभव हो जाता है। कोलन क्लासीफिकेशन में प्रकाशन वर्ष के लिए कृत्रिम एकल अंकों की सारणी संस्करण 6 के अध्याय 3 में दी गयी है। इन सारणियों के आधार पर प्रकाशन वर्ष का कृत्रिम अंक निम्नलिखित प्रकार से बनता है-

प्रकाशन वर्ष	कृत्रिम अंक
1725	L 25
1886	M 86
1996	N 96

सी0 सी0 के संस्करण 6 में प्रकाशन वर्ष का अंक दो विभिन्न सारणियों के आधार पर बनाया जा सकता है। पहली सारणी भाग 1 अध्याय 03 में दी गई है। इस ग्रंथांक तालिका का प्रयोग ऐसे पुस्तकालय कर सकते हैं जिनके पुस्तकालयों में अधिकांश पुस्तकें 1880 के बाद की प्रकाशित पुस्तकें हैं। इस तालिका के आधार पर ग्रंथांक दो अंकों का ही बनेगा -

प्रकाशन वर्ष	कृत्रिम अंक
1886	B 6
1996	N 6

सामयिक प्रकाशनों (Periodical Publications) के लिए प्रकाशन वर्ष उस वर्ष को माना जायेगा जिस वर्ष के लिए वह लिखा गया है। जैसे यदि एक सामयिक प्रकाशन का खण्ड 10 वर्ष 1973 के लिए लिखा गया है तो उसका ग्रंथांक 1973 के आधार पर ही बनेगा चाहे उसका प्रकाशन वर्ष 1974 ही क्यों न हो।

ग्रंथांक का परिग्रहण भाग (Acession part of the book)

यदि एक से अधिक प्रलेखों का विशिष्ट विषय एक ही है तो सबका अन्तिम वर्ग एक ही होगा। यदि इन सभी प्रलेखों का प्रकाशन वर्ष भी एक ही है तब इनको ग्रंथांक

के आधार पर वैयक्तिता प्रदान नहीं की जा सकती है। इस हेतु ही प्राप्ति अंक को ग्रंथांक में प्रयोग किया जाता है। प्राप्ति अंक दूसरी पुस्तक से देना आरम्भ किया जायेगा।

उदाहरण - पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त (Principles of Library Classification) पर एक ही वर्ष सन् 1998 में एक भाषा में प्रकाशित विभिन्न विभिन्न ग्रन्थों को ग्रंथांक वर्ष अंक के साथ निम्नांकित प्रकार होगा-

प्रति संख्या	वर्ष	वर्गांक	ग्रंथांक
प्रथम ग्रन्थ	1998	2:51	N98
द्वितीय ग्रन्थ	1998	2:51	N981
तृतीय ग्रन्थ	1998	2:51	N982

खण्ड अंक (Volume Number)

जिन पुस्तकों को कई खण्डों में प्रकाशित किया गया है उनको एक साथ सहायक अनुक्रम में व्यवस्थित करने के लिए खण्ड अंक प्रदान किया जाता है। इन विभिन्न खण्डों में विषय सामग्री को इस प्रकार विभाजित किया गया होता है कि पुस्तक के सभी खण्डों को अविभाज्य अर्थात् एक ही पुस्तक माना जाता है। इसलिए सब खण्डों के ग्रंथांक में प्रथम खण्ड के प्रकाशन वर्ष को ही प्रयुक्त किया जाता है। इसके बाद ही खण्ड अंक को एक बिन्दु के बाद लिखा जाता है।

उदाहरण - (i) राजस्थान का इतिहास, चार खण्डों में प्रकाशित

वर्गांक	प्रकाशन वर्ष	ग्रंथांक
V 4437	खण्ड 1-1967	N 67.1
	खण्ड 2-1970	N 67.2
	खण्ड 3-1977	N 67.3
	खण्ड 4-1978	N 67.4

परिशिष्ट अंक (Supplement Number)

पहले से प्रकाशित पुस्तक के साथ-साथ नई प्राप्त विषय सामग्री को प्रदान करने, नयी खोज व विकास को सम्मिलित करने हेतु एक पुस्तक के परिशिष्ट अंक दिये जा सकते हैं। इस तरह के परिशिष्ट अंक की संख्या एक अथवा अधिक हो सकती है। इन सभी का ग्रंथांक मुख्य पुस्तक के प्रकाशन वर्ष के आधार पर ही बनेगा। प्रकाशन वर्ष के बाद छोटी रेखा- (Hyphen) का प्रयोग योजक चिह्न के रूप में किया जाता है। जिसके बाद परिशिष्ट अंक निम्नलिखित रीति से लिखा जायेगा -

	ग्रंथांक
मूल पुस्तक का प्रकाशन वर्ष 1995	N 95

परिशिष्ट अंक -1 का प्रकाशन वर्ष 1998 N 98-1

परिशिष्ट अंक -2 का प्रकाशन वर्ष 1999 N 99-2

यदि यह कई खण्डों में प्रकाशित हुई है तो परिशिष्ट अंक को भी खण्ड अंक के बाद लिखा जायेगा-

N 95.1 खण्ड - 1

N 95.2 खण्ड - 2

N 95.2-1 खण्ड - 2, परिशिष्ट अंक 1

प्रति संख्या अंक (Copy Number)

पुस्तकालय में यदि एक ही पुस्तक की कई प्रतियाँ हैं तो इनको एक साथ व्यवस्थित करना आवश्यक हो जाता है। कोलन क्लासीफिकेशन में इस कार्य हेतु योजक चिह्न अर्द्धविराम (semi colon) आवंटित किया गया है। किसी भी पुस्तक के ग्रन्थांक में प्रति संख्या अंक उसकी दूसरी प्रति से ही प्रयुक्त किया जाता है।

उदाहरण - Prolegomena to library classification, Ed, 3. 1967 पुस्तकालय में इसकी पाँच प्रतियाँ हैं।

वर्गांक	ग्रंथांक	
2 : 51	N 67	प्रथम प्रति
	N 67;1	दूसरी प्रति
	N 67;2	तीसरी प्रति
	N 67;3	चौथी प्रति
	N 67;4	पाँचवीं प्रति

संस्करण संख्या (Edition Number) एक पुस्तक के विभिन्न संस्करणों को एक साथ रखने के लिए योजक चिन्ह अर्द्ध विराम का ही प्रयोग किया जाता है। उदाहरण - Prolegomena to library classification, Edition 1, 1937; Edition 2, 1957; Edition 3, 1967.

वर्गांक		ग्रंथांक
2 : 51	Ed.• 1	N 37
2 : 51	Ed.• 2	N 37; N 57
2 : 51	Ed.• 3	N 37; N 67

समीक्षा/संलग्न अंक (Evaluation / Attachment Number)

कई ऐसी पुस्तकें होती हैं जिनको, उत्कृष्ट कृति होते हुए भी श्रेण्य (Classic) पुस्तकों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। रंगनाथन ने ऐसी पुस्तकों को आभासी श्रेण्य ग्रन्थ (Pseudo-classic) की संज्ञा दी है। कोलन क्लासीफिकेशन में ऐसी पुस्तकों को सामान्य पुस्तकों की ही तरह वर्गीकृत किया जाता है। यदि ऐसी पुस्तकों पर कोई अन्य पुस्तक प्रकाशित होती है तो ऐसी पुस्तकों को सम्बद्ध पुस्तक (Associated book) अथवा संलग्न पुस्तक (Attached book) कहा जाता है। ऐसी पुस्तकों के ग्रन्थांक को निर्मित करने के लिए निम्नलिखित नियम प्रयोग किये जाते हैं -

संलग्न पुस्तक का ग्रन्थांक वही होगा जो मूल पुस्तक (Host book) का है किन्तु संलग्न पुस्तक को वैयक्तिकता प्रदान करने के लिए इसमें संलग्न अंक (Attachment number) जोड़ा जायेगा।

यदि संलग्न पुस्तक प्रयोगिक कार्य (Practical work) है तो अंक Y प्रयुक्त किया जायेगा। यदि संलग्न पुस्तक मूल पुस्तक की समीक्षा अथवा मूल्यांकन है तो अंक g प्रयुक्त किया जायेगा।

इन अंकों के मूल पुस्तक के ग्रन्थांक के बाद संयोग चिन्ह : (कोलन) से जोड़ा जायेगा।

उदाहरण	ग्रंथांक
मूल पुस्तक (Host Book)	प्रकाशन वर्ष 1978
संलग्न पुस्तक - प्रायोगिक कार्य	N 78 : y
संलग्न पुस्तक - समीक्षा	N 78 : g

संलग्न अंक का प्राप्ति पक्ष (Accession Facet of Attachment Number)

यदि मूल आभासी श्रेण्य ग्रन्थ पर कई संलग्न पुस्तकें लिखी गयी हैं तो संलग्न अंक के बाद अंक 1 2 3 आदि का प्रयोग निम्नलिखित रीति से किया जायेगा, जिसे प्राप्ति पक्ष कहा जाता है-

N 46	मूल पुस्तक का प्रकाशन वर्ष
N 46 :g	मूल पुस्तक का प्रथम समीक्षा
N 46 :g1	मूल पुस्तक का दूसरी समीक्षा
N 46 :g2	मूल पुस्तक का तीसरी समीक्षा

(3) संग्रहांक (Collection number) पुस्तकालय के विभिन्न प्रकार के संग्रह को इंगित करने के लिए विभिन्न प्रतीकों की सहायता ली जाती है, इसे ही संग्रहांक कहा जाता है।

एक पुस्तकालय अपने संग्रह को पाठकों अथवा अन्य दृष्टिकोण से इस प्रकार से विभाजित करता है कि अन्तर्निहित उद्देश्यों की पूर्ति सरलता से हो सके। विभाजन की प्रक्रिया पुस्तकों के भौतिक स्वरूप जैसे-ब्रेल पुस्तकें, माइक्रो कार्ड, पारदर्शी कार्ड, अथवा आकार जैसे-छोटे आकार अथवा बड़े आकार की पुस्तकें अथवा विशिष्ट विषयों के विभाग-जैसे कानून विभाग की पुस्तकें, रसायन शास्त्र विभाग की पुस्तकें, अथवा पाठकों की सुविधा हेतु जैसे - पाठ्य पुस्तकें आदि विभिन्न आधार प्रयोग किये जा सकते हैं। यह कार्य पुस्तक का वर्गांक अथवा ग्रन्थांक नहीं कर सकते हैं। इसलिए संग्रह अंक का प्रयोग किया जाता है। रंगनाथन ने इस हेतु संग्रहांक का उपसूत्र प्रतिपादित किया है जिसके अनुसार 'एक पुस्तक वर्गीकरण पद्धति में विशिष्ट प्रकार के संग्रह को उनके भौतिक स्वरूप अथवा दुर्लभता अथवा पाठक सेवाओं को सुलभ बनाने के लिए वैयक्तिकता प्रदान करने हेतु संग्रहांकों, की अनुसूची का प्रावधान किया जा सकता है।

कोलन क्लासीफिकेशन संस्करण 6 के अध्याय 4 तथा संस्करण 7 के अध्याय CD में संग्राहक की व्याख्या व अनुसूची दी गयी है।

उदाहरण	संस्करण 6	संस्करण 7
Reading room	RR	rr
Periodicals	PC	pe
Physics Department	CD	CD

तथापि एक पुस्तकालय के संग्रह को किन आधारों पर विभाजित करना है, किस प्रकार के संग्रह के लिए क्या प्रतीक प्रयुक्त करना है, यह सब पुस्तकालय का अनुरक्षण विभाग (Maintenance Department) निश्चित करता है। पुस्तकालय में प्रयोग की जाने वाली वर्गीकरण पद्धति में यदि संग्रहांक के लिए प्रावधान है तो संग्रह अंक उसी पद्धति के आधार पर प्रयुक्त किया जा सकता है अथवा पुस्तकालय स्वयं निश्चित कर सकता है।

क्रामक संख्या लिखने की विधि (Method of writing call number)

रंगनाथन ने क्रामक संख्या की अवधारणा प्रतिपादित करने के साथ ही इसके तीनों घटकों को प्रलेख के विभिन्न भागों तथा सूची पत्र आदि में लिखने के लिए भी पृथकता का उपसूत्र प्रतिपादित किया है, साथ ही कोलन क्लासीफिकेशन में इसके प्रयोग हेतु स्पष्ट निर्देश भी दिये हैं।

पृथकता का उपसूत्र (Canon of Distinctiveness)

इस उपसूत्र के अनुसार 'एक पुस्तकालय वर्गीकरण पद्धति में वर्गांक, ग्रन्थांक तथा संग्रहांक जो मिलकर क्रामक संख्या बनाते हैं, को एक दूसरे से स्पष्ट रूप से पृथक लिखा जाना चाहिए।

क्रामक संख्या को पृथक व स्पष्ट लिखने के दो माध्यम बताये गये हैं -

(अ) क्षैतिज रेखा पर (on horizontal line)

(ब) ऊर्ध्व रेखा पर (on vertical line)

क्रामक संख्या को क्षैतिज रेखा पर लिखते समय इसके तीनों घटकों, वर्गांक, ग्रन्थांक तथा संग्राहक के बीच उपयुक्त किन्तु बराबर स्थान छोड़ा जाना चाहिए जबकि क्रामक संख्या को ऊर्ध्व रेखा पर लिखते समय इन तीनों घटकों को एक के नीचे दूसरे को तीन पृथक लाइनों में लिखा जाना चाहिए।

क्रामक संख्या को क्षैतिज रेखा पर लिखते समय इनके तीनों घटकों वर्गांक, ग्रन्थांक तथा संग्राहक के बीच उपयुक्त किन्तु बराबर स्थान छोड़ा जाना चाहिए। जबकि क्रामक संख्या को ऊर्ध्व रेखा पर लिखते समय इन तीनों घटकों को एक के नीचे दूसरे को तीन पृथक लाइनों में लिखा जाना चाहिए।

संग्रहांक (Collection number) CD

वर्गांक (Class number) C 2 1 6

ग्रन्थांक (Book number) N 8 5

रंगनाथन द्वारा निर्मित वर्गीकृत सूची संहिता (C C C) के अनुसार क्रामक संख्या सूची पत्रक पर निम्नवत् अंकित की जायेगी-

CD संग्रहांक (Collection number)

वर्गांक (Class number) ग्रन्थांक C 2 1 6 N 8 5 अर्थात् संग्रहांक ऊपर और उसके नीचे तथा ग्रन्थांक अंकित किये जायेंगे।

4.5 सारांश (Summary)

पुस्तकालय वर्गीकरण में ग्रन्थों में वर्णित विषय का प्राकृतिक भाषा से वर्गीकरण की कृत्रिम भाषा में अनुवाद किया जाता है जो मात्र अंकन के द्वारा ही सम्भव होता है। इसलिए कहा गया है कि ग्रन्थों के वर्गीकरण का आधार अंकन होता है क्योंकि अंकन के अभाव में ग्रन्थों का वर्गीकरण सम्भव नहीं है।

कृत्रिम भाषा के निर्माण के लिए विभिन्न प्रकार के अंकों, चिह्नों, प्रतीकों आदि का प्रयोग किया जाता है।

रंगनाथन के अनुसार - ''अंकन क्रमसूचक अंकों की प्रणाली है जिनका प्रयोग वर्गीकरण पद्धति में वर्गों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है।''

अंकन को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है, पहला शुद्ध अंकन जिसमें केवल एक ही प्रकार के अंकों का प्रयोग किया जाता है और दूसरा मिश्रित अंकन जिसमें कई प्रकार के अंकों, प्रतीकों एवं चिह्नों का प्रयोग किया जाता है।

रंगनाथन के अनुसार अंकन में सरलता, सूक्ष्मता, ग्राह्यता और स्मृत्ति सहायक के गुणों का होना आवश्यक है।

क्रामक संख्या प्रत्येक ग्रन्थ को एक निश्चित स्थान प्राप्त करने तथा अन्य ग्रन्थों में उसकी पहचान सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से आवश्यक है। क्रामक संख्या ही ग्रन्थों को उनका वैयक्तिक स्वरूप प्रदान करती है।

रंगनाथन के अनुसार - एक प्रलेख की क्रामक संख्या निर्मित करने के लिए एक ग्रन्थ की तीन मूल विशेषताओं, वर्गांक + ग्रन्थांक + संग्रहांक को इंगित करना आवश्यकता है। इस प्रकार पुस्तकालय वर्गीकरण एक ग्रन्थ के विशिष्ट विषय के नाम को क्रम सूचक अंकों की अधिमान्य कृत्रिम भाषा में अनुवाद करता है तथा अनेक ग्रन्थ जो एक ही विशिष्ट विषय से सम्बन्धित है उनको उनकी विषय वस्तु के अतिरिक्त अन्य विशेषताओं के आधार पर दूसरे प्रकार के क्रमसूचक अंकों द्वारा वैयक्तिकता प्रदान करता है।

क्रामक संख्या के प्रयोग द्वारा ही पाठक के द्वारा पुस्तकालय में अधिग्रहण किये गये ग्रन्थों को माँगने पर उन्हें अतिशीघ्र उपलब्ध कराया जा सकता है, उपयोग के पश्चात् ग्रन्थों को वापस करने पर उन्हें पुनः निर्धारित स्थान पर रखा जा सकता है और पुस्तकालय द्वारा प्राप्त नवीन ग्रन्थों को उसी विषय से सम्बन्धित स्थान पर व्यवस्थित किया जा सकता है।

4.6 सम्बन्धित प्रश्न : बहुविकल्पीय, लघु स्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय

4.6.1 बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. किसने व्याख्या की कि अंकन एक आशुलिपि चिन्ह (Short hand sign) है-
   (1) रिचर्डसन (2) माग्रेट मान
   (3) रंगनाथन (4) फोसके

2. निम्नलिखित में से कौन का एक अच्छे अंकन का गुण नहीं है -
   (1) संक्षिप्तता (Brevity) (2) सरलता (Simplicity)
   (3) नम्यता (Flexibility) (4) सौंदर्य (Beauty)
3. अंकन कितने प्रकार के होते हैं-
   (1) 2 (2) 3
   (3) 4 (4) 5
4. A B C D --------X Y Z और 1, 2, 3 ....8, 9 का प्रयोग किसका एक उदाहरण है -
   (1) शुद्ध अंकन (2) मिश्रित अंकन
   (3) दोनों का (4) किसी का नहीं
5. क्रामक संख्या में किसी ग्रन्थ की कौन सी मूलभूत विशेषताएँ सम्मिलित हैं-
   (1) वर्गांक (Class number) (2) ग्रंथांक (Book number)
   (3) संग्रहांक (Collection number) (4) सभी (All)
6. वर्गांक का निर्माण किससे होता है -
   (1) पुस्तक के विशिष्ट विषय से (2) पुस्तक की आख्या से
   (3) लेखक के नाम से (4) पुस्तक के प्रकाशन वर्ष से
7. ग्रंथांक निर्मित करने की कौन-कौन सी विधियाँ है -
   (1) कटर लेखक अंक (2) मेरिल लेखक अंक
   (3) रंगनाथन ग्रंथांक प्रणाली (4) सभी

4.6.2 लघुउत्तरीय प्रश्न -

1. अंकन के अर्थ एवं परिभाषा की विवेचना कीजिए।
2. अंकन के प्रकारों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. क्रामक संख्या पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

4.6.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. अंकन की परिभाषा की विवेचना करते हुए वर्गीकरण में उसकी आवश्यकता, कार्य और महत्व पर प्रकाश डालिए।

2. अंकन से क्या तात्पर्य हैं ? इसके प्रकार, कार्य एवं प्रमुख विशेषताओं की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

3. क्रामक संख्या और उसकी संरचना की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

4.6 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (2) 2. (4) 3. (1) 4. (2)

5. (4) 6. (1) 7. (4)

4.7 संदर्भ एवं इतर पाठ्य सामग्री

1. चंपावत, जी. एस. (1993) पुस्तकालय वर्गीकरण के सिद्धान्त, जयपुर : आर.बी.एस. ए. पब्लिशर्स।
2. ध्यानी, पुष्पा (1999), पुस्तकालय वर्गीकरण। नई दिल्ली : एस. एस. पब्लिकेशन।
3. शर्मा, पाण्डेय एस. के. (1996), सरलीकृत पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त। दिल्ली : ज्ञान गंगा।
4. शर्मा बी. डी. (1998), सैद्धान्तिक ग्रन्थालय वर्गीकरण। आगराः वाई. के. पब्लिशर्स।
5. त्रिपाठी, एस.एम. (1997)। आधुनिक ग्रन्थालय वर्गीकरणः सैद्धान्तिक विवेचन। आगरा : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी।
6. Ranganathan, S. R. (1962). Elements of Library Classification. Bombay : Asia publishing.
7. Ranganathan, S. R. (1989). Prolegomena to library classification. 3rd. ed. Bangalore.
8. Sajita M.P. (1992) Review article on book number.

इकाई - 5 : पाँच मूलभूत श्रेणियाँ, पक्ष विश्लेषण एवं पक्ष अनुक्रम

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 मूलभूत श्रेणियाँ

 5.2.1 मूलभूत श्रेणियों की अभिधारणा

 5.2.2 पाँच मूलभूत श्रेणियाँ

5.3 पक्ष विश्लेषण

 5.3.1 पक्ष विश्लेषण के प्रयोग द्वारा विषय विश्लेषण

 5.3.2 कोलन क्लासीफिकेशन एवं पक्ष विश्लेषण

 5.3.3 ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन एवं पक्ष विश्लेषण

 5.3.4 यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन एवं पक्ष विश्लेषण

5.4 पक्ष अनुक्रम

 5.4.1 कोलन क्लासीफिकेशन में पक्ष अनुक्रम

 5.4.2 ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन में पक्ष अनुक्रम

 5.4.3 यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन में पक्ष अनुक्रम

5.5 सारांश

5.6 सम्बन्धित प्रश्न - बहुविकल्पीय, लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय

5.7 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

5.8 संदर्भ एवं इतर पाठ्यसामग्री

5.0 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में श्रेणी की अवधारणा, उनका ऐतिहासिक विकासक्रम और मूलभूत श्रेणियों के विवेचन के साथ-साथ रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पाँच मूलभूत श्रेणियों को उदाहरण सहित विवेचित किया गया है। ग्रन्थ वर्गीकरण करते समय ग्रन्थों में निहित विषय-वस्तु का सम्बन्धित पक्षों में विश्लेषण किया जाता है। जिसे इस इकाई में स्पष्ट किया गया है। विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों प्रमुखतः कोलन क्लासीफिकेशन, ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन एवं यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन पद्धतियों में अपनाए गए पक्ष अनुक्रमों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

5.1 उद्देश्य (Objectives)

मूलभूत श्रेणियों, पक्ष विश्लेषण एवं पक्ष अनुक्रम की इस इकाई के अध्ययन से आप :-

- मूलभूत श्रेणियों की अभिधारणा का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- पाँच मूलभूत श्रेणियों : व्यक्तित्व, पदार्थ, ऊर्जा, स्थान एवं काल पक्ष की गहन जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- पक्ष विश्लेषण तथा पक्ष अनुक्रम की तकनीक का ग्रन्थों के वर्गीकरण में अनुप्रयोग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; तथा
- कोलन क्लासीफिकेशन, ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन एवं यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन पद्धतियों में पक्ष विश्लेषण एवं पक्ष अनुक्रम के प्रयोग को उदाहरण सहित समझ सकेंगे।

5.2 मूलभूत श्रेणियाँ (Fundamental Categories)

पुस्तकालय वर्गीकरण में विषय जगत को विभाजित करने के लिए उसमें अन्तर्निहित विशेषताओं, गुणों और लक्षणों के प्रयोग के फलस्वरूप जो वर्ग प्राप्त होते हैं उन्हें श्रेणी कहा जा सकता है। श्रेणी की अवधारणा का उद्भव वर्गीकरण प्रक्रिया के साथ ही आरम्भ हो जाता है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस अवधारणा का प्रयोग दार्शनिक वर्गीकरण पद्धतियों में भी दृष्टिगत होता है।

वर्गीकरण पद्धति के श्रेणी पद का वास्तविक अर्थ में प्रयोग डॉ0 एस0 आर0 रंगनाथन ने अपनी कोलन वर्गीकरण पद्धति में किया है।

5.2.1 मूलभूत श्रेणियों की अभिधारणा (Concept of Fundamental Categories)

डॉ0 रंगनाथन की यह परिकल्पना थी कि किसी विषय को उसमें निहित विशेषता के आधार पर अधिकतम पाँच मूलभूत श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। डॉ0 रंगनाथन ने अपनी पद्धति की संरचना करने से पूर्व विश्व की सभी प्रमुख प्रचलित वर्गीकरण पद्धतियों का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद विभिन्न अभिधारणाओं को प्रतिपादित किया। पाँच मूलभूत श्रेणियों की अभिधारणा उनमें से प्रमुख अभिधारणा है।

डॉ0 रंगनाथन ने अपनी वर्गीकरण पद्धति में ज्ञान - जगत का विभाजन मुख्य वर्गों (Main Classes) में सैद्धान्तिक रूप से किया है। प्रत्येक मुख्य वर्ग को विषय की विशेषता के अधार पर कतिपय श्रेणियों में विभाजित किया है। वर्गीकरण का मुख्य

आधार विषय (Subject) में निहित विशेषताएँ हैं, जिनको लघु मौलिक भागों में विभाजित करना आवश्यक था। डॉ0 रंगनाथन ने प्रत्येक विषय को श्रेणियों में विभाजित कर प्रत्येक विषय को पक्ष-उपसूत्र (Facet Formula) के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया है। कोलन वर्गीकरण पद्धति की संरचना के समय ही डॉ0 रंगनाथन ने विषय के विभाजन के लिए श्रेणियों की अभिधारणा को प्रतिपादित कर लिया था। डॉ0 रंगनाथन ने इस प्रकार की श्रेणियों को निर्धारित कर वर्षों तक इनका निरीक्षण, परीक्षण एवं मूल्यांकन कर अपनी पद्धति में पाँच मूलभूत श्रेणियों का प्रयोग ज्ञान का विभाजन एवं व्यवस्थापन करने में किया।

डॉ0 रंगनाथन मूलतः वर्गीकरण पद्धति में श्रेणी पद को वास्तविक अर्थ में प्रयोग के प्रणेता, इनकी वर्गीकरण पद्धति का आधार ही पाँच मूलभूत श्रेणियाँ हैं। इनके अनुसार-

''प्रत्येक विषय का पक्ष अथवा प्रत्येक पक्ष का विभाजन पाँच मूलभूत श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी की अभिव्यक्ति होती है।''

अर्थात् किसी भी विषय का विभाजन किसी न किसी श्रेणी अथवा पक्ष का भाग होता है। विषय की विशेषताओं के आधार पर किसी विषय में दो पक्ष अथवा दो से अधिक पक्ष या अधिकतम पाँच पक्ष हो सकते हैं, जिनमें से प्रत्येक पक्ष पाँच मूलभूत श्रेणियों में से किसी न किसी श्रेणी को पृथक् - पृथक् अभिव्यक्त करता है। यदि विषय में पाँच पक्ष हैं, तो श्रेणियों की संख्या भी पाँच होगी। दूसरे शब्दों में किसी विषय में जितने पक्ष होंगे, उतनी ही उस विषय में श्रेणियाँ होंगी।

इस प्रकार रंगनाथन ने पुस्तकालय वर्गीकरण को पाँच मूलभूत श्रेणियों, यथा- व्यकित्व (Personality), पदार्थ (Matter), ऊर्जा (Energy), स्थान (Space) और काल (Time) हैं जिन्हें संक्षेप में "P M E S T" कहा जाता है, के रूप में न केवल एक सिद्धान्त प्रदान किया अपितु वर्गीकरण को सरल, सुव्यवस्थित एवं सारगर्भित बना दिया।

5.2.2 पाँच मूलभूत श्रेणियाँ (Five Fundamental Categories)

सन् 1944 में डॉ0 एस0 आर0 रंगनाथन ने अपनी वर्गीकरण पद्धति (कोलन क्लासिफिकेशन) में ज्ञान के विभाजन में श्रेणियों का व्यापक प्रयोग किया।

सन् 1952 में इस पद्धति के चतुर्थ संस्करण में मूलभूत श्रेणियों की अभिधारणा का प्रयोग मूर्त (Concrete) रूप में किया गया था। चतुर्थ संस्करण से पूर्व सभी पक्षों

की विभिन्न श्रेणियों को व्यक्त करने के लिए केवल एक योजक चिह्न कोलन (:) का प्रयोग किया जाता था। चतुर्थ संस्करण में कोलन (:) के साथ-साथ सभी श्रेणियों के लिए निम्नानुसार संयोजी चिन्हों का प्रयोग किया गया-

व्यक्तित्व	(Personality)	[P]	,	Comma
पदार्थ	(Matter)	[M]	;	Semi-colon
ऊर्जा	(Energy)	[E]	:	Colon
स्थान	(Place)	[S]	.	Dot
काल	(Time)	[T]	.	Single inverted Comma

देश पक्ष तथा समय पक्ष की श्रेणियों के व्यक्त करने के लिए एक ही प्रकार के योजक चिह्न .(Dot) बिन्दु का प्रयोग किया जाता था। इस पद्धति के पाँचवे संस्करण में मूलभूत श्रेणियों की अभिधारणा एवं उनके अनुप्रयोग तथा योजक चिन्हों में किसी प्रकार की परिवर्तन नहीं किया गया। सन् 1963 में इस पद्धति के छठवें पुर्नमुद्रित संस्करण में समय पक्ष [T] के योजक चिन्ह .(Dot) बिन्दु के स्थान पर '(Single inverted comma) का प्रयोग किया गया।

सन् 1966 से डॉ0 रंगनाथन इस पद्धति के सातवें संस्करण को तैयार करने में संलग्न हो गये और सन् 1987 में संशोधन एवं विस्तृत आकार लिए सातवें संस्करण का प्रकाशन हुआ। लेकिन विषयों के विभाजन का मूल आधार पाँच मूलभूत श्रेणिया ही थी। इस पद्धति में पाँच मूलभूत श्रेणियों का प्रयोग विषयों को पाँच मूलभूत पक्षों में विभाजित करने के लिए किया गया था। किसी विषय के पाँच प्रकार के आयाम एवं पक्ष ही उस विषय की मूलभूत श्रेणियाँ हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि किसी विषय को उसकी विशेषताओं के आधार पर विभिन्न पक्षों में विभाजित किया गया है, जो श्रेणियों की ही अभिव्यक्ति है। प्रत्येक पक्ष को वैयक्तिकता (Individualisation) प्रदान करने के लिए भिन्न प्रकार के योजक चिन्हों (Connecting symbols) का प्रयोग किया गया है। ध्यातव्य है कि व्यक्तित्व पक्ष के लिए योजक , (comma) का प्रयोग किया गया है लेकिन किसी मुख्य वर्ग में मूल वर्ग के बाद व्यक्तित्व पक्ष का एकल संयोजित किया जाता है तो मूल वर्ग एवं व्यक्तित्व पक्ष के मध्य योजक चिन्ह , (comma) का प्रयोग नहीं किया जाता

यथा-

	[BC]	[P]
University Library	2	34
	[BC]	[P]
Ultra Sound	C	35

कोलन वर्गीकरण पद्धति में प्रयुक्त पाँच मूलभूत श्रेणियों के योजक चिन्ह निम्न हैं :-

1. व्यक्तित्व	(Personality)	[P]	,	कॉमा
2. पदार्थ	(Matter)	[M]	;	सेमीकोलन
3. ऊर्जा	(Energy)	[E]	:	कोलन
4. स्थान	(Place)	[S]	.	डॉट
5. काल	(Time)	[T]	'	सिंगल इनवर्टेड कौमा

कोलन पद्धति में प्रत्येक पक्ष के लिए प्रयुक्त संयोजी चिन्ह का अपना निश्चित महत्व होता है। इस पद्धति के विभिन्न संयोजी चिन्हों को उनके निश्चित मूल्य (Absolute value) के आरोही क्रम (Ascending order) में व्यवस्थित किया जाय तो इन पक्षों का अनुक्रम निम्न प्रकार होगा-

[T] [S] [E] [M] [P]

पक्षों का यह अनुक्रम प्रतिलोमता के सिद्धान्त (Principle of inversion) के आधार पर निर्धारित किया गया है। वैश्लैषी-संश्लेषणात्मक वर्गीकरण पद्धति (Analytico-synthetic classification scheme) में किसी मुख्य वर्ग के पक्ष उप-सूत्र में पक्षों का अनुक्रम उनके निरन्तर घटते हुए क्रम में होगा, अर्थात् किसी विषय के मूल वर्ग के मूर्त पक्ष का प्रथम स्थान पर तथा अमूर्त पक्ष को निरन्तर बाद के अनुक्रम में रखा जाता है यथा मुख्य वर्ग 2 Library science के पक्ष उपसूत्र 2 [P]; [M] : [E] [2P] में सबसे अधिक मूर्त पक्ष व्यक्तित्व को प्रथम स्थान पर तथा पदार्थ पक्ष [M] को [P] पक्ष के तुलना में अमूर्त पक्ष होने के कारण [P] पक्ष के बाद व्यवस्थित किया गया है। ऊर्जा [E] पक्ष पदार्थ पक्ष की तुलना में कम मूर्त है। अतः इसको पक्ष-उपसूत्र में पदार्थ पक्ष के बाद रखा गया है। सभी पक्षों में स्थान [S] तथा काल [T] पक्ष सर्वाधिक अमूर्त (Abstract) पक्ष हैं। अतः मुख्य वर्ग में पक्षों का अनुक्रम [P] [M] [E] [S] [T] के रूप

में व्यवस्थित किया गया है।

पाँच मूलभूत श्रेणियों की विवेचना एवं कोलन वर्गीकरण पद्धति में उनके अनुप्रयोग की स्थिति का श्रेंणीबार उल्लेख निम्नवत् है-

व्यक्तित्व श्रेणी (Personality Category)

पाँच मूलभूत श्रेणियों में यह श्रेणी महत्वपूर्ण श्रेणी है। व्यक्तित्व श्रेणी पद को इस पद्धति में 'मानव के व्यक्तित्व' के समान माना गया है। मनुष्य के अन्तर्निहित बाह्य गुण जिस प्रकार उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। उसी प्रकार किसी विषय के मुख्य वर्ग की सर्वाधिक मूर्तता वाले गुण व्यक्तित्व श्रेणी को अभिव्यक्त करते हैं। व्यक्तित्व की पहचान करना अत्यन्त दुष्कर कार्य हैं, इसी कारण इस श्रेणी के पक्षों की पहचान के लिए 'अवशेष विधि' का प्रयोग किया गया है। अवशेष विधि के माध्यम से व्यक्तित्व पक्ष की पहचान करना एक नकारात्मक विधि (Negative Method) है। व्यक्तित्व श्रेणी को अकथनीय एवं अवर्णनीय कहा गया है। व्यक्तित्व श्रेणी का प्रयोग कोलन वर्गीकरण पद्धति में विविध रूपों में हुआ है। काल एवं देश (Time & Space) पक्ष का प्रयोग भी कुछ मुख्य वर्ग में व्यक्तित्व पक्ष [P] रूप में हुआ है।

कुछ मुख्य वर्गों में व्यक्तित्व पक्ष के अन्तर्गत प्रयुक्त पदों को उदाहरण सहित नीचे दर्शाया गया है -

मुख्य वर्ग 2 में व्यक्तित्व श्रेणी/पक्ष में विभिन्न प्रकार के पुस्तकालयों को रखा गया है। यथा -

	[P]
National library	213
	[P]
District library	221
	[P]
University library	234

मुख्य वर्ग में विभिन्न प्रकार की इंजीनियरिंग की शाखाओं एवं उनसे सम्बन्धित पदों को व्यक्तित्व पक्ष में व्यवस्थित किया गया है। यथा -

	[P]
Civil Engineering	D 1
	[P]

Mechanical Engineering	D 6
	[P]
Nuclear Engineering	D 7

मुख्य वर्ग E Chemistry में व्यक्तित्व पक्ष में विभिन्न प्रकार के कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायनों को व्यवस्थित किया गया है।

मुख्य वर्ग J (Agriculture) में व्यक्तित्व पक्ष में विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को रखा गया है। यथा -

	[P]
Fruit	J 37
	[P]
Wheat	J 382
	[P]
Rice	J 381

मुख्य वर्ग V (History) एवं Z (Law) में व्यक्तित्व पक्ष [P] के लिए भौगोलिक विभाजन (Geographical Division-GD)) से देश पक्ष (S) का प्रयोग करने के निर्देश दिये गये हैं। यथा-

	[P]
Indian History	V 44
	[P]
British History	V 56
	[P]
Indian Law	Z 44
	[P]
British Law	Z 56

कुछ मुख्य वर्गों में काल पक्ष [T] को व्यक्तित्व श्रेणी के रूप में प्रयोग किया गया है। यथा -

	[P]
Biography of Dr. S. R. Ranganathan born in 1892	2wM 92
	[P]
Biography of Jawahar Lal Nehru, born in 1889	V 44 y 7M 89
	[P]

मुख्य वर्ग N Fine Arts में [P] पक्ष स्थान से तथा [P2] पक्ष काल से प्रयुक्त किया गया है। यथा-

	[P], [P2]
Jain Architecture	NA 44, E
	[P], [P2]
Roman Architecture	NA 52, D

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व श्रेणी का प्रयोग व्यापक रूप में हुआ है। पुस्तकालय विज्ञान के मर्मज्ञ मिल्स (J. Mills) ने व्यक्तित्व श्रेणी के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि -

''व्यक्तित्व पद का प्रयोग विषय के उन पदों का उल्लेख करने के लिए किया जाता है। जो सामान्यतः उस विषय के लिए विशेष होते है तथा उस विषय को मौलिक स्वरूप एवं व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।''

पदार्थ (Matter)

मूलभूत श्रेणियों में पदार्थ (Matter) श्रेणी की अभिव्यक्ति मूलतः तीन स्वरूपों- पदार्थ वस्तु (Matter Material), पदार्थ सम्पत्ति (Matter Property) एवं पदार्थ विधि (Matter method) में हुआ है। पदार्थ पक्ष की पहचान करना सरल है। कोलन वर्गीकरण पद्धति में इस पक्ष का प्रयोग कुछ मुख्य वर्गों में ही हुआ है। पदार्थ श्रेणी के प्रयोग के उदाहरण निम्न हैं-

मुख्य वर्ग 2 (Library science) में पदार्थ श्रेणी का प्रयोग विभिन्न प्रकार की पाठ्य सामग्री के लिए किया गया है। इस मुख्य वर्ग के पदार्थ [M] पक्ष को मुख्य वर्ग a (Generalia bibliography) के व्यक्तित्व [P] पक्ष से लेने के निर्देश दिये गये हैं।

		[P], [M]
1.	Periodicals in university library	234;46
		[P]; [M]

2.	Newspaper in religious library	2 (Q); 44

मुख्य वर्ग N Fine Arts के प्रमाणिक विभाजन (Canonical division) में पदार्थ [M] पक्ष का प्रयोग चित्रकला में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के धरातलीय पदार्थों के नामों के लिए किया गया है। यथा-

		[M]
1.	Paper in painting	NQ;2
2.	Persian style painting of Human	[P], [P2], [P3]; [M]
	Figure on metals	NQ 45, C1;5

मुख्य वर्ग X Economics में पदार्थ [M] पक्ष का प्रयोग विभिन्न प्रकार की मुद्रा बनाने में प्रयुक्त पदार्थ के लिए किया गया है। यथा-

		[P]; [M]
1.	Silver money	X 61; 2
		[P]; [M]
2.	Paper money	X 61;4
		[P]; [M]
2.	Gold money	X 61;1

मुख्य वर्ग G (Biology), L (Botany), K (Zoology), तथा L Medicine में भी पदार्थ [M] पक्ष का प्रयोग हुआ है।

ऊर्जा (Energy) :

ऊर्जा से तात्पर्य विषय का वह पक्ष जिसमें ऊर्जा व्यय का अर्थ परिलक्षित हो, से है। डॉ0 रंगनाथन ने अपने कोलन वर्गीकरण पद्धति में सामान्यतया सभी मुख्य वर्गों में ऊर्जा पक्ष का प्रयोग विषय के कार्यों (Functions) समस्याओं (Problems) बीमारियों (Diseases) प्रक्रियाओं (Processes) गतिविधियों (Activities) तथा समस्याओं के समाधान (Solutions) आदि के लिए किया है।

ऊर्जा श्रेणी का इस पद्धति में कुछ मुख्य वर्गों में प्रयोग के उदाहरण निम्नवत् है-

मुख्य वर्ग 2 Library science में ऊर्जा पक्ष [E] का प्रयोग ग्रन्थालयों की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं कार्यों के लिए किया गया है। यथा -

		[P]: [E]
1.	Catalogue in Research library	236 : 55
		[P] : [E]
2.	Reference service in college library	233 : 7

मुख्य वर्ग L Medicine में ऊर्जा पक्ष [E] का प्रयोग मानवीय शरीर में विभिन्न प्रकार की बीमारियों एवं ऊर्जा पक्ष के द्वितीय आवर्तन पक्ष [2E] का प्रयोग बीमारी के इलाज के लिए किया गया है। यथा-

		[P] : [E] [2P]
1.	Typhoid	L25 : 4 241
		[P] : [E] [2P]
2.	Anamia	L 35 : 4 11
		[P] : [E] [2P] : [2E]
3.	Diagnosis through X-ray of Anamia	L 35 : 411 : 3253

मुख्य वर्ग T Education में उसी पक्ष [E] का प्रयोग अध्ययन की तकनीकों विधियों, पाठ्यचर्या आदि के लिए किया गया है। यथा -

		[P] : [E]
1.	Syllabus for secondary school	T 2 : 2
		[P] : [E]
2.	Teaching method at P.G. level	T 46 : 3

इस प्रकार अन्य मुख्य वर्गों में ऊर्जा पक्ष का प्रयोग विभिन्न कार्यों एवं क्रिया-कलापों आदि के लिए किया गया है।

देश (Space)

ज्ञान जगत के किसी भी विषय में यदि स्थान का प्रयोग हुआ है, उस स्थिति में देश पक्ष [S] का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् देश पक्ष के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के भौगोलिक क्षेत्रों यथा - जलीय, मैदानी, पर्वतीय, महाद्वीप, देश, प्रदेश, शहर आदि के लिए कोलन वर्गीकरण पद्धति के भौगोलिक विभाजनों हेतु एक स्थान एकल (Space Isolate) सारिणी वर्गीकरण अनुसूची के भाग-02 में पृष्ठ संख्या 2.8 पर दी गयी है। इस तालिका में दिये गये देशों के अंकनों को शीघ्र खोजने के लिए देशों के नामों को

वर्णक्रम (Alphabetical) में व्यवस्थित कर भौगोलिक अनुक्रमणिका (Geographical index) दी गयी हैं।

'देश' श्रेणी को पहचानना अन्य श्रेणियों की तुलना में आसान है। इस श्रेणी का प्रयोग सभी विषयों में भौगोलिक स्थिति को व्यक्त करने के लिए किया जा सकता है। इस श्रेणी के विभिन्न मुख्य वर्गों में प्रयोग के कुछ उदाहरण नीचे अंकित हैं।

		[P] . [S]
1.	University Library in India	234 . 4
		[P] . [S]
2.	University Library in great Britain	234 . 56
		[P] . [S]
3.	Education in Inida	T . 44
		[P] . [S]
4.	University Education in India	T 4.44

इस श्रेणी का प्रयोग कुछ मुख्य वर्गों में व्यक्तित्व पक्ष (P) के रूप में भी हुआ है। यथा -

		[P]
1.	History of India	V 44
		[P]
2.	History of Japan	V 42
		[P]
3.	Indian Law	Z 44
		[P]
4.	British Law	Z 56

अनेक पूर्ववर्ती सामान्य एकलों (Anteriorising common isolate) में भी देश [S] श्रेणी का प्रयोग व्यक्तित्व पक्ष [P] के रूप में हुआ है। यथा -

		[P]
1.	History of Library science in India	2v 44
		[P]
2.	History of physics in India	Cv 44

काल (Time) :

किसी भी विषय में 'काल श्रेणी' की पहचान करना भी देश श्रेणी के समान ही सरल है। इस श्रेणी का प्रयोग कोलन वर्गीकरण पद्धति में भूत, वर्तमान तथा भविष्य के समय के साथ-साथ दिन-रात एवं विभिन्न ऋतुओं (Seasons) के लिए किया गया है। इस पद्धति में काल पक्ष [T] के प्रयोग के लिए कालक्रम सारणी पृष्ठ संख्या 2.7 पर दी गयी है, जिसका प्रयोग विषय के अनुसार वर्गांक के समय के लिए किया जा सकता है। विभिन्न मुख्य वर्गों में इसके प्रयोग के कतिपय उदाहरण नीचे दिये गये हैं। यथा-

		[P] . [S] [T]
1.	Higher education in India in 1984	T4 . 44 'N84
		[P] . [S] '[T]
2.	Development of fuel Technology in India in 1996.	F 55. 44 'N96

विभिन्न विषयों की भूत, भविष्य एवं वर्तमान स्थिति के अभिज्ञान के लिए समय को व्यक्त करने के लिए भी काल [T] पक्ष का प्रयोग किया जाता है। भविष्य के लिए अग्रमुखी तीर (Forward arrow) तथा भूतकाल के लिए पश्चमुखी तीर (Backward arrow) का प्रयोग किया जाता है। यथा-

1.	Economic development of India in 20th century.	X . 44'N
2.	Economic development of India before 20th century	X.44'N←
3.	Economic development of Inida after 20th century.	X. 44'N →

कोलन वर्गीकरण पद्धति के कुछ मुख्य वर्गों में काल पक्ष (T) का प्रयोग व्यक्तित्व पक्ष [P] अथवा व्यक्तित्व पक्ष के स्तर (Level) के रूप में हुआ है।

मुख्य वर्ग O Literature में काल पक्ष का प्रयोग [P3] पक्ष के रूप में लेखक की जन्म तिथि (Date of birth) को इंगित करने के लिए किया गया है। यथा-

1. King lear by Shakespear, born in 1564, his 19th work

[P],	[P2]	[P3],	{P4]
011,	25	J4,	33

कोलन वर्गीकरण पद्धति में पूर्ववर्ती सामान्य एकलों (ACI) में भी काल श्रेणी का प्रयोग व्यक्तित्व पक्ष [P] के रूप में हुआ है। यथा -

1. Journal of Physics, published from Lucknow, 1953

[P], [P2]

Cm 44, N53

उपर्युक्त उदाहरण में पूर्ववर्ती सामान्य एकल m Periodical का पक्ष-उपसूत्र (Facet formula) [P], [P2] दिया गया है जिसमें व्यक्तित्व पक्ष के द्वितीय स्तर [P2] को कालानुक्रमिक विभाजन (CD) से लेने के निर्देश हैं।

काल श्रेणी का प्रयोग दो स्तरों पर भी किया गया है। काल श्रेणी के प्रथम स्तर में विभिन्न वर्षों को दर्शाया गया है तथा द्वितीय स्तर में विभिन्न ऋतुओं, दिन-रात, बर्फीला मौसम आदि का प्रयोग किया जाता है। यथा-

		[P] . [S] '[T] '[T2]
1.	Rain in India during winter in 1986.	U 2855.44'N86 'N7
		'[T] '[T2]
2.	Storm in India in night in 1996.	U 2835. 44'N96'C
		[T2]
3.	Storm in India in night	U 2833.44'C

उदाहरण तीन में काल श्रेणी के [P2] पक्ष का प्रयोग पृथक् रूप में किया गया है।

पुस्तकालय विज्ञान एवं वर्गीकरण में पाँच मूलभूत श्रेणियों की अभिधारणा डॉ0 रंगनाथन की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ है। इन श्रेणियों के आधार पर ज्ञान-जगत् के विषयों को सहायक अनुक्रम में व्यवस्थित करने में सहायता मिली है।

विषय में मूलभूत श्रेणियों की पहचान (Identification of Fundamental Categories) :-

किसी भी विषय में पाँचों मूलभूत श्रेणियों को पहचानने हेतु PMEST शब्द के अक्षरों को विपरीत क्रम में करके TSEMP के आधार पर सुनिश्चित किया जा सकता है अर्थात् किसी भी विषय में उल्टे क्रम से यदि इन श्रेणियों की पहचान करें तो पहचान करने का कार्य आसान हो जाता है। इस प्रकार इनकी पहचान के लिए निम्न क्रम चलता है-

1. काल श्रेणी (Time Category) किसी भी विषय में इस श्रेणी को पहचानने अथवा सुनिश्चित करने में सबसे कम कठिनाई होती है। इस श्रेणी से विषय

में समय की अभिव्यक्ति होती है। समय की अभिव्यक्ति वर्ष, दिन, समय, शताब्दी, दशाब्दी, दिन का समय, रात का समय, मौसम आदि के रूप में होती है। काल श्रेणी की एक विस्तृत तालिका सीसी (पार्ट-2) के पृष्ठ 2.7 पर प्रस्तुत की गई है।

2. स्थान श्रेणी (Space category) किसी मुख्य वर्ग में यह श्रेणी किसी भौगोलिक क्षेत्र के रूप में व्यक्त होती है जैसा महाद्वीप, देश, प्रदेश, नगर, गाँव, पहाड़, घाटी आदि इसलिए इसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती अभिव्यक्त किये जाते हैं। सीसी में इसका योजक चिन्ह डॉट (Dot) है। उदाहरण - History of libraries in Asia = 2v.4 यहाँ 4 एशिया स्थान को प्रदर्शित करता है। डॉ0 रंगनाथन ने अपनी सीसी में स्थान श्रेणी की एक विस्तृत सारिणी Space Isolate Geographical index तथा उसकी अनुक्रममिका के नाम से पृष्ठ 2.8 से पृष्ठ 2.17 तक प्रस्तुत की है। उसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं-

1	World	44 (Q7)	Pakistan
1N	Legae of Nations Area	5	Eurpoe
2	Mother Country	56	Great Britian
4	Asia	58	Russia
44	India	6	Africa
4452	Uttar Pradesh	7	America

ऊर्जा श्रेणी (Energy category) किसी विषय में क्रिया, समस्या, निदान, रचना आदि की अभिव्यक्ति व्यक्त करने वाले पद ऊर्जा श्रेणी में आते हैं। इस श्रेणी में क्रियाशीलता का आभास होता है। किसी भी विषय में इस श्रेणी को पहचानने में थोड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। उदाहरण - Management in college libraries 233:8 यहाँ Management ऊर्जा श्रेणी है। सीसी में प्रत्येक मुख्य वर्ग की अनुसूचियों में ऊर्जा श्रेणी की अलग-अलग तालिकाएँ प्रस्तुत की गई हैं। इस श्रेणी का योजक चिन्ह कोलन (:) होता है।

4. पदार्थ श्रेणी (Matter category) किसी भी द्रव्य, पदार्थ, वस्तु, आदि की अभिव्यक्ति पदार्थ श्रेणी कहलाती है इसलिए इसे पहचानना कठिन नहीं होता है। यह श्रेणी सीसी के सभी मुख्य वर्गों में न होकर कुछ ही मुख्य वर्गों में विद्यमान है जैसे -Library science, Fine arts, Economics, Physics, Biology, Medicine, Useful arts आदि। इस श्रेणी का योजक चिन्ह सेमीकोलन (;) है। उदाहरण - Selection of books in local libraries 22;14:81 यहाँ Books पदार्थ श्रेणी है।

5. व्यक्तित्व श्रेणी (Personality category) किसी भी विषय में व्यक्तित्व श्रेणी को पहचानना ही सबसे कठिन कार्य है। इसलिए रंगनाथन ने इस श्रेणी को पहचानने हेतु अवशेष विधि (Residue Method) का प्रावधान किया है अर्थात् जो मूल श्रेणी न काल हो, न स्थान हो, न पदार्थ हो, न ऊर्जा हो, वह व्यक्तित्व मूलभूत श्रेणी होगा अर्थात् किसी विषय से काल, स्थान, पदार्थ एवं ऊर्जा पक्षों के अलग कर जो पक्ष शेष रहता है वह व्यक्तित्व श्रेणी होती है। उदाहरण - Classification of books in college libraries in UP during 1996.

अवशेष विधि के अनुसार पहचानने पर हमें निम्न प्रकार प्राप्त होता है-

During 1996	काल श्रेणी
In UP	स्थान श्रेणी
Books	पदार्थ श्रेणी
Classification	ऊर्जा श्रेणी

अब जो शेष बचा College libraries यही व्यक्ति श्रेणी है।

5.3 पक्ष विश्लेषण (Facet Analysis)

किसी विषय के जिन पहलुओं को पृथक् - पृथक् परिगणित किया जा सके तथा उन्हें पुनः संश्लेषित किया जा सके उन्हें उस विषय के 'पक्ष' कहते हैं। पक्ष (Facet) शब्द की अभिधारणा रंगनाथन ने प्रस्तुत की है। उनके अनुसार पक्ष का प्रयोग विषयों के विभाजन से आरम्भ होता है क्योंकि सामान्यतया ज्ञान जगत से विषय जगत तक के विभाजनों की एक समग्र इकाई के रूप में पहचान होती है। प्रत्येक मुख्य विषय को विभाजित करने के लिए जो आधार प्रयुक्त किए जाते हैं उसे 'अभिलक्षण' का नाम दिया जाता है तथा अभिलक्षणों की एक शृंखला के आधार पर जो विभाजन बनाए जाते हैं उन्हें 'पक्ष' कहते हैं।

ज्ञान जगत को मुख्य वर्गों में विभाजित करने के बाद प्रत्येक मुख्य वर्ग को पक्षों में एवं प्रत्येक पक्ष को एकलों में सहायक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। विषय विभाजन की आवश्कता को देखते हुए एकलों को उप-एकलों एवं उप-एकलों को उप-उप-एकलों में विभाजित किया जाता है।

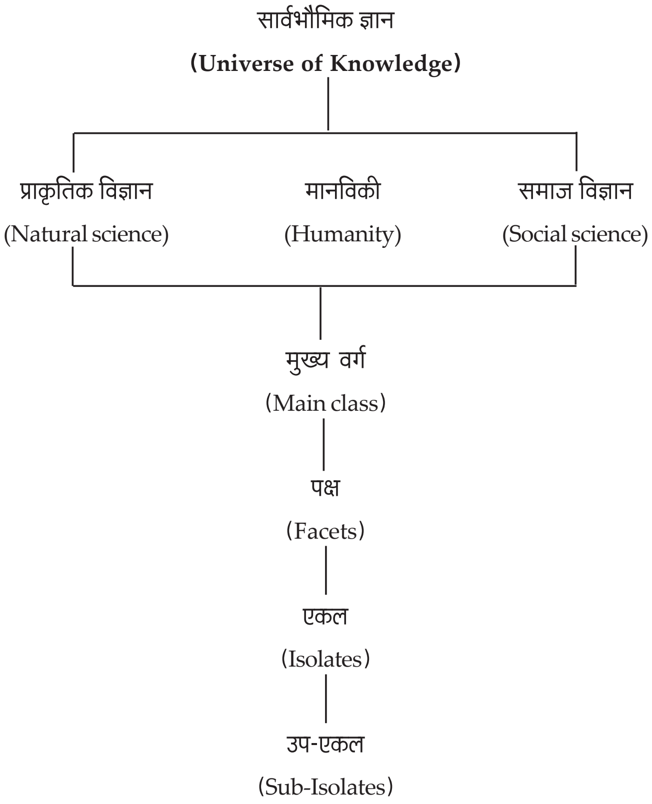

सार्वभौमिक ज्ञान (Universe of Knowledge)

बीते हुए समय (Past time), वर्तमान समय (Present time), एवं आने वाले समय (Future time), में विकसित एवं सम्भावित समस्त विषयों को सामूहिक रूप से ज्ञान-जगत् कहते हैं। ज्ञान-जगत असीमित एवं निरंतर वर्धनशील है।

मुख्य वर्ग (Main class) :

डॉ0 रंगनाथन ने 'प्रोलेगोमेना' में मुख्य वर्ग (Main class) को निम्नरूप से परिभाषाबद्ध किया है-

ज्ञान जगत के विषयों के वर्गीकरण में प्रथम पंक्ति-क्रम में अंकित वर्ग, मुख्य वर्ग (Main class) कहलाते हैं।''

प्रत्येक वर्गीकरण पद्धति निर्माता ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मुख्य वर्ग निर्मित किये हैं।

पक्ष (Facet) :

प्रत्येक मुख्य वर्ग के विषय की विशेषताओं के आधार पर विभाजन को ही 'पक्ष' कहते हैं। प्रत्येक मुख्य वर्ग में विषय के विस्तार के आधार पर पक्षों को निर्धारित कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप प्रत्येक विषय एवं मुख्य वर्ग के भिन्न प्रकार के पक्ष होते हैं जिनमें विषयों को विभाजित किया जाता है।

5.3.1 पक्ष विश्लेषण के द्वारा विषय विश्लेषण (Subject analysis by facet analysis)

पक्ष विश्लेषण पुस्तकालय वर्गीकरण के क्षेत्र में ज्ञान-जगत के विभाजन की सामान्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा विषय के किस भाग को इस पक्ष में व्यवस्थित किया जाय यह आसानी से ज्ञात हो जाता है। पक्ष विश्लेषण किसी मुख्य वर्ग या विषय के सभी पक्षों को निर्धारित करके तथा संख्या में उन्हें निश्चित अनुक्रम प्रदान करने की प्रक्रिया है।

पुस्तकालय वर्गीकरण के क्षेत्र में पक्ष-विश्लेषण की परिकल्पना में भारत में पुस्तकालय विज्ञान के जनक डॉ0 एस0 आर0 रंगनाथन का महत्वपूर्ण योगदान है।

पक्ष विश्लेषण की परिभाषा (Definition of facet analysis) :

पक्ष-विश्लेषण पद की व्याख्या तथा उसे परिभाषाबद्ध करना अत्यधिक कठिन है। पुस्तकालय विज्ञान वेत्ताओं ने 'पक्ष-विश्लेषण' को निम्न प्रकार से परिभाषाबद्ध किया है-

डॉ0 एस0 आर0 रंगनाथन (Dr. S. R. Ranganath) के अनुसार

''किसी मुख्य वर्ग को विभाजित करने वाली सम्भावी विशेषताओं की श्रृंखलाओं का उल्लेख करने वाली युक्ति को 'पक्ष-विश्लेषण' कहते हैं।''

डॉ0 रंगनाथन ने पक्ष - विश्लेषण को एक मानसिक प्रक्रिया माना है, जिसके आधार पर वर्गकार (Classfier) विषय में निहित विविध आधार पर अभिलक्षणों उस विषय में विभिन्न पहलुओं या पक्षों का निर्धारण करता है।

जे0 मिल्स (J. Mills) के अनुसार ''विषय विभाजन किसी अभिलक्षण के आधार पर किया जाता है। अभिलक्षण के प्रयोग से पक्ष की उत्पत्ति होती है, इसी को पक्ष-विश्लेषण कहते हैं।''

वी0 आई0 पामर और ए0 जे0 वेल्स (B.I. Plamer and A. J. Wells) के अनुसार- ''पक्ष-विश्लेषण का तात्पर्य किसी विषय का विश्लेषण पक्षों के रूप में करना

है, जो विषय के भिन्न अभिलक्षण के प्रयोग से उत्पन्न होते हैं।

चार्ल्स मेटकाफ (Charles Metcalf) के अनुसार ''वर्गीकरण के लिए आधार तैयार कर विषय क्षेत्र की खोज के अर्थ को पक्ष-विश्लेषण कहते हैं, चाहे वह परिगणनात्मक अथवा वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक वर्गीकरण पद्धति हो।''

5.3.2 कोलन क्लासीफिकेशन एवं पक्ष विश्लेषण (Colon Classification and Facet Analysis)

कोलन क्लासीफिकेशन पद्धति वैश्लेषी-संश्लेषणात्मक (Analytico-synthetic) वर्गीकरण पद्धति है। किसी भी वैश्लेषी संश्लेषणात्मक पद्धति में पक्ष-विश्लेषण की प्रक्रिया आवश्यक होती है। डॉ0 रंगनाथन ने विषय के विभाजन हेतु प्रत्येक मुख्य वर्ग का एक पक्ष-परिसूत्र (Facet Formula) दिया है। पक्ष-परिसूत्र के अनुसार ही हम उस विषय या आख्या (Title) की वर्गीकरण प्रक्रिया पूर्ण कर वर्ग संख्या निर्मित करते हैं।

उदाहरण -

1. Documentation of sound books in University libraries.

BC [P] ; [M] : [E]

234; 13 : 97

उपर्युक्त उदाहरण में आख्या को उसकी विशेषताओं के आधार पर विभिन्न पक्षों में विश्लेषित कर विभाजित किया गया है और पक्षों का अनुक्रम ग्रन्थालय विज्ञान के मुख्य वर्ग के परिसूत्र तथा पाँच मूलभूत श्रेणियों के अनुक्रम के अनुसार व्यवस्थित कर वर्ग संख्या निर्मित की गयी है। इसका पक्ष-विश्लेषण इस प्रकार है-

234; 13 : 97 वर्ग संख्या (Class Number)

2 Main class [BC]	-	Library Science
34 Personality [P]	-	University Library
; 12 Matter [M]	-	Sound books
: 97 Energy [E]	-	Documentation

पक्ष-विश्लेषण प्रक्रिया आधार में पाँच मूलभूत श्रेणियाँ (Five Fundamental Catagories) P M E S T हैं। डाँ0 रंगनाथन की मान्यता के अनुसार किसी विषय में अधिकतम पांच मूल श्रेणियाँ हो सकती है जिन्हें उन्होने पक्ष कहा है। कोलन वर्गीकरण

पद्धति का समग्र ढाँचा पक्ष एवं पक्ष-विश्लेषण पर आधारित है। प्रत्येक मुख्य वर्ग में वर्गीकरण को सुगम बनाने के लिए पक्ष-परिसूत्र दिया गया है।

5.3.3 ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन में पक्ष विश्लेषण (Facet Analysis in DDC)

ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन मूल रूप से एक परिगणनात्मक पद्धति है। इसमें सरल एवं मिश्रित सभी प्रकार के लिए तैयार वर्गांक प्रदान किए जाते हैं। तथापि प्रत्येक सूक्ष्म विषय अथवा सामान्य मिश्रित विषय का न तो पूर्वानुमान सम्भव है और न उसका परिगणन ही सम्भव है। अतः इस पद्धति में भी पक्ष विश्लेषण एवं संश्लेषण की प्रक्रिया का अनुसरण विभिन्न मुख्य वर्गों में वर्ग संख्याओं के निर्माण में किया गया है। पक्ष विश्लेषण एवं संश्लेषण की प्रक्रिया में डीडीसी के संस्करण 18 से निरंतर वृद्धि हो रही है 'जोड़ विधि इसका एक उदाहरण है जिसका प्रत्येक नए संस्करण में अधिक से अधिक प्रयोग किया जाने लगा है। जोड़ विधि (Add device) का प्रयोग डी0डी0सी0 में लगभग उसी प्रकार से किया जाता है। जैसे विषय विधि (Subject Device) का प्रयोग कोलन वर्गीकृत पद्धति में किया जाता है। कोलन वर्गीकरण में वर्गकार को विषय विधि प्रयोग करने की पूर्ण स्वायत्तता है जबकि डी0डी0सी0 में इसका प्रयोग निर्देश होने पर ही किया जाता है।

प्रायोगिक दृष्टिकोण से जोड़ विधि का प्रयोग करने के लिए वर्गकार को इसमें प्रयुक्त भाषा एवं शब्दों को स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है जैसे-

Add to base number ....the number following ..in....

जोड़ विधि के प्रयोग का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है

(i) आधार अंक (Base number) संस्करण 18 से डी0डी0सी0 पद्धति में वर्गकार के लिए एक महत्वपूर्ण सुविधा प्रदान कर दी गई है। जोड़ विधि के निर्देश में ही यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि किस वर्गांक के बाद अन्य स्थानों से अंकों को लाकर जोड़ा जा सकता है। जिस वर्गांक में अन्य अंक (जोड़ विधि से) जोड़े जाते हैं उसे आधार अंक (Base number) नाम दिया गया है। अर्थात् जहाँ भी जोड़ विधि का प्रयोग करने के निर्देश हैं। वह आधार अंक भी स्पष्ट रूप से दे दिया गया है जिससे वर्गकार को पूर्व संस्करणों में प्रयुक्त प्रक्रिया शून्य को हटाना या लगाना अथवा आधार अंक स्वयं निश्चित करने से मुक्ति मिल गयी है। वर्गकार के लिए यह अति आवश्यक है कि जोड़ विधि का प्रयोग करने से पूर्व सुनिश्चित कर ले कि निर्देश में आधार अंक क्या दिया गया है।

(ii) इसके बाद के अंक (Numbers Following)

निर्देश की भाषा में यह भी समझाना आवश्यक है आधार अंक में जोड़ने हेतु कौन से तथा कहाँ से अंक लाये जायेंगे। क्योंकि निर्देश में कभी सम्पूर्ण वर्गांक तथा कभी एक वर्गांक में से सीमित अंकों को जोड़ने की अनुमति होती है जैसे :

(अ) सम्पूर्ण वर्गांक जोड़ने की अनुमति : जब भी निर्देश आधार अंक के बाद सम्पूर्ण वर्गांक जोड़ने की अनुमति देता है तब आधार अंक के बाद पूरी अनुसूची में से किसी भी मुख्य वर्ग के किसी भी वर्गांक को उसी तरह जोड़ सकते हैं जैसे उस मुख्य वर्ग में वर्णित है। इसके लिए निर्देश की भाषा निम्नलिखित होती है-

Add to base number ......notation 001-999

उदाहरण -

(i) 343.078 Secondary industries and services

Add to base number 343.078 notation 001-999

आधार अंक	001-999 से अंकन जोड़िये
343.078	+ 623.5 = 343.0786235
(ii) 920.9	Person associated with other subjects Add to base number 920.9 notation 001-999
आधार अंक	001-999 से अंकन जोड़िये
920.0	+ 133.5 = 920.91335

(ब) सीमित अंकों को जोड़ने की अनुमति कभी निर्देश सीमित अंक जोड़ने की ही अनुमति देता है। क्योंकि उस आधार अंक के बाद जोड़ने के लिए किसी विशिष्ट मुख्य वर्ग के सीमित अंकों को ही आवश्यकता होती है। इस प्रकार के निर्देश में यह स्पष्ट रूप से बता दिया जाता है कि जिस मुख्य वर्ग से अंकों की आवश्यकता है उसमें से कौन से अंक प्रयोग होने और कौन से नहीं। इसके बाद के अंक (Numbers Following) के द्वारा इंगित किया जाता है। जैसे :

उदाहरण -

Title : Care and maintenance of horses

आख्या : घोड़ों का रख-रखाव और देख-रेख

636.1 Horses

Add to base number 636.10 the Numbers Following

636.0 in 636.01 - 636.08

638.083 Care and maintenance

उपर्युक्त वर्गांक के अन्तर्गत दिये गये निर्देश में दो बातें ध्यान देने योग्य हैः

आधार अंक (Base number) घोड़े का वर्गांक है 636.1 लेकिन आधार अंक 636.10 है अतः इसी के बाद अंक लाकर जोड़े जायेंगे।

इससे स्पष्ट है कि विषय के लिए वर्गांक में तथा उसके लिए आधार अंक जिसमें जोड़ विधि के द्वारा अंक जोड़े जा सकते हैं, में भिन्नता हो सकती है। अतः किसी भी विषय में जोड़े विधि का प्रयोग करने से पहले आधार अंक लिख लें।

जोड़ विधि (Add Device) के आधार पर अनुसूची में वर्णित दो विभिन्न विषयों के वर्गांकों को एक साथ जोड़ने के लिए दो प्रकार के निर्देश दिये गये हैं :

(i) Add 001-999 to bace number-001-999 में से कोई आवश्यक वर्गांक आधार अंक में जोड़िये।

इस निर्देश के अनुसार सम्पूर्ण अनुसूची में वर्णित 001-999 में से कोई भी वर्गांक प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे प्रलेख जिनके प्रारूप में एक मुख्य विषय में ऐसे अन्य विषयों का भी समावेश हो जिनके लिए अलग से अन्यत्र वर्गांक वर्णित है तब जोड़ विधि का यह निर्देश ऐसे प्रलेखों को वर्गीकृत करने में भी सहायक होते हैं। जैसेः

338.4	Secondary industries and services
.43	Prices
	Add to base number 338.43
	notation 001-999

यदि प्रलेख का विषय मोटर या कार के मूल्य से सम्बन्धित है तो कार का वर्गांक मुख्य वर्ग 620 से लाना होगा तभी इस प्रलेख का पूर्ण वर्गांक बन सकता है जैसेः

आधार अंक	001.999 से अंक
338-43	+ 629.2
वर्गांक	338.436292

025.46	Classification of specific .....
	Add to base number 025.46
	notation 001-999

यदि प्रलेख सामाजिक विज्ञान के वर्गीकरण से सम्बन्धित है तो सामाजिक विज्ञान का वर्गांक 300 आधार अंक 025.46 के बाद प्रयुक्त होगा जैसे :

आधार अंक	001.999 से अंक
025.46	+3 [00]
वर्गांक	025.463

वर्गकार को इस प्रकार के निर्देश के आधार पर वर्गांक बनाते समय यह ध्यान में रखना है कि यदि वर्गांक जोड़ा जा रहा है शून्य या शून्य पर समाप्त होता है तो उनका प्रयोग वर्गांक में नहीं किया जाता है क्योंकि उनका कार्य वर्गांक को तीन अंकों का बनाता है जैसे उपर्युक्त उदाहरण में 300 सामाजिक विज्ञान के लिए दो शून्यों को हटाने के बाद केवल वर्गांक 3 को आधार अंक 025.46 के बाद जोड़ा गया है।

डी0 डी0 सी0 में ज्ञान जगत को 0-9 वर्गों में विभाजित किया गया है। जब जोड़ विधि के लिए दिया गया निर्देश इन 10 मुख्य वर्गों मे से किसी एक मुख्य वर्ग का विभाजन का प्रयोग करने का निर्देश देता है तो वर्गकार को इसमें से वह अंक जो मुख्य वर्ग को इंगित करता है को छोड़कर बाकी अंक प्रयोग करने होंगे। जैसे :-

920	Biography (जीवनी)
925	Scientists
	Add to base number 925 the Numbers
	Following 5 in
	510 - 590 e.g. botanists 925.8

इस वर्गांक में वैज्ञानिकों की जीवनी का वर्गांक बनाने के लिए मुख्य वर्ग 500 में 510 से 590 उपविभाजनों का प्रयोग करने के निर्देश हैं। अर्थात् विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित वैज्ञानिकों की जीवनी इस निर्देश के आधार पर बनाई जा सकती है। लेकिन यहाँ अंक पाँच को छोड़कर क्योंकि यह प्रकृति विज्ञान को इंगित करता है।

926	Persons in technology
	Add to base number 926 the Number Following

6 in 610-690

यहाँ मुख्य वर्ग 600 के उपविभाजनों का प्रयोग किया जायेगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रकार के निर्देश के आधार पर जोड़ विधि से वर्गांक बनाने के लिए आधार अंक के बाद मुख्य वर्ग के लिए प्रयुक्त अंक को छोड़कर बाकी अंक प्रयोग किये जायेंगे।

एक विशिष्ट विषय के उपविभाजनों को जोड़िये जैसे

338.372	Product of fishing ....
	Add to base number 338.372 the number Following
	59 in 592-599

इस निर्देश के अनुसार 5 प्रकृति विज्ञान की एक शाखा 590 प्राणी विज्ञान के उपविभाजनों का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे :

अधार अंक	58 के बाद के अंक
338.372 +	[59] 3.5 = 388.37235
338.372 +	[59] 4.36 = 338.372436

इस प्रकार जोड़ विधि के द्वारा डी0डी0सी0 में किसी मुख्य वर्ग, उसके विभाग या उसके विभाजन, यहाँ तक कि एक सूक्ष्म उपविभाजन के अंकों को जोड़ने का निर्देश दिया जा सकता है। इसलिए वर्गकार को जोड़विधि के निर्देश के आधार पर वर्गांक बनाते समय मुख्यतः तीन बातों पर ध्यान देना होगा।

(i) आधार अंक क्या है?

(ii) जोड़ने का अंक कहाँ से लाना है?

(iii) उसमें से किस अंक का प्रयोग करना है और किस का नहीं?

जैसे :

आधार अंक	अंक कहाँ से लाना है	किस अंक का प्रयोग होगा और किसका नहीं
1. 334.68	620-690	[6] 36.2
2. 344.043	616-618	[61] 6.9362
3. 344.05	363.2-363.4	[363].37
4. 629.1331	629.1332-629.1333	[629.133]33

* [ ] में लिखे अंकों को वर्गांक बनाते समय छोड़ देते हैं।

वर्गांक

1. 344.68362

2. 344.04369362

3. 344.0537

4. 629.133133

सात सारणियाँ (Seven Tables)

डी0डी0सी0 के खण्ड 1 में दी गई सात सारणियाँ (7 Tables) के अंकों को जोड़ने की जिस विषय में आवश्यकता समझी जाती है उसके नीचे जोड़ विधि का निर्देश दे दिया गया है। निर्देश के अनुरूप ही वर्गकार अंकन का प्रयोग कर सकता है अर्थात् किस सारणी से कहाँ से कहाँ तक तथा कितना अंकन लाना है, आदि जैसे-

735	Sculpture from 1400
231-237	Periods
	Add to base number 735.23 the Numbers
	Following
	0904 in notation -09041-09049 from table 1

आधार अंक - 0904 के बाद के अंक (Table 1)

735.23 + [0904] 8

वर्गांक 735.238 = Sculpture upto 1989

इस निर्देश के अनुसार सारणी 1 में वर्णित-0904 के ही उपविभाजन प्रयोग किये जा सकते हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण सारणी 6 का है।

039 In other language

Add language notation 2-9 from

Table 6 to base number 039 (Edition 19)

[Add to base number 039 notation 7 - 9

From table 6 (Edition 20)

उपर्युक्त निर्देश में अंकनों को प्रयोग करने की परिधि भिन्न है। संस्करण 19 में 2 से 9 तक के अंकनों को प्रयोग करने का निर्देश है जबकि संस्करण 20 में इसे

घटाकर 7 से 9 कर दिया गया है। वस्तुस्थिति यह है कि संस्करण 20 में इस निर्देश को सही किया गया है क्योंकि 033-036 तक इन अंकनों के नीचे ही सारणी 6 से अंकनों को जोड़ के निर्देश हैं।

इससे स्पष्ट है कि विषय की आवश्यकता के अनुरूप ही सारणी तथा उसमें वर्णित अंकनों के प्रयोग के निर्देश दिये गये हैं और वर्गकार को उसका पालन करना आवश्यक है।

सारणी में जोड़ विधि

डी0डी0सी0 ने विभिन्न सारणियों में जोड़ विधि का प्रयोग दो प्रकार के अंकों को जोड़ने के लिए किया है।

(i) सारणी के अंकन के बाद अनुसूची के अंक को जोड़ने के लिए जैसे सारणी 1 में -015 के नीचे दिया गया निर्देश मुख्य वर्ग 5 से 510-590 के बाद जोड़ने का निर्देश दिया है।

(ii) एक सारणी के साथ दूसरी सारणी के अंकनों को जोड़ने का निर्देश जैसेः **सारणी 1 में ः** -023 में सारणी 2 का प्रयोग - 024 में सारणी 7 का प्रयोग आदि।

सारणी 2 में ः 174 में सारणी 5 का प्रयोग -175 में सारणी 6 का प्रयोग आदि।

विशिष्ट सारणी

डी0डी0सी0 में ऐसे भी विषय हैं जिनके लिए विशिष्ट सारणियाँ दी गई हैं। इन सारणियों में भी अंकों को विभाजित करने के लिए जोड़ विधि की सहायती ली गई है। जैसे 616-1-616.9 विशिष्ट बीमारियों के लिए दी गई सारणी में 01,06 तथा 07 को विभाजित करने के लिए जोड़ विधि का प्रयोग किया है।

इसका अर्थ यह है कि जोड़ विधि के द्वारा ही डी0डी0सी0 में खण्ड-1 की सारणियाँ (2-7) आवश्यकतानुसार अंकनों अथवा अनुसूची में वर्णित वर्गांकों का प्रयोग अन्य विषय अथवा सारणी में करती है।

इस प्रकार ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन में सारणियों एवं जोड़ विधि (Add device) के द्वारा पक्ष विश्लेषण तथा संश्लेषण की विधि को अपनाया गया है।

5.3.4 यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन एवं पक्ष विश्लेषण (UDC and Facet Analysis)

यूनीवर्सल डेमीमल क्लासीफिकेशन (यूडीसी) द्वारा ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन पद्धति की मूल रूपरेखा (मुख्य वर्ग तथा प्रमुख उपवर्गों) को अपनाया गया है। इस पद्धति को सार्वभौमिक बनाने के लिए इसमें आधुनिक वर्गीकरण सिद्धान्तों को अधिक महत्व दिया गया है, अतः यह पद्धति अधिक पक्षात्मक (more faceted) वर्गीकरण प्रणाली हो गई है। सहायक युक्तियों के द्वारा इस पद्धति को संश्लेषण क्षमता अथवा विषयों और अवधारणाओं के संयोग की दृष्टि से इसे अधिक सुदृढ़ बना दिया गया है।

पक्ष विश्लेषण, संश्लेषण के लिए इसमें अनेक सहायक अनुसूचियाँ (Auxiliary tables) एवं विभाजन की विधियों की व्यवस्था की गई है। सहायक अनुसूचियों में सामान्य सहायक (common auxiliaries) और योजक चिन्हों (Connecting symbols) को व्यवस्थित किया गया है।

यूडीसी में निम्नलिखित श्रेणियों की सर्वसामान्य सहायक विधियाँ (common auxiliaries) प्रस्तुत की गई हैं और प्रत्येक श्रेणी का अपना एक विशिष्ट अंकन है जिसके प्रयोग से किस मुख्य विषय के साथ कौन सी श्रेणी मिल रही है उसका ज्ञान हो जाता है।

♦ यूडीसी में धन (+) के चिन्हों का प्रयोग दो विभिन्न वर्गांकों को संयुक्त करने के लिए होता है। इसका प्रयोग दो से अधिक विषयों को भी अंकन के माध्यम से व्यक्त करने के लिए है।

  जैसे - 1 खगोल विद्या और भौतिकी (Astronomy and Physics) का वर्गांक होगा। 52 + 53

  2 खनिज और धातु शोधन का वर्गांक - 622 + 669

♦ स्ट्रोक का चिन्ह (/) अनुगामी अंकों को संयुक्त करने के लिए किया जाता है। जिसमें एक पूर्ण पृथक वर्गांक बन सके।

  जैसे-कार्यशाला अभ्यास (Work shop practice) वर्गांक 621.7/.9

  परिवहन अभियांत्रिकी (Transport Engineering) वर्गांक-629.1-2/-8

♦ विषयों में जहाँ सम्बन्ध का आभास होता है वहाँ कोलन (:) का प्रयोग किया जाता है जैसे-

  अर्थशास्त्रीय सांख्यिकी 33 : 31

  रसायनिक उद्योगों का प्रबंध 658 : 66

♦ भाषा की श्रेणी के सहायकों (Auxiliaries) का प्रयोग जिस भाषा में पुस्तक लिखी होती है उस भाषा को व्यक्त करने के लिए होता है। इसका चिन्ह = (Equal) है।

  जैसे - Civil Engineering written in German. 624 = 30

♦ प्रलेख के रूप (Form) जैसे - कोश, प्रतिवेदन, सामायिकी, सार संक्षेप आदि को दर्शाने के लिए अंकन (0) का प्रयोग किया जाता है-

  जैसे - Encyclopaedia of Engineering 62 (03)

  History of Physics 53 (09)

♦ किसी भी प्रलेख की विषय वस्तु का सम्बन्ध किस स्थान से है यह दर्शाने के लिए स्थान के लिए सहायक तालिका (1/9) का प्रयोग किया जाता है। यूडीसी में स्थान के लिए प्रयुक्त अंक को ब्रैकेट ( ) में रखा जाता है।

  जैसे - भारतीय रेलवे 385 (54)

  भारत का संविधान 342.4 (54)

♦ प्रजाति तथा राष्ट्रीयता की सहायक तालिकाओं का प्रयोग राष्ट्रीयता तथा विषय का प्रजातीय पक्ष (Ethnic aspect) दर्शाने के लिए किया जाता है। इसके लिए प्रयुक्त अंकन (=) ब्रेकेट में बराबर का चिन्ह है। भाषा के चिन्ह = को कोष्ठक () मे प्रयोग कर दर्शाया गया है कि सम्बन्धित प्रजाति द्वारा कौन सी भाषा बोली जाती है।

  जैसे - Roman people in the ancient civilization 008 (=1.37)

  Jews in Germany (430) (=924)

♦ काल के सभी पक्षों की अभिव्यक्ति के लिए उल्टे अर्ध विरामों "inverted commas" (" ") का प्रयोग किया गया है इस प्रकार वर्ष, माह तथा दिन को प्रस्तुत करने के लिए काल सहायकों का प्रयोग किया जाता है।

  जैसे - December 25, 1998 " 1998 . 12 . 25"

  अगस्त 15, 2010 " 2010 . 8 . 15"

इसके अतिरिक्त इस सहायक सारणी में + तथा / चिन्ह का प्रयोग भी किया जाता है।

  जैसे - " + " Chrisation Era

  "04/14" मध्यकालीन युग

◆ दृष्टिकोण (Point of view) सहायक तालिका का उपयोग एक ही दृष्टिकोण के प्रलेखों के समूहीकरण के लिए किया जाता है। किसी विषय के दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए बिन्दु और दो शून्य (.00) को प्रयोग करते हैं।

जैसे - Office management pointview of research 651.001.5

विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में प्रलेखों का अनुरक्षण 027.7.004.67

यू0डी0सी0 में विशिष्ट सहायक उपविभाजन का प्रयोग भी किया गया है जिसमें विषय का विस्तार कम हो जाता है। इसका प्रयोग सामान्यतः विज्ञान (science) और व्यवहारिक विज्ञानों में अधिक किया जाता है विशिष्ट सहायकों के लिए तीन प्रकार का अंकन प्रयोग में आता है।

रेखिका - (Hyphen), बिन्दु और शून्य (. और 0) तथा एपास्ट्राफी '(Apostrophe)।

उदाहरण -

Air cleaning filters	621 - 73
अंग्रेजी नाटक	820.2
वस्तु सौन्दर्य	72.01
Sodium - Halogens compounds	546.33' 12

इस प्रकार यूडीसी में पक्ष विश्लेषण और संश्लेषण का गुण सहायक सारणियों के उप विभाजनों से उत्पन्न हुआ है।

यूडीसी के सामान्य सहायक उप विभाजनों तथा विशिष्ट सहायक उप विभाजनों को विषयों को आवश्यकतानुसार जोड़कर वर्गांक बनाया जा सकता है तथा विशिष्ट संकेतकों के प्रावधान के फलस्वरूप इनके क्रम को भी विषयवस्तु के अनुरूप निश्चित किया जा सकता है।

5.4 पक्ष अनुक्रम (Facet Sequence)

अब तक के अध्ययन में हमने कोलन, डूयूवी डेसीमल और यूनीवर्सल डेसीमल वर्गीकरण पद्धतियों में विभिन्न विषयों का उनके पक्षों में विश्लेषण कर विश्लेषण की प्रक्रिया को समझाने का प्रयास किया है। यह भी बताया है कि पक्ष विश्लेषण का उद्देश्य विभिन्न पक्षों को एक वांछित क्रम में संश्लेषित करना भी होता है, जिससे यह क्रम ग्रन्थों के भंडारण एवं आवश्यकतानुसार उनकी पुनर्प्राप्ति के लिए सहायक सिद्ध हो सके। सामान्यतः पक्ष विश्लेषण एवं पक्ष संश्लेषण एक-दूसरे के पूरक हैं और दोनों ही एक-दूसरे को सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार ज्ञान जगत के सभी विषयों एवं यौगिक विषयों (Compound Subjects) में निहित विभिन्न पक्षों का अभिज्ञान करने के पश्चात् आगामी प्रमुख कार्य इन पक्षों को सहायक अनुक्रम (Helpful Sequence) में व्यवस्थित करना होता है। पक्ष अनुक्रम के द्वारा विभिन्न पक्षों का एक ऐसा अनुक्रम स्थापित किया जाता है जो ग्रन्थों के संग्रहण एवं उनकी पुर्नप्राप्ति के लिए सहायक सिद्ध हो सके।

5.4.1 कोलन क्लासीफिकेशन में पक्ष अनुक्रम (Facet Sequence in Colon Classification)

कोलन वर्गीकरण पद्धति में जब पाँच मूलभूत श्रेणियों के अनुसार विषयों के पक्षों का निर्धारण कर लिया जाता है तो उनको एक सहायक अनुक्रम में व्यवस्थित करना होता है। उन्हें किस प्रकार के क्रमबद्ध एवं उपयुक्त विधि से व्यवस्थित करना चाहिए उसके लिए डॉ0 रंगनाथन ने पाँच अभिधारणाओं का प्रतिपादन किया है। ये अभिधारणाएँ निम्नांकित है -

◆ **प्रथम पक्ष की अभिधारणा (Postulate of first Facet)**

डॉ0 रंगनाथन ने अपने ग्रन्थ 'प्रोलेगोमना टू लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन' (Prolegomena to library classification) में प्रथम पक्ष की अभिधारणा के सन्दर्भ में लिखा है कि -

''एक यौगिक विषय मे मूलभूत पक्ष को प्रथम पक्ष होना चाहिए।'' (In a compound subject, the basic facet should be the first facet)

अर्थात् एक यौगिक विषय के विभिन्न पक्षों में से प्रथम पक्ष किसे माना जाय अर्थात् एक यौगिक विषय इसका निर्धारण करना ही प्रथम पक्ष की अभिधारणा कहलाता है। इस अभिधारणा के अनुसार यौगिक विषय के मूल पक्ष (Basic facet) को प्रथम पक्ष के रूप में व्यवस्थित करना चाहिए क्योंकि कोई भी एकल पक्ष बिना मूल के साथ जुड़े किसी विषय का वर्गांक निर्मित नहीं करता है। सहायक अनुक्रम की अभिधारणा के अनुसार एक मूल पक्ष के सभी विषयों को एक साथ एक स्थान पर व्यवस्थित होना चाहिए तथा मूल पक्ष को प्रथम स्थान पर व्यवस्थित करना चाहिए।

(ii) मूर्तता की अभिधारणा (Postulate of concretness) - मूर्तता ह्रास (Decreasing concretness) की अभिधारणा के अनुसार उनका अनुक्रम पाँच मूलभूत श्रेणियों PMEST के रूप में होगा। अर्थात् सर्वाधिक मूर्त (Concret) पक्ष को सबसे पहले और सर्वाधिक अमूर्त (Abstract) पक्ष को सभी पक्षों के बाद रखना चाहिए। पाँच मूलभूत श्रेणियों (Five Fundamental Categories) में व्यक्तित्व पक्ष [P] सभी पक्षों

से अधिक मूर्त है तथा काल पक्ष [T] सबसे अधिक अमूर्त पक्ष है। उक्त अभिधारणा के अनुसार यौगिक विषय में सन्निहित पक्षों का व्यवस्थापन [P] [M] {E]][S] [T] क्रम में किया जाता है।

(iii) आवर्तन में पक्ष-अनुक्रम की अभिधारणा (Postulate of facet sequence within a Round) किसी भी यौगिक विषय में पाँच मूलभूत श्रेणियों के व्यक्तित्व (Personality), पदार्थ (Matter), ऊर्जा (Energy), पक्ष में किसी भी पक्ष की आवृति आवर्तन पक्ष (Round of facet) में होती है तो इन पक्षों के आवर्तनों का अनुक्रम क्रमशः व्यक्तित्व पक्ष, पदार्थ पक्ष, एवं ऊर्जा पक्ष के रूप में होगा।

(iv) अंतिम आवर्तन में पक्ष-अनुक्रम की अभिधारणा (Postulate of facet sequence within the last Round) किसी भी यौगिक विषय में पाँच मूलभूत श्रेणियों के ऊर्जा पक्ष (E) के अलावा अन्य किसी पक्ष के अन्तिम आवर्तन (Last round) में किसी भी पक्ष का अनुक्रम क्रमशः व्यक्तित्व पक्ष, पदार्थ पक्ष, देश पक्ष एवं काल पक्ष के रूप में होगा।

(v) स्तर समूहों की अभिधारणा (Postulate of a level claster) : प्रोलेगोमेना के अनुसार -

''एक संयुक्त विषय में प्रयुक्त किसी मूलभूत पक्ष के एक आर्वतन के सभी स्तरों को संगठित रूप में रखना चाहिए।''

अर्थात् एक मूलभूत श्रेणी के आवर्तन के सभी स्तरों का प्रयोग होने के बाद ही दूसरी मूलभूत श्रेणी के स्तरों का क्रमानुसार प्रयोग करना चाहिए।

पक्ष - अनुक्रम के सिद्धान्त (Principle of facet sequence) : डॉ0 रंगनाथन ने पाँच मूलभूत श्रेणियों के किसी भी श्रेणी के अन्तर्गत प्रयोग होने वाले एक से अधिक एकल विचारों (Isolate ideas) को सहायक अनुक्रम प्रदान करने के लिए कुछ सिद्धान्तों की संरचना की है जो वर्गीकरण को वर्गांक निर्मित करने में आगत समस्याओं का समाधान करने में मार्गदर्शन देने में सहायक का कार्य करते हैं। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार के हैं-

(1) भित्ति चित्र सिद्धान्त (Wall picture principle)

(2) समष्टि अंग सिद्धान्त (Whole organ principle)

(2.1) समष्टि अंक सिद्धान्त बनाम भित्ति चित्र सिद्धान्त (Whole organ priciple vesrus wall picture principle)

(3) गाय-बछड़ा सिद्धान्त (Cow-calf principle)

(4) प्रभावित-कार्यशील-कर्ता-उपकरण सिद्धान्त (Actand-action-actor-tool principle)

(i) भित्ति चित्र सिद्धान्त (Wall picture principle) : डॉ0 रंगनाथन ने सन् 1962 में एक मूलभूत श्रेणी से सम्बन्धित एकलों को सुनिश्चित अनुक्रम करने के लिए 'भित्ति चित्र सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी विषय के दो पक्ष 'अ' एवं 'ब' में दोनों की क्रियाशीलता के सन्दर्भ में इस प्रकार का सम्बन्ध हो कि 'ब' पक्ष 'अ' पक्ष के अभाव में क्रियाशील न होता हो, उस स्थिति में विषय 'अ' पक्ष को 'ब' पक्ष के पूर्व रखना चाहिए। जैसे कि किसी भी चित्र को टांगने के लिए दीवाल (भित्ति) का होना आवश्यक है उसी प्रकार उस पक्ष के क्रम को प्राथमिकता के आधार पर व्यवस्थित करना चाहिए जिस पक्ष पर दूसरा पक्ष निर्भर होता है।

कोलन वर्गीकरण पद्धति से इस सिद्धान्त का प्रयोग मुख्य वर्गों में किसी विषय के एक ही पक्ष के दो एकलों को अनुक्रम प्रदान करने के लिए किया गया है।

उदाहरण के लिए मुख्य वर्ग L (Medicine), J (Agriculture), KX (Animal Husbandary), Y (Sociology) आदि के ऊर्जा पक्ष [E] के दो आवर्तनों (Rounds) को सहायक अनुक्रम इसी सिद्धान्त पर दिया गया है यथा -

	[BC] [E] : [2 E]
Treatement of disease	L : 4 : 6

उक्त उदाहरण में मुख्य वर्ग L Medicine के ऊर्जा पक्ष [E] का आवर्तन के रूप में प्रयोग हुआ है जिसमें Treatment (चिकित्सा) को [2 E] पक्ष में तथा (Disease) (बीमारी) को [E] पक्ष में रखा गया है क्योंकि चिकित्सा (Treatment) की परिकल्पना बीमारी (Disease) के बिना सम्भव नहीं है।

(2) समष्टि अंग का सिद्धान्त (Whole organ principle)

उपर्युक्त सिद्धान्त में समष्टि से तात्पर्य सम्पूर्ण सत्ता एवं अंगों एवं विभिन्न विभागों से है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी विषय के 'ब' पक्ष का प्रयोग उस विषय के 'अ' पक्ष के अंग (Organ) के रूप में हुआ है, उस स्थिति में विषय के 'अ' पक्ष को विषय के 'ब' पक्ष से पूर्व व्यवस्थित करना चाहिए। अर्थात् समष्टि को व्यक्त करने वाले एकलों के 'अंग' को व्यक्त करने वाले एकल पक्षों से पूर्व रखना चाहिए। क्योंकि समष्टि के बिना अंगों की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

कोलन वर्गीकरण पद्धति में मुख्य वर्गों में एकल व्यवस्थापन इसी सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। मुख्य वर्ग K (Zoology), J (Agriculture), I (Botany), KX (Animal husbandry) वनस्पितियों एवं मानव / पशु / पक्षियों के अंगों को

व्यक्तित्व पक्ष [P] के द्वितीय स्तर [P 2] के रूप में व्यवस्थित किया गया है। यथा -

Eyes of Birds	K 96, 185
President of India	V 44, 1
Stem of sugercane	J 311, 4

उपर्युक्त उदाहरणों में Eyes, President, Stem आदि अंगों के 'ब' पक्ष के रूप में, समष्टि (Whole) के रूप में (Birds, india, sugercane) 'अ' पक्ष के बाद व्यवस्थित किया गया है।

(2.1) समष्टि अंग सिद्धान्त बनाम भित्ति चित्र सिद्धान्त (Whole organ principle versus wall picture principle) - समष्टि अंग सिद्धान्त, भित्ति चित्र सिद्धान्त का ही उप-सिद्धान्त है, क्योंकि 'समष्टि अंग सिद्धान्त' के आधार पर प्राप्त अनुक्रम को 'भित्ति चित्र सिद्धान्त' के आधार पर भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः इन दोनों सिद्धान्तों में भिन्नता करना कठिन है। भित्ति चित्र सिद्धान्त का प्रयोग ऊर्जा पक्ष के [E] एवं [2 E] के क्रमशः आवृत्ति पर दोनों पक्षों के अनुक्रम को निर्धारित करने के लिए किया जाता है, जबकि समष्टि अंग सिद्धान्त का प्रयोग उसी स्थिति में करना चाहिए जहाँ सम्बन्ध समष्टि अंग के रूप में हो।

यथा -

Indian Parliament	V44,3 (Principle of whole organ)
Treatment of eye inflammation	L185 : 415 : 6 (Wall-picture principle)

(3) गाय-बछड़ा सिद्धान्त (Cow-Calf principle)

इस सिद्धान्त के अनुसार दूध देने वाली गाय जिसका बछड़ा दुधमुंहा हो, यदि उसे बेचा जाता है तो खरीदार का उस बछड़े पर अधिकार हो जाता है। अर्थात् दुधमुंहे बछड़े को गाय के विक्रय के समय गाय से पृथक नहीं किया जा सकता उस प्रकार यदि एक ही विषय के 'अ' एवं 'ब' दो पक्ष इस प्रकार सम्बद्ध है कि 'अ' पक्ष को 'ब' पक्ष से तथा 'ब' पक्ष को 'अ' पक्ष से पृथक किया जाना सम्भव न हो तो इस प्रकार एक ही विषय के दोनों पक्षों को एक साथ रखना चाहिए। यथा -

Transmission of electricity D 66,2

उपर्युक्त उदाहरण में Transmission को Electricity से पृथक नहीं किया जा सकता।

(4) प्रभावित कार्यशील कर्त्ता उपकरण सिद्धान्त (Actand-action-Actor-Tool principle)

इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि जब किसी विषय में 'ब' पक्ष अपनी उपादेयता 'अ' पक्ष पर, पक्ष 'स' के सहयोग से पक्ष 'द' के साथ प्रदर्शित करता है, उस स्थिति में इन चारों पक्षों का अनुक्रम क्रमशः अ, ब, स, द होना चाहिए। अर्थात् प्रभावित होने वाला पक्ष सर्वप्रथम, कार्यशीलता वाला द्वितीय पक्ष, कार्य करने वाला तृतीय पक्ष तथा उपकरण (Tool) चतुर्थ पक्ष होगा।

यथा - Machine spinning of cotton by women

इसमें उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर पक्षों का अनुक्रम क्रमशः Cotton (Actand), Spinning (Action), Women (Actor), Machine (Tool) होगा।

पक्ष विश्लेषण एवं अनुक्रम निर्धारण से सम्बन्धित कुछ उदाहरण

यहाँ प्रत्येक आख्या के पक्षों का विश्लेषण करके विषयवस्तु का निरूपण करने वाले पदों को सुनिश्चित किया गया है, तत्पश्चात् इन पदों को उपयुक्त अभिधारणाओं के अनुसार निर्धारित अनुक्रम में व्यवस्थित किया गया है।

उदाहरण -1

कामायनी लेखक जयशंकर प्रसाद (जन्मं 1868, प्रथम कृति)

साहित्य (Literature), हिन्दी (Hindi) पद्य (Poetry),

जय शंकर प्रसाद, कामायनी,

साहित्य (Literature)	मूल विषय	(BS)	0
हिन्दी (Hindi)	भाषा	[P]	152
पद्य (Poetry)	रूप	[P2]	1
जय शंकर प्रसाद	लेखक	[P3]	M68
कामायनी	कृति संख्या	[P4]	11
अनुक्रम- 0 [P],	[P2] [P3],	[P4]	
0152	1M68, 11		

इसी प्रकार - (2) Oliver twist by Charler Dickens
(Born 1812, his 15th work)
0111, 3M12, 27

साहित्य (Literature)	मूल विषय	(BS)	0

अंग्रेजी (English)	भाषा (Language)	[P]	111
पद्य (Function)	रूप (Form)	[P2]	3
Charles dickens	लेखक (Author)	[P3]	M12
Oliver Twist	कृति संख्या	[P4]	27

(3) Britist law of partnership

कानून (Law)	मूल विषय	(BS)	Z
ब्रिटिश (British)	[P]	56	
भागीदारी (Partnership)	[P2]	315	

परिसूत्र - Z [P], [P2]

Z 56, 315

5.4.2 इयूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन में पक्ष अनुक्रम (Facet Sequence in DDC)

इयूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन पद्धति की अनुसूचियों में यौगिक विषयों के लिए किसी भी पक्ष अनुक्रम का विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। यद्यपि इसमें पक्ष विश्लेषण के सिद्धान्त का अप्रत्यक्ष रूप से प्रयोग किया गया है, किन्तु ग्रन्थों का वर्गीकरण करने के लिए सभी अनुसूचियों में सब जगह विस्तृत नियमों का उल्लेख अवश्य किया गया है, तथा इन नियमों का अनुपालन करते समय पक्ष विश्लेषण एवं संश्लेषण का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। आइये इस प्रक्रिया का अध्ययन करें।

कृषि एवं सम्बन्धित प्रौद्योगिकी को सर्वप्रथम सफल उत्पादन के आधार पर, तत्पश्चात् पौध क्षति, बीमारियों, पीड़क जन्तुओं के आधार पर एवं इसके बाद निम्नांकित विधि से प्रत्येक फसल के अनुसार विभाजित किया गया है-

630	Agriculture and related technologies	(कृषि एवं सम्बन्धित प्रौद्योगिकी)
631	Crops and their production	(फसल उत्पादन)
632	Plant injuries, diseases, pests	(पौध क्षति, बीमारियाँ, पीड़क जन्तु)
633	Field Crops	(खेत की फसल)
634	Orchards, fruits, forestry	(फलोद्यान, फल, वानिकी)
635	Garden crops	(उद्यान फसल)

अब "Harvesting of Peaches" (आडू की फसल उगाना) विषय से संबन्धित प्रलेख को या तो Harvesting (फसल उगाना) को वरीयता देकर 631.55 के अन्तर्गत या Peaches को वरीयता देकर 634.25 के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। किन्तु प्रलेख के विशिष्ट विषय पर विचार करने पर दोनों पक्षों-फसल विशेष एवं फसल उगाना, का संयोजन आवश्यक हो जाता है। 634.25 के अन्तर्गत उल्लिखित नियम अर्थात् 633.635 के अन्तर्गत उल्लिखित निर्देश के अनुसार जोड़े) में यह स्पष्ट रूप से सूचित किया गया है कि 631 के अन्तर्गत (फसल उगाना) को व्यक्त करने वाले उप-विभाजन पाँच को निकाल कर फिर उसे 634.25 के साथ जोड़कर दोनों पक्षों का संयोजन किया जा सकता है। इन दोनों पक्षों को संयोजन के फलस्वरूप Harvesting of Peaches विषय को व्यक्त करने वाली वर्ग संख्या 634.255 प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार अनुसूचियों में सब जगह विभिन्न पक्षों के योजक चिन्ह के बिना ही सीधा जोड़ने अथवा शून्य (0) योजक चिन्ह के साथ जोड़ने के नियमों का उल्लेख है।

5.4.3 यूनीवर्सल डेसीमल क्लासीफिकेशन में पक्ष अनुक्रम (Facet Sequence in UDC)

यू0 डी0सी0 में अनेक पक्षात्मक विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसमें प्रयुक्त कुछ संकेतकों के आधार पर विचार तत्व के पक्षों के अनुरूप पक्ष अनुक्रम बनाया जा सकता है। सामान्य एवं विशिष्ट सहायकों का अपने-अपने विशिष्ट पक्ष संकेतकों (योजक चिन्हों) के साथ प्रयोग करके, जहाँ कहीं भी आवश्यक हो, पक्ष संश्लेषण की प्रक्रिया को अपनाने का पूर्ण अवसर मिलता है।

विशेष रूप से सम्बन्ध सूचक चिन्ह कोलन (:) दीर्घ कोष्ठक [ ] एवं दोहरे कोलन (: :) की सहायता से पक्षों को जोड़ना सरल हो गया है। उदाहरणार्थ, Virus diseases of indoor plants (अंतरंग पौधों की वायरस जन्य बीमारियाँ) विषय से सम्बन्धित प्रलेखों का वर्गीकरण करने के लिए अनुसूची में Virus diseases (वायरस जन्य बीमारियाँ) एवं (अंतर्द्रार पौधों) के लिए अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग वर्ग संख्याओं अर्थात् 635.91 एवं 632.38 का उल्लेख है। इन दोनों वर्ग संख्याओं को सम्बन्ध सूचक चिन्ह कोलन (:) की सहायता से एक साथ जोड़कर वर्ग संख्या 635.91 : 632.38 प्राप्त की जा सकती है। इसके विपरीत ''वायरस जन्य बीमारियाँ'' को प्रथम पक्ष एवं ''अंतरंग पौधों'' को द्वितीय पक्ष बनाकर यदि कोई पुस्तकालय इस क्रम को वरीयता प्रदान करना चाहे तो, प्रतिलोम क्रम में वर्ग संख्या 632.38 : 635.91 प्राप्त की जा सकती है। किन्तु संयोजन के लिए दोहरा कोलन (: :) का उपयोग किया जाता है तो प्रतिलोम क्रम विधि को नहीं अपनाया जा सकता।

विभिन्न पक्षों के किसी विशिष्ट वरीय (अधिमान्य) क्रम को सूचित करने के लिए पक्ष संयोजक दीर्घ कोष्ठक [ ] का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ - Indoor animones (एक प्रकार का घर में उगाया जाने वाले पौधा है) को 635.91 : 582.675.1 वर्ग संख्या प्रदान की जाती है (582.675.1 को व्यक्त करता है), किन्तु यदि कोई पुस्तकालय सामान्य शीर्षक Horticulature (उद्यान विज्ञान) के अन्तर्गत किसी विशिष्ट पौधे से सम्बद्ध प्रत्येक पक्ष को एक साथ एकत्र करना चाहें तो वहाँ पौधा विशेष (यहाँ पर animones) प्रधान पक्ष बनाकर गौण पक्ष ('Indoor') के साथ उपर्युक्त वर्ग संख्या को 635.91 [582.675.111] के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त को पक्ष उद्धरण के लचीलापन (Flexibility in facet citation) के रूप में जाना जाता है। इसे यू0डी0सी0 की क्षमता के रूप में स्वीकार किया जाता है, किन्तु यदि यू0डी0सी0 का उपयोग करने वाले पुस्तकालय अलग-अलग पक्ष अनुक्रम को प्रयोग में लाना पसंद करें तो, इसे यू0डी0सी0 की अवांछनीय विशेषता भी समझा जा सकता है।

विशिष्ट सहायक भी पक्ष संयोजन का अवसर प्रदान करते हैं। यू0डी0सी0 में तीन प्रकार के विशिष्ट सहायक हैं, जो हाइफन (-) शून्य (.0) तथा एपोस्ट्रोक (') पक्ष संकेतकों को प्रयोग में लाते हैं। हाइफन एवं शून्य का किसी निश्चित मूल वर्ग में उस वर्ग के उपयुक्त किसी विशिष्ट पक्ष को प्रवर्तित करने के लिए उपयोग किया जाता है।

उदाहरण - 62 - 31	Reciprocating valve gear parts
820 - 31	English novels
621.3.006	Electrical switch mechanism
66.066	Clarification, etc.
	Chemical Engineering

वर्तमान में, रसायन शास्त्र एवं इससे मिलते - जुलते विषयों में 'एपोस्ट्राफि' का उपयोग कुछ भिन्न अभिप्राय से किया जाता है। इन विषयों में इसका उपयोग पदार्थ तत्वों के संश्लेषण को सूचित करने के लिए तथा इसके अलावा संकेत चिन्ह के रूप में भी किया जाता है।

उदाहरण - 546.33	Sodium
546.13	Chlorine

546.33'13	Sodium Chloride

इस प्रकार यू0डी0सी0 की सामान्य सहायक उपविभाजनों तथा विशिष्ट सहायक उपविभाजनों को वर्गाकार विषयों की आवश्यकतानुसार जोड़कर वर्गांक बना सकते हैं। इनके लिए विशिष्ट संकेतकों के प्रावधान के फलस्वरूप इनके क्रम को भी विषयवस्तु के अनुरूप निश्चित किया जा सकता है।

5.5 सारांश (Summary)

डॉ0 रंगनाथन ने मूलभूत श्रेणियों का अवधारणा का विवरण 1934 में अपनी एक पुस्तक में प्रकाशित किया। इसके पश्चात् श्रेणियों के आधार पर विषय के वर्गीकरण का प्रचलन आरम्भ हुआ। विषयों के विभाजन की विशेषताएँ असंख्य हो सकती है, लेकिन उनको पाँच मूलभूत श्रेणियों में ही रखा जा सकता है। प्रत्येक श्रेणी की अभिव्यक्ति एक ही पक्ष द्वारा की जा सकती है और सभी विषयों के विस्तार का मूल आधार पाँच पक्ष अथवा पाँच श्रेणियाँ ही हैं। कोलन वर्गीकरण की सम्पूर्ण अनुसूची के निर्माण का आधार ये पाँच मूलभूत श्रेणियाँ-व्यक्तिगत (Personality), पदार्थ (Matter), ऊर्जा (Energy), देश (Space) और काल (Time) ही हैं जिन्हें संक्षेप में " P M E S T" कहा जाता है।

वर्गीकरण के क्षेत्र में पक्ष विश्लेषण की अभिधारणा भी रंगनाथन की देन है। पक्ष विश्लेषण वस्तुतः ज्ञान जगत के विचारों को व्यवस्थित करने की एक प्रक्रिया है यह एक ऐसी तकनीक है, जिसका प्रयोग एक मुख्य वर्ग में विद्यमान पक्षों को पहचानने के लिए किया जाता है।

पक्ष अनुक्रम किसी यौगिक विषय के विभिन्न पक्षों तथा उनके आवर्तनों को सहायक अनुक्रम में व्यवस्थित करने की विधि है। रंगनाथन ने पक्ष अनुक्रम के चार सिद्धान्त-भित्ति चित्र सिद्धान्त, समष्टि अंग सिद्धान्त, गाय बछड़ा सिद्धान्त और प्रभावित-कार्यशील-कर्ता-उपकरण सिद्धान्त प्रतिपादित किये। ये सिद्धान्त एक यौगिक विषय में प्रयुक्त पक्षों के अनुक्रम को निश्चित करने में मार्ग दर्शन प्रदान करते हैं।

5.6 सम्बन्धित प्रश्न : बहुविकल्पीय लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय

5.6.1 बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. निम्नलिखित में से किस मूलभूत श्रेणी को पहचानना सबसे कठिन है-

(1) ऊर्जा (Energy) (2) पदार्थ (Matter)

(3) व्यक्तित्व (Personality) (4) स्थान (Space)

2. सी0सी0 में व्यक्तित्व पक्ष की पहचान सर्वाधिक सरल है-

(1) सत्य (2) असत्य

3. सी0सी0 में साहित्य (Literature) मुख्य वर्ग का व्यक्तित्व पक्ष [P2] क्या प्रदर्शित करता है-

(1) लेखक (2) रूप

(3) भाषा (4) कृति संख्या

4. निम्नलिखित में से किस चिन्ह का कोलन क्लासीफिकेशन और ड्यूवी डेसीमल क्लासीफिकेशन में समान रूप से प्रयोग किया जाता है -

(1) सेमीकोलन (;) (2) कोमा (,)

(3) इनवर्टेड कोमा (') (4) डोट (.)

5. प्रायोगिक वर्गीकरण को विधि सम्मत कौन बनाता है-

(1) पक्ष विश्लेषण (2) पक्ष अनुक्रम

(3) वर्गीकरण के सूत्र (4) अभिधारणात्मक उपागम

6. वर्गीकरण में पाँच मूलभूत श्रेणियों की अवधारणा किसने प्रस्तुत की -

(1) मेल्विल ड्यूवी (2) कॉन्ट

(3) बेकन (4) रंगनाथन

7. पक्ष अनुक्रम में सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किये -

(1) जे0 डी0 ब्राउन (2) सी0 ए0 कटर

(3) एस0 रंगनाथन (4) मेल्विल ड्यूवी

5.6.2 लघुउत्तरीय प्रश्न -

1. पाँच मूलभूत श्रेणियों की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. पक्ष विश्लेषण पर टिप्पणी लिखिए।
3. पक्ष अनुक्रम की अभिधारणा की चर्चा कीजिए।

5.6.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. वर्गीकरण के सन्दर्भ में श्रेणी का क्या अभिप्राय है? रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित पाँच मूलभूत श्रेणियों की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

2. पक्ष का अर्थ समझते हुए पक्ष-अनुक्रम के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

5.7 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (3), 2. (2), 3. (1), 4. (4), 5. (2), 6. (4) 7. (3)

5.8 संदर्भ एवं इतर पाठ्य सामग्री

1. चंपावत, जी0 एस0 (1989) द्विबिन्दु वर्गीकरण प्रायोगिक अध्ययन, जयपुर : आर0 बी0 एस0 ए0 पब्लिशर्स।
2. ध्यानी, पुष्पा (1999), पुस्तकालय वर्गीकरण, नई दिल्ली : एस0 एस0 पब्लिकेशन्स।
3. शर्मा, पाण्डेय एस0 के0 (1996), सरलीकृत पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त, आगराः वाई0 के0 पब्लिशर्स।
4. शर्मा बी0डी0 (1998), सैद्धान्तिक ग्रन्थालय वर्गीकरण, आगरा : वाई0 के0 पब्लिशर्स।
5. त्रिपाठी, एस0 एम0 (1997). आधुनिक ग्रन्थालय वर्गीकरण : सैद्धान्तिक विवेचन. आगरा : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी।
6. Krishna Kumar (1996). Theory of classification. New Delhi : Vikas Publishing House.
7. Ranganathan, S. R. (1931). Five laws of library science. Madras : Madras library Associartion.
8. Ranganathan, S. R. (1989). Prolegomena to library classification. 3rd ed. Bangalore : Sardar Ranganathan Endowent for Library. Science.

इकाई - 6 : विषय जगत की संरचना एवं विषय निर्माण की विधियाँ

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 ज्ञान जगत एवं विषय जगत

6.2.1 ज्ञान जगत एवं विषय जगत में भिन्नता

6.3 विषय जगत की संरचना एवं विभाजन

6.4 विषय जगत की विशेषताएं

6.5 विषय निर्माण की विधियां

6.6 सारांश

6.7 अभ्यास-प्रश्न - बहुविकल्पीय, लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय

6.8 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

6.9 संदर्भ एवं इतर पाठ्यसामग्री

6.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में ज्ञान जगत एवं विषय जगत का विवरण प्रस्तुत करते हुए विषय जगत की संरचना एवं विभाजन की जानकारी देने का प्रयास किया गया है साथ ही साथ विषय जगत की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। पुस्तकालय विज्ञान में ज्ञान जगत की संरचना, विषय जगत के विकास और पुस्तकालय तकनीक एवं वर्गीकरण पद्धतियों आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से विषय जगत के अर्न्तगत विषय निर्माण की विधियों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार आपको विषय जगत की संरचना, विषय जगत के विकास और विषय निर्माण की विधियों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

6.1 उद्देश्य (Objectives)

विषय जगत की संरचना एवं विषय निर्माण की विधियों से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन से आप -

- ज्ञान जगत और विषय जगत के सम्बन्ध में जान सकेंगे,
- ज्ञान जगत और विषय जगत के अंतर को समझ सकेंगे,

- विषय जगत की संरचना एवं विभाजन की व्याख्या कर सकेंगे,
- विषय जगत की विशेषताओं को जान सकेंगे, और
- विषय जगत की विधियों को समझकर उनकी समीक्षा कर सकेंगे।

6.2 ज्ञान जगत एवं विषय जगत (Universe of Knowledge and Universe of Subjects)

सामान्य अर्थ में ज्ञान शब्द से तात्पर्य एक निश्चित जानकारी अथवा वह जो ज्ञात है, से है। ज्ञान वास्तव में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त बौद्धिक अनुभव है। बुद्धि के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष.अनुभव, प्रायोगिक कौशल और जानकारी के द्वारा किसी तथ्य, तत्व अथवा वस्तु से परिचित होना अथवा उसे ज्ञात करना ही ज्ञान है। मनुष्य ही एक मात्र ऐसा चेतन प्राणी है, जिसमें विचार, चिंतन, मनन, मंथन और अनुभव प्राप्त करने की पर्याप्त शक्ति होती है जिसके आधार पर वह नए तथ्यों और तत्वों से अवगत होता है और ज्ञान अर्जित करता है। ज्ञान के आविर्भाव अथवा उत्पत्ति में दो प्रमुख पक्ष होते हैं - (1) ज्ञाता (Knower) और (2) ज्ञेय (Knowee)। जब मनुष्य अर्थात ज्ञाता किसी वस्तु एवं विचारों से परिचित होता है तो ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ज्ञाता के अभाव में ज्ञान का अस्तित्व सम्भव नहीं होता है। जब मनुष्य किसी वस्तु अथवा विचार को अनुभूति (Congnition), बोध (Understanding), विश्वास (Belief), तर्क (Logic) और अनुभव (Experience) के आधार पर स्वीकार कर लेता है तभी ज्ञान का सृजन होता है। इस क्रम के निरंतर चलते रहने से ज्ञान की वृद्धि होती है और नित्य प्रति ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन उपलब्धियाँ होती रहती हैं। उत्सुकता एवं जिज्ञासा के फलस्वरूप मनुष्य के विचारों का निरन्तर विकास होता है और उसी के साथ-साथ ज्ञान का विस्तार होता है। ज्ञान सदैव गतिशील एवं सम्बर्धनशील रहता है। नवीन विचारों, तथ्यों और सूचनाओं के आधार पर व्यावहारिक शोध का चक्र चलता रहता है नवीन विषयों का उदय होता है जो ज्ञान की सृष्टि करते हैं।

ज्ञान जगत अनेक विषयों का सामूहिक स्वरूप होता है और इसकी शाखाओं तथा इकाइयों को पृथक विषयों के नाम से जाना जाता है। जब विचारों को चिंतन, निरीक्षण और परीक्षण के द्वारा किसी विचार समूह (Body of ideas) में सुव्यवस्थित, सुसंगठित एवं क्रमबद्ध अवस्था में संकलित कर दिया जाता है तब वह एक विषय अथवा अनेक विषयों का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार कोई भी विषय विचारधाराओं का एक सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप होता है। प्रत्येक विषय की सीमा भी होती है और यह सीमा या क्षेत्र विकसित और परिवर्तनशील भी होता है। नवीन विषय तथा

विद्यमान विषयों के समिश्रण से समय-समय पर आधुनिक नवीन विषय प्रकट होते रहते हैं और यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

डॉ0 एस0 आर0 रंगनाथन ने विषयों को तीन प्रकार का माना है -

(i) मूल विषय (Basic Subject) मूल विषय से तात्पर्य ऐसे विषय से है जिसमें कोई एकल-विचार घटक के रूप में नहीं होता। जैसे राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि।

(ii) यौगिक विषय (Compound Subject) - ऐसे विषय जिसमें एक मूल विषय के साथ एक अथवा एक से अधिक एकल विचार घटक के रूप में संलग्न रहते हैं। जैसे - अंग्रेजी साहित्य, (साहित्य + बाल), स्त्री शिक्षा (शिक्षा + स्त्री) आदि।

(iii) जटिल विषय (Complex Subject) ये दो अथवा दो से अधिक विषयों के उनके बीच विभिन्न प्रकार के संबंधों के अध्ययन से उत्पन्न विषय को जटिल विषय कहते हैं।

6.2.1 ज्ञान जगत एवं विषय जगत में भिन्नता - (Difference between Universe of Knowledge and Universe of Subject)

यद्यपि ज्ञान जगत और विषय जगत को सामान्यतः एक दूसरे का पर्यायवाची माना जाता है। परन्तु यदि गहनता से अध्ययन किया जाय तो इन दोनों में कुछ भिन्नताएँ भी पायी जाती है। ज्ञान जगत अनन्त है और उसे समझने का कोई अन्त नहीं है। इसके विपरीत विषय जगत को समझा जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर कोई भी जिज्ञासु स्वयं एक नवीन विषय का निर्माण शोध के द्वारा कर सकता है। इस प्रकार विभिन्न विषयों में शोध प्रक्रिया द्वारा नवीन - नवीन विषयों का निर्माण निरन्तर होता रहता है।

इन दोनों में अन्तर अथवा भिन्नता के आधार निम्नलिखित है-

(1) क्षेत्र के आधार पर - ज्ञान जगत का क्षेत्र असीम होता है। इसके अन्तर्गत असीमित साहित्य अव्यवस्थित रूप में पाया जाता है, जबकि विषय जगत का क्षेत्र विषयों तक सीमित होता है। इसमें सम्बन्धित विषय का साहित्य संगठित एवं व्यवस्थित रहता है।

(2) संरचना के आधार पर - ज्ञान जगत की संरचना अनुभवों के आधार पर होती है, जबकि विषय जगत की उत्पत्ति ज्ञान जगत से होती है। जब तक ज्ञान की अनुभूति नहीं होती, तब तक विचारों को संगठित नहीं किया जा सकता और जब तक विचार निरीक्षण और परीक्षण के आधार पर संगठित एवं सुव्यवस्थित नहीं होते तब तक एक विषय निर्मित नहीं हो सकता।

(3) निश्चितता के आधार पर - ज्ञान जगत को समझने की कोई निश्चितता नहीं होती है। विषय जगत में किसी एक विशेष विषय को समझने की निश्चितता विद्यमान रहती है।

(4) बहु आयामिता के आधार पर - ज्ञान जगत बहुआयामी है। इसे किसी भी आयाम में परिवर्तित किया जा सकता है, जबकि विषय जगत अपने-अपने विषयों में बहुआयामी है। एक विषय दूसरे के साथ जुड़ने पर जिस नवीन विषय की रचना करता है वह उस तक ही सीमित रह जाता है। जैसे - Bio+Chemistry = Biochemistry यहाँ Biology और Chemistry दोनों विषय मिलकर एक ही विषय में सीमित हो गये हैं।

(5) निरन्तरता के आधार पर - जिस प्रकार ज्ञान जगत निरन्तर है उसी प्रकार विषय जगत भी निरन्तर है।

(7) संवर्द्धनशीलता के आधार पर - ज्ञान जगत और विषय जगत दोनों ही संवर्द्धनशील है।

इस प्रकार ज्ञान जगत और विषय जगत में परस्पर कुछ समानताएँ और कुछ असमानताएँ हैं।

6.3 विषय जगत की संरचना एवं विभाजन (Structure and Division of Universe of Subject)

डॉ0 रंगनाथन ने स्पष्ट किया है कि विषयों की संरचना विधि एवं प्रक्रियाएँ विषयों की उत्पत्ति एवं स्वरूप को प्रभावित करती हैं। विषय जगत को एक पूर्ण ज्ञान पिण्ड के स्वरूप में भी स्पष्ट किया जा सकता है। विषय जगत के सन्दर्भ में संरचना से तात्पर्य विषयों का वैचारिक धरातल (Idea plane) तथा शाब्दिक धरातल (Verbal plane) पर विभाजन (Division) से होता है। विषयों की संरचना तथा विभाजन के विभिन्न स्वरूपों की जानकारी होना एक पुस्तकालयाध्यक्ष के लिए आवश्यक है।

विषयों की संरचना एवं विभाजन के प्रमुख तीन आधार हो सकते है -

(1) द्विभाजन (Dichotomy)

(2) दशभाजन (Decachotomy)

(3) बहुभाजन (Polychotomy)

(1) द्विभाजन (Dichotomy) - वर्गीकरण के सम्बन्ध में द्विभाजन का अर्थ है कि विषय जगत को प्रत्येक चरण में मात्र दो ही चित्रों में विभक्त करना। उदाहरणार्थ- जीव जगत को प्रथम चरण में पौधे और प्राणियों में विभाजित करना, पुनः पौधों को फूल वाले पौधों (Flowering Plants) और बिना फूल वाले पौधों (Non Flowering Plants) मे विभाजित करना, इसी प्रकार प्रणियों को रीढ़ वाले प्राणी (Vertebrates) और बिना रीढ़ वाले प्राणी (Invertebrates) में विभाजित करना।

शाब्दिक धरातल (Verbal Plans) पर दो द्विभाजन (Dichotomy) को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है -

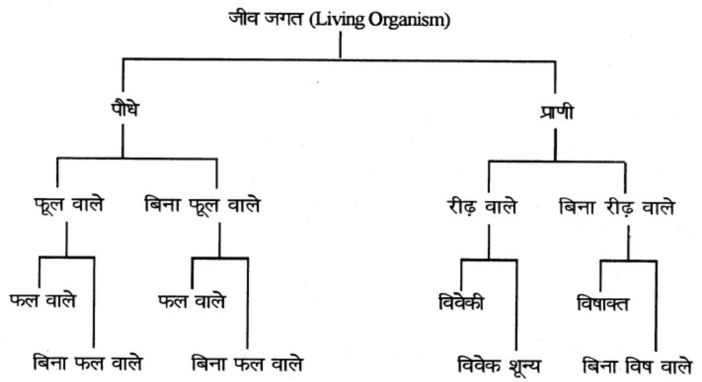

ज्ञान जगत और विषय जगत अब इतना विशाल एवं बहुआयामी हो गया है कि विभाजन की यह प्रणाली उपयुक्त नहीं रही है। वर्तमान में विषय जगत उस तट वृक्ष की तरह है। जिसमें असंख्य शाखाएँ, उपशाखाएँ और उप-शाखाएँ फूट चुकी हैं विषय जगत में नये-नये विषयों और प्रत्येक विषय में नये आयामों को जन्म देने में विषय निर्माण की विभिन्न विधियाँ सक्रिय रूप से निरन्तर कार्य करती रहती है। इस प्रकार नितांत जटिल विषय जगत को नितांत सरल दो भागों में विभाजन की विधि से वर्गीकृत करना एक असम्भव कार्य है।

(2) दशभाजन (Decachotomy)- डेका (Deca) का अभिप्राय दस होता है। अतः 'डेकाकोटामी' का अर्थ है कि विषय जगत और प्रत्येक विषय अथवा उप-विषय को प्रत्येक चरण में दस भागों में विभाजित करना। इस प्रकार यह पद्धति द्विभाजन की अपेक्षा एक अधिक बड़ा आधार प्रदान करती है। मेल्विल ड्यूवी ने जब 1876 में अपनी वर्गीकरण पद्धति को दशभाजन के आधार पर दशभाजन की विधि पर आधारित ड्यूवी डेसीमल वर्गीकरण प्रणाली काफी प्रचलित हुई है और इसकी लोकप्रियता का इसी बात

से पता चलता है कि अब तक इसके 21 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। फिर भी यह कहना भी उचित नहीं होगा कि दशभाजन विधि विषय जगत के विभाजन में समर्थ है। वर्तमान समय में विषय जगत को केवल दश भागों में सीमित नहीं रखा जा सकता। विषय निर्माण की विभिन्न विधियों और विषय जगत की सम-सामयिक प्रवृत्तियों तथा लक्षणों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विषय जगत में असंख्य सत्ताएँ हैं, और भविष्य में अन्य असंख्य सत्ताएँ जन्म लेंगी। अतः विषय जगत की जटिलता को विधि से नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है।

(3) बहुभाजन (Polychotomy) - इसका अभिप्राय है किसी वस्तु को अनेक भागों में विभाजित करना बहुभाजक पद्धति में विषय जगत को विभाजित करने का अनुसरण सर्वप्रथम सी0ए0 कटर (C. A. Cutter) ने 1983 में अपनी वर्गीकरण योजना एक्सपैन्सिव क्लासीपिकेशन (Expansive Classification) में किया था। इसमें कटर ने 24 स्तरों पर विषयों के विभाजन का उपयोग किया जिसमें कालान्तर में अपर्याप्त माना जाने लगा क्योंकि ज्ञान / सूचना विस्फोट की निकट स्थिति के फलस्वरूप ज्ञान जगत के विषयों के प्रकारों का पूर्व निर्धारण आज के युग में सम्भव नहीं हो सकता है।

6.4 विषय जगत की विशेषताएँ (Characterstics of Universe of Subject)

विषय जगत निरन्तर वर्द्धनशील हैं। विभिन्न स्तरों पर शोध के फलस्वरूप इसका विकास होता रहता है। यह कभी भी स्थिर नहीं रहता और सतत् गतिशील बना रहता है। इसके विकास की गति एवं इसका स्वरूप सदैव परिवर्तनशील रहता है।

विषय जगत की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) गतिशीलता (Dynamic) - विषय जगत में सतत् गतिशीलता रहती है, क्योंकि निरन्तर रूप से प्रत्येक विषय के अन्तर्गत नवीन-नवीन खोज एवं शोध कार्य होते रहते हैं जिसके फलस्वरूप नए-नए विषयों, उप विषयों का विकास होता रहता है। शोध के क्षेत्र में प्रकाशित साहित्य में भी तीव्र गति से वृद्धि होती रहती है। यूनेस्कों की एक रिपोर्ट के आधार पर लगभग छह लाख प्रलेख प्रतिवर्ष प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार विषय जगत सतत् संवर्द्धनशील और गतिशील है।

(2) अनन्त (Infinite) - विषय जगत में भूत, वर्तमान और भविष्य का अनन्त ज्ञान समाहित रहता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इसमें ज्ञात और अज्ञात सभी प्रकार का साहित्य समाहित होता है। ज्ञात तथ्यों या विषयों की संख्या तो निश्चित रहती है, परन्तु अज्ञात तथ्यों या विषयों की संख्या असंख्य होती है। जो तथ्य या विषय वर्तमान में अज्ञात हैं वे समय-समय पर भविष्य में ज्ञात हो जाएंगे और

इस प्रकार विषय जगत का कोई अन्त नहीं है अतः विषय जगत अनन्त है और निरन्तर वर्द्धनशील है।

(3) बहुआयामी (Multidimensional)- विषय जगत की एक विशेषता यह भी है कि वह अनेक स्वरूपों में और बहु-आयामी होता है। ज्ञान का विकास कई दिशाओं में होता है अतः पुस्तकालयों में उचित स्थान पर सम्बन्धित विषय के साथ व्यवस्थापन में कठिनाई आती है।

(4) निरन्तरता एवं सततता (Continuum)- विषय जगत निरन्तर एवं सतत है। इस विशेषता के फलस्वरूप निरन्तर नवीन विषय ज्ञात होते रहते हैं। जब कोई एक विषय विकसित होता है तब अन्य विषयों के साथ पारस्परिक क्रिया होती है और एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप निरन्तर नवीन विषय प्रकाश में आते रहते हैं। इस प्रकार एक विषय दूसरे विषय के लिए एक प्रेरक के रूप में कार्य कर रहा है। जिसके फलस्वरूप विषय जगत एक वर्द्धनशील और सतत जगत बन गया है।

(5) सम्बद्धता या सुसंगतता (Coherence) - नीलमेघन ने सम्पूर्ण विषय जगत को एक तंत्र **(System)** के रूप में माना है। इस तंत्र में कई घटक होते हैं और इन घटकों में अन्तरसम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध घटक के साथ एक जुट रहता है और सम्बद्धता प्रदर्शित करता है। ये घटक अवयव इस प्रकार सम्बन्धित होते हैं कि किसी एक घटक में परिवर्तन होने पर सभी घटकों में कुछ न कुछ परिवर्तन आ जाता है जिसके फलस्वरूप समस्त विषय जगत प्रभावित होता है। एक यौगिक विषय (Compound Subject) में यदि मूल विषय (Basic Subject) परिवतर्तित कर दिया जाए तो सम्पूर्ण विषय ही परिवर्तित हो जाएगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विषय जगत का विस्तार द्रुतगति से हो रहा है। जिसका प्रभाव पुस्तकालयों पर पड़ रहा है। अतः पुस्तकालयाध्यक्षों, तथा वर्गकार को विषय जगत की विशेषताओं को भली-भाँति समझना चाहिए। सतत् वर्धनशील विषय जगत को नियंत्रित करने के लिए प्रभावशाली अंकन की आवश्यकता है जो अनन्त विषय जगत के विकासों को सहायक क्रम में इस प्रकार व्यवस्थित कर सके कि पूर्व क्रम व्यवस्था में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो।

6.5 विषय निर्माण की विधियाँ (Methods of Subject Formation)

आप जानते हैं कि ज्ञान जगत असीमित, सर्वव्यापी, बहुआयामी और निरन्तर वर्द्धनशील है। ज्ञान एक व्यापक और अपार विषयों, उपविषयों और इनकी शाखाओं का सामूहिक स्वरूप है। निरन्तर हो रहे अनुसंधानों के फलस्वरूप नित नवीन विषयों की सृष्टि होती रहती है जिनकी संरचना विधि अलग-अलग होती है।

पुस्तकालय विज्ञान के महान विचारक डॉ0 रंगनाथन ने विषद् अध्ययन और अनुसंधान के पश्चात् 1950 में अपने एक आलेख में चार प्रकार की विषय संरचना विधियों का प्रतिपादन किया जिनका उल्लेख उन्होंने प्रोलिगोमिना (Prologeomena to library classification) में किया है। ये प्रकार निम्नलिखित है -

(1) अबद्ध विषय संयोजन (Loose Assemblage)
(2) स्तरण / परतबन्दी (Lamination)
(3) विच्छेदन (Dissection)
(4) अनाच्छादन (Denudation)

उपरोक्त के अतिरिक्त 1960 के दशक में दो और अन्य विधियों को प्रतिपादित किया गया -

(1) आसवन (Distillation)

(2) विलयन (Fusion)

1973 के अन्तर्गत डाक्यूमेन्टेशन रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग सेन्टर (DRTC), बंगलौर में कार्यरत ए0 नीलमेघन ने इस विषय संरचना विधियों को समायानुकूल अद्यतन (up-to-date) बनाने हेतु इनमें संशोधन किया और इन्हें वैज्ञानिक आधार पर परिवर्तित कर उनका पुर्नगठन किया। समस्त विषय संरचना विधियाँ इस प्रकार है-

1. अबद्ध विषय संयोजन (Loose Assemblage)- सर्वप्रथम इस विधि का प्रतिपादन 1950 में किया था। इस विधि के अनुसार दो या दो से अधिक विषयों अथवा एकलों को जोड़कर विषय की संरचना की जाती है। 1971 में इसे तीन भागों में विभाजित किया गया।

(i) अबद्ध विषय संयोजन - प्रथम (Loose Assemblage-1) - इस विधि से दो या दो से अधिक साधारण अथवा जटिल विषयों के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन के आधार पर विषयों की संरचना होती है। इन पारस्परिक सम्बन्धों को अर्न्तविषयी दशा सम्बन्ध (Inter subject relation) कहते हैं। इससे जटिल विषय की उत्पत्ति एवं विकास होता है।

इस संरचना विधि में दशा सम्बन्ध (Phase relations) निम्न प्रकार के होते हैं-

1. सामान्य सम्बन्ध (General relation)
2. अभिमुखी या उन्मुखी सम्बन्ध (Bias relation)
3. तुलनात्मक सम्बन्ध (Comparison)
4. भिन्नात्मक सम्बन्ध (Difference)
5. प्रभावात्मक सम्बन्ध (Influence)
6. उपकरण सूचक सम्बन्ध (Tool)

उदाहरण -

1. Relation between Economics and Political Science.

2. Mathematics for Engineers,

3. समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्रः तुलनात्मक अध्ययन

4. Difference between Botany and Zoology

5. गणित का अर्थशास्त्र अध्ययन पर प्रभाव।

(ii) अबद्ध विषय संयोजन-द्वितीय (Loose Assemblage-II) - इस प्रकार के विषय की संरचना एक ही विषय के दो या अधिक समवर्गों / एकलों के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर होती है। इस सम्बन्ध को कोलन वर्गीकरण पद्धति में अन्तर पक्ष दशा सम्बन्ध (**Inter facet phase relation**) कहते हैं, इसमें भी अबद्ध संयोजन प्रथम प्रकार की भाँति दशा सम्बन्ध सामान्य, तुलनात्मक, भिन्नात्मक अथवा प्रभावात्मक हो सकते हैं।

जैसे - (1) Kalidas and Shakespeare : Comparative study,

(2) Impact of Philosophy on Literature

(3) जैन धर्म एवं बौद्ध धर्मः पारस्परिक सम्बन्ध।

(iii) अबद्ध विषय संयोजन - तृतीय (Loose Assemblage-III) - इस प्रक्रिया के अन्तर्गत एक विषय के एक समवर्ग के दो या अधिक एकलों के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर नवीन विषय की संरचना होती है। कोलन वर्गीकरण पद्धति में ऐसे विषयों के सम्बन्ध को अन्तर पंक्ति विषय सम्बन्ध (Intra array phase relation) कहते हैं।

जैसे - (1) Rural and Urban Society,

(2) Comparative study of UDC and CC आदि।

इससे यह स्पष्ट होता है कि अनेक विषयों के संयोजन से जटिल एवं मिश्रित विषयों की संरचना उत्पत्ति होती है।

(2) परतबन्दी (Lamination) - इस विधि का प्रतिपादन भी 1950 के दशक में किया गया था। इस विधि में एक ही अथवा एकल पक्षों अथवा मूल विषय को एक दूसरे के ऊपर रखकर नवीन विषयों की संरचना होती है। कोलन वर्गीकरण में पाँच मूलभूत श्रेमियों (PMSET) के आधार पर इसी प्रकार के विषयों की रचना होती है। यह भी दो प्रकार की होती है।

(i) परतबन्दी प्रक्रिया प्रथम (**Lamination : kind 1**)- इस प्रक्रिया में एक अथवा एक से अधिक एकल पक्षों को एक साथ एक मुख्य विषय के साथ परतबद्ध

किया जाता है। इसमें मुख्य परत मुख्य विषय की होती है और अन्य परतें एकल पक्षों की होती है। जैसे- उत्तर-प्रदेश में धान की खेती। इसमें मूल विषय कृषि के साथ धान और उत्तर-प्रदेश पक्षों को रखकर मिश्रित विषय का निर्माण परतबन्दी के आधार पर किया गया है।

(ii) परतबन्दी प्रक्रिया द्वितीय (Lamination : kind II) - इसके अन्तर्गत किसी मुख्य विषय के साथ दो अथवा दो से अधिक प्रजातियों (Species) को उसी मुख्य विषय (Basic Subject) से सम्बन्ध होते हुए कि एक साथ परतबन्दी की जाती है। जिससे मिश्रित मुख्य की रचना होती है। जैसे - Wave Mechanics and Sound, Magnetism in Quantum Physics, and Rural Women and Children आदि। इसमें एक ही मुख्य विषय की अनुसूची से एक ही पक्ष के दो अथवा अधिक एकलों की परतबन्दी (Lamination) की जा सकती है।

3. विभाजन (Fission)- इस प्रक्रिया का अभिप्राय पुस्तकालय वर्गीकरण पद्धति में ज्ञान जगत को प्राथमिक एवं गौण मुख्य विषयों में विभाजित करने से है। विभाजन के प्रथम चरण में इस विधि से प्राथमिक मुख्य विषयों (Primary Basic Subjects) की संरचना की जाती है। दूसरे स्तर पर इस विधि से गौण मुख्य विषयों की संरचना होती है। विषय जगत के विकास की प्रक्रिया में एक प्राथमिक मुख्य विषय के अन्तर्गत ऐसे विषय सम्मिलित हो सकते हैं। जो विशेषज्ञों के दृष्टिकोण से समरूप न हो लेकिन यदि खण्डों में विभाजित कर दिया जाता है तो विशेषज्ञों के अध्ययन में सहायक हो सकते हैं। ऐसे प्राथमिक मुख्य विषय की किसी स्पष्ट विशेषता को प्रयोग किये बिना ही विशिष्टीकरण के आधार पर विभाजित करने के लिए विभाजन विधि का प्रयोग किया जाता है। कोलन वर्गीकरण में इनको प्रमाणिक वर्ग (Canonical classes) कहा जाता है।

इस प्रकार इस वर्ग के अन्तर्गत एक विषय को दो या अधिक विषयों में विभाजित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप नये विषय की संरचना होती है। जैसे-

ज्ञान जगत - प्राकृतिक विज्ञान, मानविकी, सामाजिक विज्ञान

प्राकृतिक विज्ञान - गणित, भौतिकी, जीव विज्ञान

भौतिकी - ऊष्मा, प्रकाश, ध्वनि, आदि को भी इनकी अनेक शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है।

विभाजन की प्रक्रिया के अन्तर्गत दो विधियों के माध्यम से नवीन विषयों की संरचना की जाती है।

विच्छेदन (Dissection) - ज्ञान जगत को मुख्य विषयों अथवा विभिन्न भागों में विभाजित करके विषयों की संरचना करना और विच्छेदित वर्गों को समवर्ग अथवा उनकी पंक्ति को वर्गों की पंक्ति कहा जाता है। जैसे - वनस्पति शास्त्र, जन्तु विज्ञान, कृषि

विज्ञान आदि मूल विषय जगत के विच्छेदन से प्राप्त मुख्य विषय हैं।

विभाजन करके विषयों की संरचना की इस विधि को 1950 में रंगनाथन ने प्रतिपादित किया था किन्तु 1977 में नीलमेघन ने इसे उचित नहीं माना। उनका कथन था कि विच्छेदन करने के लिए किसी बाहरी माध्यम का प्रयोग आवश्यक है जबकि ज्ञान विभाजन एक आन्तरिक प्रक्रिया है। अतः इस स्तर पर भी विभाजन विधि (Fission) ही उचित पद है।

आच्छादन (Denudation)- विषय संरचना एवं निर्माण के परिपेक्ष्य में अनाच्छादन किसी मुख्य विषय के एक वर्ग अथवा एकल को विभाजित करने की प्रक्रिया, जिसमें विशिष्ट विशेषताओं के आधार पर व्यापकता की दृष्टि से विषय का विस्तार क्रमशः कम करना और गहनता की क्रमशः वृद्धि (Decrease of extension and increase of intension) करना होता है। अर्थात् विस्तार ह्रास से गहनता वृद्धि की ओर क्रमशः विभाजन करके नये एकल विचारों की एक श्रृंखला का सृजन किया जाता है। इस प्रकार जो वर्ग बनते हैं वे एक दूसरे के अधीनस्थ होते हैं। इसलिए उन्हें अधीनस्थ वर्ग (Subordinate classes) कहते हैं। जे. एच. शेरा ने इसे ज्ञान के नवीन विषयों को खोज प्रक्रिया कहा है।

उदाहरण - विश्व-एशिया-भारत-उत्तर प्रदेश-इलाहाबाद

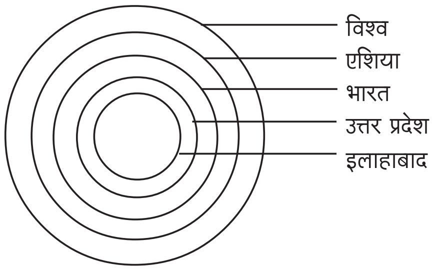

(4) विलयन (Fusion) - इस पद का शाब्दिक अभिप्राय यह है कि दो विषयों को एक साथ मिलाकर एक नये विषय का निर्माण करना। इस प्रक्रिया में दो अथवा दो से अधिक मूल विषय एक साथ इस प्रक्रिया विलीन अथवा सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में उनका अपना अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है और एक तीसरे नवीन मुख्य विषय का निर्माण या सृजन हो जाता है।

वर्तमान में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विभिन्न शोध कार्यों के परिणामस्वरूप प्राथमिक विषयों के विलयीकरण से कई नए प्राथमिक विषयों की संरचना हो रही है।

उदाहरण - Astrophysics - Astronomy तथा Physics को एक साथ विलयन होने पर उत्पन्न हुआ है।

Biochemistry - Biology और Chemistry के विलयन से बना है।

इसी प्रकार Biophysics, Geophysics, Geochemistry, Astrochemistry, Econometrics आदि सभी विलयन की प्रक्रिया से सृजित हुए हैं।

(5) आसवन (Distillation) - इस प्रक्रिया से एक शुद्ध पदार्थ / विषय को प्राप्त किया जाता है। विषय निर्माण की प्रक्रिया में अनेक मुख्य विषयों अथवा एक ही विषय के विश्लेषण से एक शुद्ध और मुख्य विषय विकसित करना होता है। यह मंथन से उत्पन्न होता है। इस विधि से प्राथमिक मुख्य विषयों की संरचना दो प्रकार से हो सकती है।

(अ) आसवन प्रक्रिया - प्रथम (Distillation -I) - एक शुद्ध विषय यह होता है जिसका समान रूप से कई मुख्य विषयों में प्रयोग किया जाता है। इन्हें अनेक विषयों में सामान्य निरीक्षण, परीक्षण, अनुभव के आधार पर प्राप्त किया जाता है। ऐसे विषयों को मार्ग दर्शक सिद्धान्तों के रूप में प्रयोग किया जाता है। जैसे-प्रबन्धन विज्ञान (Management Science) इस प्रकार से प्राथमिक मुख्य विषय का महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरणों में Systemology, Metrology, Research Methodology, Conference Techniques आदि हैं।

(ब) आसवन प्रक्रिया - द्वितीय (Distillation-II) - विभिन्न वैज्ञानिक, शैक्षणिक और सामाजिक कारणों से किसी विशिष्ट क्षेत्र में विचार अथवा विचारों पर गहन शोध करते हैं। नवीन निष्कर्ष और विचार आलेख के रूप में प्रकासित होते रहते हैं, साथ ही संचार के अन्य साधनों एवं माध्यमों द्वारा विचार-विमर्श भी होता है। फलस्वरूप साहित्यिक प्रमाण की अत्यधिक वृद्धि होती है। इनके आधार पर मार्ग दर्शक सिद्धान्त प्रतिपादित करना भी सम्भव हो सकता है। इस प्रकार ये एक मुख्य विषय के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के रूप में Microbiology का विकास Biology और Botany से, International Relations का विकास Political Science से और इसी प्रकार Demography का विकास Sociology से गहन शोध अध्ययन के आधार पर हुआ है।

(6) संचयन (Agglomeration)- रंगनाथन ने विषयों की संरचना प्रक्रिया में संचयन के स्थान पर अर्द्ध व्यापकत्व (Partial Comprehension) पद का प्रयोग किया था। बाद में परिवर्तित कर संचयन अथवा समिश्रण कर दिया गया। यह वस्तुतः वह प्रक्रिया मानी गयी है जिसमें अनेक विषयों को उनके संघटकों और अवयवों के बिना किसी अवरोध एवं विघटन के किसी एक वृहत् समूह में एकत्रित कर संग्रहीत किया जाता है। इसमें एक मुख्य विषय का निर्माण होता है।

इस विधि से दो प्रकार के मुख्य विषयों की संरचना होती है -

(i) संचयन मुख्य विषय प्रकार 1 (Agglomeration of kind-1) - इस प्रकार के विषय की संरचना एक वर्गीकरण पद्धति में मान्यता प्राप्त निरन्तर एक के बाद

एक रखे गये मुख्य विषयों के समूह के रूप में संचयन या सम्मिश्रण किया जाता है। संचयन करने के लिए मुख्य विषयों की परिसीमा एक समान नहीं होती है। उदाहरण के लिए संचयित मुख्य विषय Generalia में सम्पूर्ण विषय जगत को सम्मिलित किया गया है जबकि Social Science में मात्र सामाजिक अध्ययन पर आधारित मुख्य विषयों को सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरणों में प्राकृतिक विज्ञान एवं मानविकी भी है।

(ii) संचयन मुख्य विषय प्रकार 2 (Agglomeration of kind-II) - एक विषय की संरचना ऐसे मुख्य विषयों के आधार पर भी की जा सकती है जो वर्गीकरण प्रणाली की मुख्य विषय सूची में लगातार पंक्तिबद्ध नहीं है अर्थात् पृथक-पृथक हैं। जैसे-यू0डी0सी0 (Universal Decimal Classification) में मनोविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीतिकशास्त्र और इतिहास। इन दोनों प्रकार से संचित या समिश्रित मुख्य विषयों के घटकों में किसी प्रकार की सहसम्बद्धता नहीं है।

(7) समूहीकरण (Cluster) - रंगनाथन ने 1966 में विषय संरचना विधि का एक अन्य प्रकार विषय समूहन (Sibject Bundle) प्रतिपादित किया था। इस श्रेणी के प्राथमिक मुख्य विषयों का आधार वर्तमान समय की शोध प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न विषय विशेषज्ञ अपने-अपने दृष्टिकोण से अनुसंधानिक कार्य करते है और उसी आधार पर उनके निष्कर्ष भी प्राप्त होते हैं। जब किसी एक विषय के सम्बन्ध में अनेक विशिष्ट अध्ययनों अथवा निष्कर्ष को सम्पन्न किया जाता है तब उस विषय का एक समूह (Cluster) उत्पन्न होता है और एक मुख्य और स्वतंत्र विषय का उदय होता है। इसे समूहीकरण करते हैं।

उदाहरण - भारतीय अध्ययन (Indology), एशिया का पूर्ण अध्ययन (Orientation), Oceanography, Earth Science, Space Science, Gandhiana आदि ऐसे विषयों के उदाहरण हैं।

विषय संरचना की ये समस्त विधियाँ डॉ0 रंगनाथन और नीलमेघन द्वारा कोलन वर्गीकरण पद्धति के लिए विकसित की गयी थी। ये विधियाँ अन्य पद्धतियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं, साथ ही साथ ज्ञान और सूचना से सम्बन्धित अन्य उद्देश्यों जैसे संग्रह विकास सूचना संग्रहण पुर्नप्राप्ति आदि के संगठन और व्यवस्था हेतु ये विधियाँ दिशानिर्देश हेतु सिद्धान्त के रूप में सक्षम सिद्ध हो सकती है। विषय संरचना की इन विधियों को वर्तमान सन्दर्भ में कभी भी परिपूर्ण और अद्यतन नहीं किया जा सकता। ये केवल भविष्य में इस क्षेत्र के शोध और परिक्षणों हेतु दिशा निर्देशक सिद्धान्त का कार्य कर सकती है और इनमें संशोधन और परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है।

6.6 सारांश (Summary)

मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है उसके इस गुण के कारण उसके मस्तिष्क में

समय-समय पर नवीन विचार आते रहते हैं। ये नवीन विचार ही संगठित रूप में ज्ञान कहलाते हैं। ज्ञान सुव्यवस्थित भी होता है और अव्यवस्थित भी। जब किसी विधि के अनुसार परीक्षण एवं अवलोकन किया जाता है तथा प्रयोग और विश्लेषण के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है, तब वह सुव्यवस्थित ज्ञान कहलाता है। ज्ञान के सृजन में मनुष्य साधक और वस्तु अथवा विचार साध्य अथवा उद्देश्य हैं। उत्सुकता और जिज्ञासा के फलस्वरूप मनुष्य के विचारों का निरन्तर विकास होता है और उसी के साथ-साथ ज्ञान का विस्तार होता है। ज्ञान सदैव गतिशील और वर्धनशील रहता है। ज्ञान जगत अनेक विषयों का सामूहिक स्वरूप होता है और इनकी शाखाओं तथा इकाईयों को पृथक-पृथक विषयों के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक विषय की सीमा भी होती है और यह सीमा या क्षेत्र विकसित और परिवर्तनशील भी होता है। विद्यमान तथा नवीन विषयों से सम्मिश्रण के समय-समय पर नवीन विषय प्रकट होते रहते हैं और विषय संरचना की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

विषयों की संरचना, विधि एवं प्रक्रियाएँ विषयों की उत्पत्ति एवं स्वरूप को प्रभावित करती हैं। विषय जगत को एक पूर्ण ज्ञान राशि के स्वरूप में भी स्पष्ट किया जा सकता है। डॉ0 रंगनाथन के अनुसार विषयों की संरचना तथा विभाजन के स्वरूपों की जानकारी प्रत्येक पुस्तकालय को होना आवश्यक है।

विषय जगत निरन्तर वर्धनशील है। विभिन्न स्तरों पर शोध के फलस्वरूप इसका विकास होता है। विषय जगत में यह विशेषता है कि वह सतत् रूप से गतिशील है, अनन्त है, बहुआयामी है, और निरन्तर एवं सतत् है।

विषयों की निर्माण की विधियों का अध्ययन सर्वप्रथम डॉ. रंगनाथन ने किया था। पहले उन्होंने विषय निर्माण की केवल 4 विधियों का उल्लेख किया था। 1960 के दशक में दो और विधियों को प्रतिपादित किया गया। 1973 के अन्तर्गत ए नीलमेघन ने विषय निर्माण विधियों को समयानुकूल अद्यतन बनाने हेतु इसमें संशोधन किया और वैज्ञानिक आधार पर परिवर्तित कर इसका पुर्नगठन किया।

6.7 अभ्यास प्रश्न - बहुविकल्पीय, लघुउत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. ज्ञान से क्या अभिप्राय है -
   (1) एक निश्चित जानकारी
   (2) परिष्कृत अर्थपूर्णसूचना
   (3) विचारसमूह जिसे मनुष्य अर्जित कर सुरक्षित रखता है।
   (4) उपर्युक्त सभी

2. निम्नलिखित में से कौन ज्ञान का स्रोत नहीं है?
   (1) प्रत्यक्ष ज्ञान (2) प्रज्ञा
   (3) विश्वकोष (4) अर्न्तज्ञान
3. विषय निर्माण की विधियाँ किसने प्रतिपादित की?
   (1) जे. एच. शेरा (2) एस. आर. रंगनाथन
   (3) ए. नीलमेधन (4) डेकर डेविस
4. निम्नलिखित में से संचयन (Agglomeration) का पूर्व नाम क्या है-
   (1) पूंजयन विधि (2) आंशिक समावेशी
   (3) अनाच्छादन (4) समूहन
5. समूहन (Cluster) का पूर्व नाम क्या है ?
   (1) आंशिक समावेशी (2) विषय-बण्डल
   (3) अनाच्छादन (4) विच्छेदन
6. निम्नलिखित में से कौन ज्ञान का प्रकार नहीं है?
   (1) तर्क संगत ज्ञान (2) सहज ज्ञान
   (3) ऐतिहासिक ज्ञान (4) वैज्ञानिक ज्ञान
7. आध्यात्मिक ज्ञान निम्नलिखित में से किससे सम्बन्धित है?
   (1) धर्म (2) आत्मा
   (3) विश्वास (4) प्रज्ञा
8. विषयों के विभाजन के प्रमुख तीन आधार हैं -
   (1) सत्य (2) असत्य
9. डॉ0 रंगनाथन ने निम्नलिखित में से सर्वप्रथम किस विधि का प्रतिपादन किया-
   (1) अबद्ध विषय संयोजन (2) परतबन्दी
   (3) विच्छेदन (4) आच्छादन
10. रंगनाथन ने (1966) में विषय संरचना की किस विधि का प्रतिपादन किया ?
   (1) संचयन (2) समूहीकरण
   (3) आसवन (4) विच्छेदन

6.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. विषय जगत की विशेषताएं संक्षेप में बताइए।
2. विषय जगत के अध्ययन की आवश्यकता पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

3. विषय निर्माण में विखण्डन को स्पष्ट कीजिए।
4. अबद्ध विषय संयोजन पर टिप्पणी लिखिए।
5. विच्छेदन विधि को स्पष्ट कीजिए।

6.7.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. विषय जगत की संरचना, विभाजन एवं विशेषताओं का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
2. ज्ञान को परिभाषित कीजिए। ज्ञान जगत एवं विषय जगत की विभिन्नताओं की विवेचना कीजिए।
3 समुचित उदाहरण देते हुए विषयों का निर्माण की किन्ही तीन विधियों का वर्णन कीजिए।

6.8 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (2), 2. (3) 3. (2) 4. (3) 5. (2)

6. (3) 7. (2) 8. (1) 9. (1) 10. (2)

6.9 संदर्भ एवं इतर पाठ्य सामग्री

1. Dhyani, Pushpa (1999) Library Classification. Delhi : Ess Ess Publication.
2. Fosket, A. C. (1971). Subject approach to information. London Clive bingley.
3. Mann, Margaret. (1962). Introduction to classification. A. L. A. p.33
4. Mills. J. (1962). Modern outlines of library classification. Bombay Asia Publication House.
5. Neelmeghan, A. (1973). Basic Subject Libsc. paper F.
6. Ranganathan, S. R. (1962). Elements of Library Classification. Bombay : Asia Pub. House.
7. Ranganathan, S. R. (1989). Prolegomena to library classification. Ed. 3. Reprint. Srels. p. 58, 65, 77-78.
8. Richardson, E. C. (1901) Classification. Theoretical and practical. New York.
9. Sayers W.C.B. (1962). Mannual of classification Ed. 3. London.
10. Shera, J. H. (1965). Libraries and organisation of knowledge. London : Cross by lockwood.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

BLIS-03

ज्ञान संगठन एवं प्रक्रियाकरण

खण्ड

3

पुस्तकालय सूचीकरण सिद्धान्त व प्रकार

इकाई -7 5

पुस्तकालय सूचीकरण : परिभाषा, उद्देश्य एवं कार्य

इकाई -8 20

पुस्तकालय सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त

इकाई -9 43

केन्द्रीकृत एवं सहकारी सूचीकरण तथा संघ सूची

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 बी0 एन0 सिंह	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति - पाठ्यक्रम अभिकल्पन

डॉ0 पाण्डेय एस0 के0 शर्मा	अवकाश प्राप्त मुख्य ग्रंथालयी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली,
डॉ0 ए0 पी0 गक्खर	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इला0
डॉ0 यू0 सी0 शर्मा	एसोसियेट प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष, बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ0 सोनल सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ0 ए0 पी0 सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0संजीव सर्राफ	उपपुस्तकालयाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 टी0एन0 दुबे (सदस्य सचिव)	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक मण्डल

डॉ0 टी0 एन0 दुबे	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री आर0 जे0 मौर्य	सहायक ग्रन्थालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री राजेश गौतम	प्रवक्ता, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 यू0 एम0 ठाकुर	भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान संस्थान, पटना विश्वविद्यालय, पटना

परिमापक

डॉ0 वी0 पी0 खरे	एसोसिएट प्रोफेसर, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-978-81-921668-4-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ0 ए0 के0 सिंह, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मई 2011 मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-1 : पुस्तकालय सूचीकरण : सिद्धान्त व प्रकार

खण्ड परिचय

इस खण्ड के अन्तर्गत निम्न इकाईयाँ है। जिस पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि इस खण्ड में सूचीकरण से सम्बन्धित सभी तत्व मौजूद है। इन सभी तत्वों से परिचित होना अति आवश्यक है इनके बिना सूचीकरण को समझ पाना कठिन है।

इकाई-7 में सूचीकरण की परिभाषा, उद्देश्य एवं कार्य का वर्णन किया गया है। इसमें सूचीकरण की चर्चा पुस्तकालयों में अधिगृहीत प्रलेखों के संबंध में सूचना प्रदान करने वाले उपकरण के रूप में की गई है। इसमें आपको सूची और सूचीकरण से सम्बन्धित कुछ मौलिक विचारों से परिचित कराया गया है।

इकाई-8 में पुस्तकालय सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त की चर्चा की गई है जिसमें यह दर्शाया गया है कि सूची का नियामक सिद्धान्त क्या है? पुस्तकालय सूची के बारे में सम्पूर्ण जानकारी रखने हेतु सबसे पहले उसके नियम/सिद्धान्त को जानना आवश्यक है। पुस्तकालय सूची के नियामक सिद्धान्तों के बिना आपकी पुस्तकालय सूची के विषय में जानकारी अधूरी मानी जायेगी। इसलिए इस इकाई में पुस्तकालय सूची से सम्बन्धित नियम को बहुत ही सहज ढंग से बताया गया है जिसका अनुसरण कर अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इकाई-9 में केन्द्रीकृत सूची, सहकारी सूची एवं संघ सूची के बारे में बताया गया है। इन सभी सूचियों के बारे में जानना आवश्यक है। इन सभी सूचियों के तुलनात्मक अध्ययन की भी चर्चा की गई है जिससे कि यह स्पष्ट हो जाए कि इन तीनों सूचियों में क्या अंतर है। इन सभी सूचियों के लाभ-हानि को भी दर्शाया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप सभी केन्द्रीयकृत सूची सहकारी सूची और संघ सूची के तात्पर्य एवं इनके प्रार्दुभाव तथा उद्देश्यों को समझने में समर्थ हो सकेंगे। वास्तव में ये आधुनिक पुस्तकालय के लिए सबसे अधिक आवश्यक प्रतीत हो रहे है तथा भविष्य में पुस्तकालयों के लिए अवश्य वरदान सिद्ध होंगे।

इकाई -7: पुस्तकालय सूचीकरणः परिभाषा, उद्देश्य एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

7.0 विषय परिचय

7.1 उद्देश्य

7.2 सूची शब्द की उत्पत्ति

7.3 परिभाषाएँ

7.4 पुस्तकालय सूची का अभिप्राय

7.5 पुस्तकालय सूची के उद्देश्य और कार्य

7.6 सूचीकरण और वर्गीकरण

7.7 पुस्तकालयय सूची एवं पुस्तकालय विज्ञान के पांच सूत्र

7.8 पुस्तकालय अभिलेख, ग्रन्थसूचियाँ और व्यापार विवरणिकाएँ

7.9 सूचीकरण प्रक्रिया

7.10 सारांश

7.11 इकाई से संबंधित प्रश्न

7.12 अतिलघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

7.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 विषय परिचय (Introduction)

किसी भी ग्रन्थालय के लिए पुस्तकालय सूची एक अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण उपकरण है। यह पुस्तकालय के पाठ्यसामग्री को उपयोग करने में सहायता प्रदान करता है । पुस्तकालय सूची से पाठकों ओर पुस्तकालय कर्मियों दोनों को ग्रन्थ संग्रह को जानने व ग्रंथ खोजने की सुविधा मिलती है।

पुस्तकालय सूची उपयोगकर्ताओं को इस बात की जानकारी देती है कि क्या पुस्तकालय में वह प्रलेख उपलब्ध है जिसका लेखक, आख्या, विषय उपयोगकर्ता को मालूम हो। इसके अतिरिक्त यह पुस्तकालय में उपलब्ध एक दिये गये लेखक की सभी पुस्तकों या एक विषय की समस्त पुस्तकों या किसी ग्रन्थमाला से संबंधित जानकारी प्रदान करती है। इस प्रकार के उपकरण के निर्माण के लिए एक मानक संहिता या नियमों और प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है, जो सूचीकार को विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों के सूचीकरण के लिए दिशा निर्देश प्रदान करें।

पुस्तकालय प्रसूची एक पुस्तकालय विशेष में उपलब्ध पुस्तकों और अन्य प्रलेखों की सूची है। यह पुस्तकालय संग्रह की विषय वस्तु को पाठक के समक्ष प्रकट

करती है। सूचीकरण, पाठक को उसके वांछित प्रलेख की पहचान में सहयोग प्रदान करने के लिए प्रलेखों का विवरण देने की तकनीक है।

इस इकाई में हम आपको पुस्तकालय सूची और प्रसूचीकरण से संबंधित कुछ मूलभूत विचारों से परिचित कराएँगे। पुस्तकालय सूची के निर्माण और उत्पादन का उद्देश्य, उपयोगकर्ताओं को पुस्तकालय की विषय-वस्तु की पहचान करने में सहायता प्रदान करना है। पुस्तकालय सूची पहचानने, खोजने और पहुँचने में सहायता प्रदान करती है। पुस्तकालय सूची उपकरण के रूप में कार्य करती है।

7.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य पुस्तकालय सूची और पुस्तकालय सूचीकरण से संबंधित कुछ मौलिक विचारों से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन से आप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त करेंगे -

- सूची शब्द की उत्पत्ति के संबंध में,
- पुस्तकालय पुस्तकालय सूची की परिभाषा एवं अभिप्राय से संबंधित,
- सूचीकरण प्रक्रिया के बारे में,
- पुस्तकालय अभिलेखों, ग्रन्थसूचियों और व्यापार विवरणिकाओं के तुलनात्मक अध्ययन के संबंध में,
- पुस्तकालय सूची के कार्यों के विषय में,
- पुस्तकालय सूची के संदर्भ में पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्र ।

7.2 सूची शब्द की उत्पत्ति (Origin of Catalogue)

हिन्दी भाषा के सूची शब्द को अंग्रेजी भाषा में 'कैटलॉग' (Catalogue) में कहते हैं। 'कैटलॉग' (Catalogue) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के एक वाक्यांश कटलाग्स (KATA-LOGUS) से हुई है। कट (KATA) का अर्थ है 'अनुसार' और लोगस (LOGUS) के विभिन्न अर्थ है। जैसे - 'क्रम' शब्द तथा विवेक या तर्क - संगत आदि।

इस प्रकार कटलाग (Katalogue) शब्द का पूर्ण अर्थ किसी तर्क के अनुसार प्रदर्शित करना हुआ। Katalogus से यह शब्द धीरे धीरे Catalogue शब्द में परिवर्तित हो गया जो आज इसी वर्तनी एवं उच्चारण (Spelling and pronunciation)से सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित है।

7.3 सूची की परिभाषाएँ (Definitions of Catalogue)

पुस्तकालय सूची की परिभाषाएं विभिन्न प्रकार से दी गई हैं -

(i) जेम्स डफ ब्राउन के अनुसार,''पुस्तकों एवं उसमें वर्णित विषय सामग्री खोजने

के लिए सूची एक व्याख्यात्मक, तर्कसंगत, सुव्यवस्थित तालिका तथा कुंजी है और किसी विशिष्ट ग्रन्थालय में संग्रहित पुस्तकों तक ही सीमित रहती है।''

(ii) डी.एम.नोरिस के शब्दों में, ''सूची एक ऐसा उपकरण है जो कम समय में पुस्तकालय के संकलन का अधिक से अधिक ज्ञान करा देती है।''

(iii) ऑक्सफोर्ड न्यू इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, ''किसी सामान्य तालिका से सूची भिन्न होती है, क्योंकि इसमें सम्मिलित मदों का, आनुवर्णिक क्रम में, सुसंम्बद्ध एवं सुनियोजन व्यवस्थापन होता है और बहुधा इसमें मदों की पहचान हेतु उनका विवरणात्मक ब्यौरा दिया जाता है।''

(iv) जॉली के मतानुसार, ''सूची पुस्तकालय की पुस्तकों के विषय में बताने का एक उपकरण है।''

(v) डॉ. एस.आर. रंगनाथन के अनुसार, ''सूची मुद्रित या हस्तलिखित हो सकती है। यह पत्रकों या निर्बद्ध पत्रों के रूप में हो सकती है।''

उपरोक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सूची पुस्तकालय में संग्रहित सभी प्रलेखों का सुनिश्चित योजनाबद्ध उल्लेखित अभिलेख है जिसकी सहायता से ग्रंथालय में संग्रहित पाठ्य-सामग्रियों को सरलतापूर्वक खोजा जा सकता है। इसलिए इसे पुस्तकालय की चाभी कहा गया है। इसमें पाठ्य सामग्री के सम्बन्ध में समस्त सूचनाएं दी जाती है। इससे निधानी (Shelves) पर पुस्तक का निर्धारित स्थान भी ज्ञात होता है। यह किसी विशिष्ट पुस्तकालय की पाठ्य सामग्री तक ही सीमित रहती है।

7.4 पुस्तकालय प्रसूची का अभिप्राय (Meaning of Library Catalogue)

पुस्तकालय द्वारा सामान्यतः पाठ्य और संदर्भ सामग्री विभिन्न भौतिक स्वरूपों में अधिगृहित की जाती है। जिसका उपयोग पाठको द्वारा अध्ययन, निर्देश, अनुसंधान के लिए किया जाता है। सामग्री के लगातार अध्ययन हेतु उपयोग अथवा अन्य कारणों से किसी निर्धारित समय पर उसमें से कुछ सामग्री पुस्तकालय में फलकों पर उपलब्ध नहीं होती है।

उपरोक्त कारणों से पुस्तकालय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने प्रलेख संग्रह की जानकारी पाठकों को प्रदान करने की दृष्टि से, सामग्री के भौतिक स्वरूपों को विचार किए बिना अधिगृहित सम्पूर्ण सामग्री के लिए, एक सार्वजनिक अभिलेख का निर्माण करें।

पाठ्य सामग्री और संदर्भ सामग्री विभिन्न भौतिक स्वरूपों में होती है जैसे मुद्रित प्रलेख या यंत्र पठनीय स्वरूपों में। आवश्कतानुसार उन्हें पुस्तकालय मे विभिन्न स्थानों जैसे अनुभागों, कक्षों, तलों में स्थित फलकों पर व्यवस्थित किया जाता है।

इस तरह पुस्तकालय सूची का प्रमुख उद्देश्य लेखक, विषय, आख्या और अन्य अभिगमों के द्वारा पुस्तकालय के संग्रह के उपयोग में पाठकों की सहायता करना

है। पुस्तकालय सूची का मूल उद्देश्य पुस्तकालय के प्रलेख संग्रह की संदर्शिका के रूप में कार्य करना है। मूल रूप से यह पुस्तकालय में उपलब्ध प्रलेख सामग्री को पाठकों के समक्ष प्रदर्शित करती है और उन्हें इस बात की जानकारी देती है कि उनकी आवश्यकता की सामग्री पुस्तकालय में उपलब्ध है या नहीं? पुस्तकालय संग्रह की कुंजी के साथ ही पुनर्प्राप्ति उपकरण का कार्य भी करती है।

7.5 पुस्तकालय सूची के उद्देश्य एवं कार्य (Objective and Function of Library Catalogue)

उद्देश्य

वर्तमान समय के पुस्तकालय में पाठ्य सामग्रियों का संकलन तथा व्यवस्थापन ज्ञान प्रसार के लिए किया जाता है जिसको सम्पन्न करना सूची का प्रमुख उद्देश्य है। सूची का उद्देश्य पाठक की आवश्यकता को पूरा करने के लिए सम्पूर्ण संकलन या इसके किसी एक भाग का विवरण प्रस्तुत करना होता है। सी.ए.कटर ने सूची के जिन उद्देश्यों का निर्धारण 1876 में किया था वे आज भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित और आवश्यक माने जाते हैं। उन्होंने सूची के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये थे -

- किसी व्यक्ति को उसका वांछित ग्रंथ प्राप्त करने में समर्थ बनाना यदि उसे किसी पुस्तक के लेखक, आख्या और/अथवा विषय का ज्ञान है।
- यह मालूम हो कि पुस्तकालय में किसी लेखक द्वारा किसी विशिष्ट विषय पर तथा किसी विशिष्ट प्रकार के साहित्य पर कौन-कौन सी पुस्तकें उपलब्ध हैं।
- किसी पुस्तक के संस्करण विशेष तथा उसके साहित्यिक या विषयानुसार विशेषता की दृष्टि से चयन करने में सहायता प्रदान करता है।

सूची का प्रथम उद्देश्य - पुस्तकालय में पुस्तकों की जानकारी का समुचित उल्लेख कर अभिज्ञान के लिए किया जाना है। जिससे उपयोगकर्ता इस जानकारी के आधार पर उस पुस्तक को प्राप्त करने में सफल हो सकें ।

सूची का द्वितीय उद्देश्य - पुस्तकालय में उपलब्ध किसी लेखक, सम्पादक, अनुवादक आदि की सभी कृतियों तथा एक विषय की अनेक कृतियों को एक साथ व्यवस्थित करने में सहायक होता है। कोई भी उपयोगकर्ता बड़े आसानी से किसी लेखक या विशिष्ट विषय की सभी कृतियों का ज्ञान सूची के माध्यम से शीघ्र ही प्राप्त कर सकता है।

सूची के तृतीय उद्देश्य - सूची के अन्तर्गत प्रलेखों के संस्करण विवरण का उल्लेख होता हैं जिससे किसी कृति के विभिन्न संस्करणों का ज्ञान प्राप्त हो सके और साथ ही ग्रन्थों की विषय-वस्तु तथा विशेषताओं का उल्लेख करके उनके वरण में सहायता प्रदान करना है।

इस प्रकार सूची का मुख्य उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से पुस्तकालय में पुस्तकों तथा अन्य प्रलेखों की उपलब्धता का ज्ञान कराना है। इस दृष्टि से सूची को प्राप्ति तालिका

कहते हैं। जो पुस्तकालय में किसी पुस्तक आदि की पहचान कराती है। तथा उसके स्थान को सूचित करती है। अतः पुस्तकालय सूची को इस तरह से निर्मित किया जाना चाहिए जिससे अनेक प्रकार से सेवा प्रदान किया जा सके और अन्य पाठ्य सामग्रियों के अभिज्ञान तथा पुनर्प्राप्ति में सुविधा प्राप्त हो सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति केवल एक प्रकार की सूची द्वारा संभव नहीं है। परिणामतः अनेक प्रकार की सूचियाँ नियमबद्ध की गई हैं जिसका अनुसरण पुस्तकालयों में पाठकों की सुविधा के लिए किया जाता है।

डॉ. रंगनाथन के अनुसार पुस्तकालय सूची के उद्देश्य -

- प्रत्येक पाठक को उसकी पुस्तक मिले।
- प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले।
- पाठक और कर्मचारी का समय बचे।

उपरोक्त उद्देश्य सरल है तथा ग्रन्थालय विज्ञान के नियम के आधार पर आधारित है।

मिस आई.जी.मज ने अपनी पुस्तक "**केटलागर एण्ड कलासीफायर इअर बुक**' (Cataloguer and Classifier year book) में सूची का उद्देश्य एक ऐसे उपकरण का निर्माण करना बताया है जो पाठक को निम्न चार विभिन्न विषय बिन्दुओं के संबंध में सही सूचना प्रदान करता है -

(1) पुस्तकालय में उपलब्ध किसी भी लेखक विशेष की पुस्तकों तथा अन्य पृथक पृथक रूप में प्रकाशित समस्त रचनाओं की सारणी।

(2) क्या पुस्तकालय में कोई विशिष्ट ग्रन्थ उपलब्ध है जिसके संबंध में पाठकों को कोई ऐसे शीर्षक के बारे में सही सूचना प्राप्त है जिसके अन्तर्गत एक आधुनिक सूची संहिता उसको प्रविष्ट करेगी।

(3) पुस्तकालय में उपलब्ध किसी विषय विशेष पर रचित अलग अलग रूप में प्रकाशित समस्त रचनाओं की सम्पूर्ण तालिका।

(4) उस पुस्तक से संबंधित समग्र वांङ्मयी विवरण जिसकी आवश्यकता एक सामान्य उपयोगकर्ता को होती है।

कार्य -

पुस्तकालय सूची का अत्यंत आवश्यक कार्य पाठकों को उनकी अभीष्ट पुस्तक प्रदान करना है। जो मात्र सूची के द्वारा ही सम्भव है। डॉ. रंगनाथन के अनुसार प्रसूची का कार्य ग्रन्थालय विज्ञान के सूत्रों के अनुसार पुस्तकालय की सामग्रियों का प्रयोग करवाने में सहायता प्रदान करना है। मारग्रेट मान ने प्रसूची के निम्नांकित कार्य निश्चय किये हैं -

→ पुस्तकों के लेखक प्रविष्टि को इस प्रकार व्यवस्थित करना जिससे किसी भी लेखक की सभी कृतियाँ एक ही नाम से एक साथ एक ही स्थान पर प्राप्त हो सकें।

→ पुस्तकालय में उपलब्ध प्रत्येक पुस्तक को अभिलेख के द्वारा प्राप्त कराना है।

→ विषय संलेख को इस प्रकार से व्यवस्थित करना जिससे एक प्रकार के विषय एक ही स्थान पर एक साथ आ सके तथा संबंधित विषय समन्वित हो जाये।

→ प्रत्येक कृति तथा उसके किसी अंश को उस कृति के विशिष्ट विषय के अन्तर्गत उसका अभिलेख प्रस्तुत करना है।

→ उपयोगकर्ताओं को एक संलेख से दूसरे संलेख की ओर निर्दिष्ट करना आदि।

→ किसी विशिष्ट विषय पर पुस्तकालय में कौन-कौन सी पुस्तकें उपलब्ध हैं और वे कहाँ रखी हैं?

7.6 सूचीकरण और वर्गीकरण (Cataloguing and Classification)

सूचीकरण और वर्गीकरण पुस्तकालय में होने वाली दो प्रक्रियाएं हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं का मूल उद्देश्य पुस्तकालय के उपयोगकर्ताओं को उनके अध्ययन और अनुसंधान के लिए आवश्यक सामग्री, यदि पुस्तकालय में उपलब्ध है, तो खोजने और चयन करने में सहायता प्रदान करना है। एक सीमा तक ये दोनों प्रक्रियाएं एक दूसरे की सहायक एवं पूरक है।

वर्गीकरण कार्य में पुस्तक के विषय का निर्धारण किया जाता है और इस प्रकार पुस्तकों को पुस्तकालय के निधानियों पर वर्गानुसार व्यवस्थित किया जाता है। पुस्तकें भौतिक सत्ताएं हैं इसलिए इन्हें पुस्तकालय की निधानियों पर केवल एक ही स्थान पर रखा जा सकता है। जब पुस्तक का संबंध एक ही विषय से होता है। तब यह पद्धति उपयोगकर्ताओं के लिए उपयोगी होती हैं। परन्तु जब एक पुस्तक दो या अधिक मुख्य विषयों या मुख्य विषयों के विभाजनों से संबंधित हो तब हम पुस्तक को पुस्तकालय में निधानियों पर दो स्थानों पर नहीं रख सकते।

आदर्शतः पुस्तक के विषय को देखते हुए ऐसी पुस्तक को दो स्थानों पर रखना चाहिए। परन्तु यह संभव नहीं है किसी पुस्तक को केवल एक ही स्थान पर रखा जा सकता है। पुस्तकालय वर्गीकरण दूसरे विषय की जानकारी पाठकों को देने के लिए वर्गीकरण की वर्ग संख्या के अन्तर्गत एक वैश्लेषिक संलेख तैयार किया जाता है। इस प्रकार के वैश्लेषिक संलेखों का निर्माण उन सभी पुस्तकों के लिए किया जाता है जो दो या दो से अधिक विषयों या बहु विषयों से संबंधित होती है। अतः सूचीकरण वर्गीकरण का पूरक है। यही स्थिति संकलित/संपादित संग्रहों की भी है। इस स्थिति में लेखक वैश्लेषिक संलेख का निर्माण पाठकों को विभिन्न लेखकों के योगदानों की जानकारी प्रदान करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार हमने देखा कि सूचीकरण और वर्गीकरण दोनों एक दूसरे के सहायक और पूरक हैं। दोनों ही प्रक्रियाएं संयुक्त रूप से पुस्तकालय में संग्रहित प्रलेखों के सम्पूर्ण अंतर्विषयों की जानकारी उपयोकर्ताओं को देती है। एक पुस्तकालय प्रसूची में प्रायः प्रलेखों के अभिगम और खोज के लिए ग्रंथपूरक डाटा के अतिरिक्त अन्य सूचनाएं सम्मिलित होती है। टिप्पणी अनुच्छेद,

पृष्ठादि विवरण इत्यादि विषयों पर प्रलेखों को खोजने के लिए उपयोगी आरम्भिक बिन्दु प्रदान करते हैं।

पुस्तकालय सूची का उपयोग प्रलेखों से संबंधित पाठकों के अनेक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए संदर्भ स्रोत के रूप में भी किया जाता है। वस्तुतः पुस्तकालय सूची का उपयोग अनेक बार प्रलेखों से संबंधित सूचनाओं की जिज्ञासाओं के उत्तर प्रदान करने के लिए आरंभिक स्रोत के रूप में किया जाता है। जैसे एक लेखक विशेष द्वारा रचित पुस्तके, एक विषय की पुस्तकों या एक लेखक का पूरा नाम तथा जन्म या मृत्यु वर्ष, छद्मनामधारी लेखक का वास्तविक नाम या संस्था का पूरा नाम इत्यादि से संबंधित जिज्ञासाओं के उत्तर पुस्तकालय सूची की सहायता से दिए जा सकते हैं।

7.7 पुस्तकालय सूची एवं पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्र (Library Catalogue and Five Laws of Library Science)

पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्र एक पुस्तकालय प्रणाली की अभिकल्पना और संचालन के लिए मूलभूत पथ-प्रदर्शक सिद्धान्तों के एक पिंड का गठन करते हैं। वास्तव में पुस्तकालय की सभी प्रक्रियाओं की उत्पत्ति इन्हीं पाँच सूत्रों से हुई है। पुस्तकालय प्रसूची के निर्माण और इसकी रचना के लिए पाँच सूत्रों में उपयोगी निर्देश उपलब्ध हैं।

प्रथम सूत्र, ''पुस्तकें उपयोग के लिए हैं।'' पाठकों को अनेक प्रकार की सुविधाएं एवं पाठक सेवाएं प्रदान कर अधिकतम उपयोग के लिए पुस्तकालय संग्रह के संगठन की आवश्यकता को इंगित करता है। इन्हीं सुविधाओं में से एक पुस्तकालय प्रसूची है जो पाठकों के लिए पुस्तकालय के सम्पूर्ण संग्रह का दरवाजा खोलती है।

पुस्तकालय सूची का भौतिक स्वरूप लचीला होना चाहिये ताकि समय समय पर पुस्तकालय में सम्मिलित होने वाले नवीन प्रलेखों के संलेखों को उसमें सम्मिलित कर उसे अद्यतन रखा जा सके। इसी प्रकार, प्रलेख की पहचान के लिए प्रलेख से संबंधित पर्याप्त सूचना संलेख में प्रदान की जानी चाहिए। अपनी रूचि के प्रलेख के चयन में पाठकों को सहयोग प्रदान करने हेतु संलेख में व्याख्याएं और विभिन्न टिप्पणियाँ प्रदान की जानी चाहिए। स्पष्टतः इस अत्यावश्यक ओर अनिवार्य उपकरण के अभाव में पाठकों को संग्रह के उपयोग में कठिनाई होती है। अतः पुस्तकालय प्रसूची अत्यावश्यक है।

द्वितीय सूत्र, ''प्रत्येक पाठक को उसकी पुस्तक मिले'' : पुस्तकालय सूची को प्रत्येक पाठक को उसकी रूचि की पुस्तक के बारे में जानकारी देना चाहिए। पुस्तकों के विषय प्रकार के वैश्लेषिक प्रविष्टियों का होना आवश्यक है। अगर वैश्लेषिक प्रविष्टि का निर्माण न किया जाय तो पाठक पुस्तक विशेष के उपयोग से वंचित रह जायेंगे क्योंकि आख्या और मुख्य प्रविष्टि से पुस्तक विशेष की विषय वस्तु की जानकारी नहीं हो पाती है।

तृतीय सूत्र, ''प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले'' प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक प्राप्त करने में सूची का विशेष महत्व है। इस हेतु आवश्यक है कि सूची

परिपूर्ण एवं अद्यतन हो तथा इसमें ग्रंथमाला प्रविष्टि, विश्लेषणात्मक प्रविष्टियाँ, अन्तर्विषयी प्रविष्टियों और नामान्तर निर्देशी प्रविष्टियों का निर्माण किया जाए। यह प्रविष्टियाँ प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक उपलबध कराने में सहायक होगी।

चतुर्थ सूत्र, ''पाठकों का समय बचे'' : इस सूत्र में समय को अधिक महत्व दिया गया है। सूची केवल अभिकल्प एवं संरचना में ही सरल नहीं होनी चाहिये, बल्कि उसे पाठक के समय की बचत भी करनी चाहिए। प्रलेख के प्रत्येक अभिगम अर्थात लेखक, आख्या, विषय इत्यादि को सूची में दिया जाना चाहिए। व्यक्तियों, देशों, विषयों और संस्थाओं के परिवर्तित नामों के लिये ''देखें'', और इसे भी देखें'' की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसी प्रकार पुस्तकालय सूची के उपयोग हेतु मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए पुस्तकालय में नए पाठकों के लिए परिचायक पाठ्यक्रम (ओरियेन्टेशन कोर्स) आयोजित किये जाने चाहिए। सेवा का सार उसकी गति है।

पंचम सूत्र, ''पुस्तकालय एक वर्धनशील संस्था है : इसमें प्रकाशन की प्रकृति एवं विविधता, प्रलेखों के स्वरूपों, पाठकों की आवश्यकताओं ओर इसी प्रकार वातावरणीय कारणों में होने वाले परिवर्तनों और विकास को दृष्टि में रखकर, सूची के पूर्ण विस्तृत सापेक्षित महत्व की दृष्टि से पुस्तकालय को निर्देश प्रदान किये जाते हैं। नवागत ग्रंथों की सूचना को उपयुक्त स्थान पर सम्मिलित करने का प्रावधान भी किया जाता है जिससे प्रसूची क्रमबद्ध रहे। कम्प्यूटर और संचार की प्रौद्योगिकियों के आगमन ने पुस्तकालय सूची के भौतिक स्वरूपों और उनकी आन्तरिक संरचना दोनों में ही व्यापक परिवर्तन किए हैं।

7.8 पुस्तकालय अभिलेख, ग्रंथसूचियां और व्यापार विवरणिकाएँ (Library Document, Bibliographies and Trade Bibliographies)

पुस्तकालय में अन्य अभिलेख और उपकरण होते हैं, जो पाठ्य और संदर्भ सामग्री की खोज तालिका के रूप में कार्य करते हैं। परन्तु पुस्तकालय सूची से जब इसकी तुलना की जाती है तो वे इससे कई प्रकार से भिन्न होते हैं ।

पुस्तकालय अभिलेख : परिग्रहण पंजी और फलक सूची आदि

ग्रन्थसूचियाँ : राष्ट्रीय ग्रंन्थसूचियाँ और विषय सूचियाँ आदि।

व्यापार विवरणिकाएँ : प्रकाशकों और ग्रंथ विक्रेताओंकी सूचियां इन सभी अभिलेखों और उपकरणों में उपलब्ध ग्रंथ परक सूचनाएं पुस्तकालय सूची में उपलब्ध सूचनाओं की भाँति ही होती है परन्तु इसके द्वारा भिन्न भिन्न कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

पुस्तकालय अभिलेख -

पुस्तकालय में विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने संग्रह के लिए अनेक प्रकार के अभिलेख तैयार किये जाते हैं। उन अभिलेखों में से कुछ है : परिग्रहण पंजी, फलक सूची, पत्रिका संग्रह पंजी इत्यादि। परिग्रहण पंजी, पुस्तकालय में क्रय, विनियम या उपहार रूप से अर्जित पाठ्य और संदर्भ सामग्री का तिथिवार अभिलेख।

परिग्रहण पंजी में अधिग्रहण की तिथि, पुस्तक की क्रम संख्या अर्थात परिग्रहण संख्या, आख्या,संस्करण, प्रकाशक, प्रकाशन तिथि, मूल्य अधिग्रहण की विधि, आपूर्तिकर्ता का नाम आदि से संबंधित सूचना का विवरण दिया जाता है। यह पुस्तकालय द्वारा अर्जित पुस्तकों की अधिकृत अधिग्रहण सूची के रूप में कार्य करती है यह संग्रह का तिथिवार अभिलेख है। इसमें पुस्तकों का ब्योरा क्रम संख्यानुसार होता है विषयों द्वारा खोजने के लिए खोज उपकरण के रूप में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है। किसी पुस्तक विशेष को खोजने के लिए सम्पूर्ण परिग्रहण पंजी का एक एक करके अवलोकन करना होगा जो अत्यधिक समय साध्य कार्य है।

परिग्रहण पंजी में से पुस्तक खोजने के लिए उसकी परिग्रहण संख्या की जानकारी अनिवार्य है। परिग्रहण पंजी का उपयोग पुस्तक से संबंधित सूचना के ऐसे अंशों की खोजने के लिए किया जाता है जो अन्य किसी अभिलेख में उपलब्ध नहीं हो। यह पुस्तकालय का स्थायी अभिलेख भी है और पुस्तक भंडार की पंजी के रूप में कार्य करती है। परिग्रहण पंजी पुस्तकालय सूची से भिन्न है। यद्यपि इसमें प्रलेख के संबंध में सम्पूर्ण ग्रंथपरक डाटा अंकित होता है फिर भी यह पुस्तकालय प्रसूची के कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकती।

फलक सूची पुस्तकालय के भंडारण का अभिलेख है।जिसमें अभिलिखित पुस्तकों के ग्रंथपरक डेटा को ठीक उसी रूप में व्यवस्थित किया जाता है, जिस प्रकार पुस्तकों को फलकों पर पुस्तक के विभिन्न कक्षो, सभा भवनों या तलों में व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक पुस्तक का प्रतिनिधित्व एक पत्रक द्वारा किया जाता है जिसमें आह्वान संख्या (कॉल नम्बर) लेखक का नाम, आख्या, संस्करण, खण्ड संख्या, प्रति संख्या, परिग्रहण संख्या और एक पुस्तकालय के लिए आवश्यक समझी जाने वाली इसी प्रकार की अन्य सूचनाएॅं अंकित की जाती हैं। आह्वान संख्या में वर्ग संख्या, पुस्तक संख्या और स्थान निर्धारण चिन्ह का प्रतिनिधित्व होता है। इस संख्या द्वारा पाठक अपनी वांछित पुस्तक को फलक पर सरलता से प्राप्त कर सकता है। इसलिए व्यवस्थापन का यह क्रम फलक पर पुस्तकों के व्यवस्थापन को दर्शाता है। एक फलक सूची इस प्रकार मूल रूप में तालिका के रूप में कार्य करती है और संग्रह के संचालन को नियंत्रित करती है। पुस्तकालय के पुस्तक भंडार की जाँच के लिए यह एक महत्वपूर्ण उपकरण है। फलक सूची अनेक प्रकार से पुस्तकालय सूची के सदृश हैं। यह वर्गीकृत सूची के रूप में कार्य करती है। परन्तु इसके कार्य पुस्तकालय सूची के कार्यों से भिन्न होते हैं। यह लेखक आख्या या विषय का अभिगम प्रदान नहीं करती है।

पत्रिका संग्रह पंजी पुस्तकालय में एक अन्य उपयोगी खोज उपकरण है, जिसमें शोध पत्रिकाओं की आख्याओं के उपलब्ध सजिल्द और जिल्द रहित खंडों की विस्तृत सूचना प्रदान की जाती है। निश्चय ही इस पंजी की सूचना को पुस्तकालय में स्थानान्तरित किया जाता है। परन्तु अलग से एक पंजी का निर्माण भी किया जाता हैं चूँकि यह पंजी पत्रिकाओं तक ही सीमित हैं । इसलिए यह पुस्तकालय सूची के रूप में काम में नहीं लायी जा सकती है।

इस तरह पुस्तकालय सूची पुस्तकालय के संग्रह के उपयोग के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और एक अद्वितीय एवं विशिष्ट उपकरण है यह प्रलेख को ढूँढने में, चाहे खोज लेखक या आख्या या विषय द्वारा ही क्यों न की जाए सहायक है।

ग्रन्थसूचियाँ

पुस्तकालय प्रसूची और ग्रंथसूची एक दूसरे से भिन्न है क्योंकि ये भिन्न भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करती है। ग्रंथसूची प्रलेखों की एक व्यवस्थित सूची है जिसे एक विशेष उद्देश्य से तैयार किया जाता है। सामान्यतः इसका उद्देश्य पाठकों को उनकी जिज्ञासा या अध्ययन के क्षेत्र से संबंधित प्रलेखों की जानकारी प्रदान करने के लिए विस्तृत या चयनित सूची तैयार करना है। जैसे - क्यूमेलेटिव बुक इन्डेक्स (Cumulative Books Index) या शोध पत्रिका के लेखों की हो सकती है जैसे - के.जी.त्यागी द्वारा संपादित इण्डियन एजूकेशन इन्डेक्स (Indian Education Index (1947-1978) हो सकती है। ग्रंथसूची एक भाषा विशेष में प्रकाशित प्रलेखों की ग्रंथसूची भी हो सकती है। एक राष्ट्र में प्रकाशित प्रलेखों की भी हो सकती है जैसे भारतीय राष्ट्रीय ग्रंथसूची (Indian National Bibliography) ग्रंथसूची एक विशिष्ट विषय पर या एक या अधिक भाषाओं में एक समय विशेष से संबंधित प्रलेखों की हो सकती है। एक ग्रन्थसूची का विषयक्षेत्र और विस्तार क्षेत्र विस्तृत या चयनित हो सकता है।

ग्रन्थसूचियों में पुस्तकों की परिग्रहण संख्या और ग्रंथ स्वामित्व वाले पुस्तकालय का नाम नहीं दिया जाता। पुस्तकों को पढ़ने के लिए पाठक को पुस्तकालय सूची का उपयोग करना होता है। जिससे पाठक को उसकी वांछित पुस्तक के पुस्तकालय में उपलब्ध होने की जानकारी प्रलेख की आहवान संख्या (Call Number) से होती है। आह्वान संख्या पाठक को पुस्तकालय में फलक पर पुस्तक की स्थिति का बोध कराती है।

ये ग्रन्थसूचियां पाठकों के सभी अभिगमों विषय और आख्या की पूर्ति करती है और व्याख्यात्मक भी हो सकती है। इस प्रकार की ग्रंथसूचियों की रचना समान्यतया विशेषज्ञों या पुस्तकालय के तकनीकी प्रशिक्षित कर्मियों द्वारा की जाती है। इनका निर्माण व्यक्तिगत पुस्तकालयों द्वारा अपने पाठकों को सहायता प्रदान करने हेतु स्थानीय स्तर पर भी किया जा सकता है। इस प्रकार की स्थिति में वे पाठकों की विशिष्ट रूचि वाले प्रलेखों की चयनित सूची निर्मित कर सकते है। ग्रंथसूचियां अधिकाधिक होती है। और समान्यतया साहित्य खोज में संदर्भ उपकरण के रूप में प्रयुक्त होती है। ग्रंथसूचियों के निर्माण के लिए आवश्यक प्रलेख के परिगणन और मूल्यांकन की विद्वता और आलोचनात्मक योग्यता संकलन कर्ता में होनी चाहिए। ग्रंथसूची और पुस्तकालय सूची में मौलिक अंतर यह है कि ग्रंथसूची हमें यह तो बताती है कि कौन से प्रलेख प्रकाशित हुए हैं परन्तु यह जानकारी नहीं होती कि पढ़ने के लिए वे कहाँ उपलब्ध है।

यद्यपि पुस्तकालय सूची एक पुस्तकालय विशेष के ग्रंथपरक स्रोतों को अभिलेखित, वर्णित और अनुक्रमणित करती है। फिर भी लाइब्रेरी ऑफ कॉंग्रेस, दि ब्रिटिश

लाइब्रेरी, दि नेशनल लाइब्रेरी, कोलकाता जैसे विश्व के विशाल राष्ट्रीय पुस्तकालय की मुद्रित प्रसूचियां साहित्य खोज, संदर्भ और सूचीकरण कार्य के लिए श्रेष्ठ ग्रन्थपरक स्त्रोतों के रूप में प्रयुक्त होती हैं। इन प्रसिद्ध राष्ट्रीय पुस्तकालयों में खंण्डों, विविध और उत्कृष्ठ सामग्री में वृद्धि होती है। उनकी सूची संलेखों का श्रेष्ठ एवं विद्वता और कुशलतापूर्वक निर्माण और प्रस्तुतीकरण इन सूचियों को निर्विवाद रूप से अधिकाधिक संदर्भ उपकरणों का रूप प्रदान करता है।

इस तरह जहाँ पुस्तकालय सूची पुस्तकालय के संग्रह की कुंजी है, वहीं ग्रंथसूची मात्र प्रलेखों के विषय क्षेत्र और विस्तार के क्षेत्र इत्यादि से संबंधित विस्तृत या चयनित सूची है और इसलिए यह पुस्तकालय सूची के कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकती।

पुस्तकालय सूची के संदर्भ में सूची संलेख और अनुक्रमणिका संलेख में सामान्यतया यह अन्तर है कि प्रलेख के संबंध में कुछ विशिष्टताओं की व्याख्या की जाती है जबकि अनुक्रमणिका संलेख केवल लेखक या विषय या आख्या संलेख की स्थिति का निर्धारण करता है। एक प्रसूची विशेषकर एक पुस्तकालय सूची एक ऐसा अभिलेख है जिसमें पुस्तकालय में अर्जित प्रलेखों का विवरण होता है। जबकि अनुक्रमणिका, सूची के ग्रंथपरक संलेखों तक लेखक, विषय, आख्या द्वारा अभिगम प्रदान करती है।

व्यापार विवरणिकाएँ

इन पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों द्वारा सामयिक रूप से विवरणिकाओं का निर्माण किया जाता है और इन्हें उनके द्वारा पुस्तकालयों में बिक्री प्रचार गतिविधियों के रूप में नियमित रूप से भेजा जाता है। ये सूचियाँ या तो मुद्रित रूप में या तो अनुलिखित शीट के रूप में होती है। पुस्तक विक्रेताओं की विवरणिकाओं में उनके यहाँ उपलब्ध विभिन्न प्रकाशकों के पुराने और नवीन प्रकाशनों को शामिल किया जाता है। पुस्तकालय में पुस्तकों के चयन में सहायता प्रदान करने के लिए इन विवरणिकाओं का संचयन भी किया जाता है।

सूचियों के लेखक और आख्या संलेखों के लिए विषय समूह के अन्तर्गत वर्णानुक्रम में व्यवस्थित किया जाता है। ये पुस्तकालय सूची की भाँति पाठकों की विभिन्न अभिगमों की पूर्ति नहीं करती है। पुस्तकालयों द्वारा इनका उपयोग अपने संग्रह निर्माण क्रियाकलापों के लिए ही किया जाता है। पुस्तकालयों में उनकी पुस्तक चयन गतिविधियों में सहायता प्रदान करने के लिए व्यावसायिक संघों और संस्थाओं द्वारा भी विभिन्न विषय समूहों पर प्रायः चयनित प्रसूचियों या विवरणिकाओं का प्रकाशन सामयिक रूप में किया जाता है। निर्ष्कषतः ये विवरणिकाएँ या प्रसूचियां पुस्तकालय प्रसूचियों से भिन्न है। यद्यपि इनमें प्रलेखों के ग्रंथपरक डेटा प्रदान किये जाते हैं। इनके द्वारा पाठकों को नवीन पुस्तकों के प्रकाशन के संबंध में जानकारी दी जाती है। परन्तु यह जानकारी नहीं दी जाती है कि वे उन्हें कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं।

7.9 सूचीकरण प्रक्रिया (Cataloguing Process)

सूचीकरण अभिलेख के निर्माण की वह कला है जिससे उपयोगकर्ता द्वारा प्रलेख को शीघ्रता से पहचाना और खोजा जाता है। प्रलेख को पहचानने और खोजने के बाद पाठक इस स्थिति में होता है कि वह अपने उपयोग की दृष्टि से उसकी उपयुक्तता का परीक्षण कर सकता है। निःसन्देह प्रसूची प्रलेख की आख्या, उपआख्या, विषय और ग्रंथमाला के संबंध में सूचना प्रदान करती है। ये सूचनाएं पाठक की सहायता उसकी अपनी विशिष्ट आवश्यकता, जो उसके मानस में हैं, की उपयुक्तता के निर्धारण में करती हैं।

पुस्तकालय द्वारा पुस्तकालय सूची में अधिगृहित प्रलेखों के लिए विविध संलेखों का निर्माण किया जाता है पुस्तकालय सूची में दो प्रकार के संलेख होते हैं- मुख्य संलेख और इतर संलेख। मुख्य संलेख में प्रलेख से संबंधित विस्तृत सूचना दी जाती है। जबकि इतर संलेखों का निर्माण विभिन्न अभिगम बिन्दुओं जैसे लेखक, आख्या, विषय के अन्तर्गत किया जाता है और सामान्यतया प्रलेखों से संबंधित संक्षिप्त सूचना इनमें दी जाती है। इस प्रकार, सूचीकरण का संबंध संलेखों के निर्माण की प्रक्रिया से है।

प्रविष्टियों के निर्माण के लिए निम्नलिखित क्रियाएं अपनाई जाती हैं -

- मुख्य प्रविष्टियों, इतर प्रविष्टियों और मुख्य प्रविष्टियों के अनुच्छेद दो के शीर्षक का चयन और उपकल्पन।
- संलेखों के विभिन्न अनुच्छेदों में सूचना का अभिलेखन।
- लेखन शैली, विराम चिन्हों, बड़े अक्षरों के प्रयोग इत्यादि का निर्धारण।
- प्रविष्टियों का निर्माण।
- सभी प्रविष्टियों पर आह्वान संख्या लिखना।
- प्रसूची पत्रकों को फाइल करना।
- संदर्शक पत्रों का निर्माण करना।
- सूची में प्रविष्टियों का रख रखाव और उनको अद्यतन बनाए रखना।

प्रसूचीकरण में ये सभी प्रक्रियाएं और विधियाँ शामिल हैं। वर्षों से संहिताओं का विकास किया जा रहा है जिसमें पुस्तकालय सूची के निर्माण के लिए नियमों की व्याख्या की जाती रही है। सूचीकरण संहिताओं के विकास का इतिहास बहुत रोचक है। 1908 का एंग्लो अमेरिकन संहिता (Anglo American Code) 1949 का ए.एल.ए. (American Library Association (ALA)code) डॉ. रंगनाथन का वर्गीकृत सूचीकरण संहिता (Classified Catalogue Code (CCC)) और ए.ए.सी.आर. (Anglo American Cataloguing Rules(AACR))प्रथम और द्वितीय संस्करण कुछ प्रसिद्ध एवं प्रचलित सूची संहिताएं हैं। संहिताओं में पुस्तकालय सूची के निर्माण हेतु आवश्यक

प्रविष्टियों की संरचना के लिए मार्ग दर्शक सिद्धान्त दिये जाते हैं। इन संहिताओं में प्रदत्त नियमों के अनुपालन द्वारा पुस्तकालय सूची के उत्पादन और रखरखाव में सुगमता और परिशुद्धता होती है। सूची संहिता के अनुसरण द्वारा मानकीकरण किया जा सकता है। मानकीकरण विभिन्न पुस्तकालयों के मध्य सूची संलेखों के विनियम को सुगम बनाता है। पुस्तकालय गतिविधियों में कम्प्यूटरों का उपयोग और संसाधन सहभागिता, तंत्रों की स्थापना के संदर्भ में संगतता एक महत्वपूर्ण पहलू है।

डॉ.रंगनाथन के वर्गीकृत सूची संहिता (Classified catalogue code)के अतिरिक्त अन्य सभी सूची संहिताओं में लेखक तथा आख्या (Title) सूचीकरण के लिए नियमों का प्रावधान किया गया है। सी.सी.सी.ही एक ऐसी सूचीकरण संहिता है जिसमें विषय संलेखों के नियमों के प्रावधान के साथ विवरणात्मक सूचीकरण के लिए ग्रंथपरक मदों के चयन और उपकल्पन से संबंधित अतिरिक्त नियम प्रदान किये गये हैं। जिन पुस्तकालयों में सूचीकरण के लिए सी.सी.सी.(CCC) का उपयोग नहीं किया जाता है। वे सामान्यतः विषय अभिगमों की पूर्ति के लिए **लाइब्रेरी ऑफ कॉंग्रेस** सब्जेक्ट हेडिंस या **सियर्स लिसट आफ सब्जेक्ट हेडिंग्स** जैसी मानक विषय शीर्षक सूचियों का उपयोग करते हैं।

सूचीकारों के लिए दिशा-निर्देश

→ ग्रन्थालय सूची संलेखों में शामिल सूचना पर्याप्त होनी चाहिए, जो प्रत्येक प्रलेख के लिए लेखक, आख्या, अन्य सहकारकों के नामों, पुस्तकालयों के नामों इत्यादि जैसे पक्षों के लिए अभिगम बिन्दु प्रदान कर सके यह आवश्यक है कि पुस्तकालय द्वारा पाठकों के लिए पाठ्य सामग्री सूचियां निर्मित की जाएं।

→ सूचीकार को चाहिए कि वह पुस्तकालय सूची को हमेशा अद्यतन बनाए रखने का प्रयास करें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि सूची संलेखों इत्यादि की फाइलिंग से संबंधित प्रक्रिया अविलम्ब पूर्ण की जानी चाहिए।

→ सूची संलेखों में शामिल सूचना सही होनी चाहिए। सामान्यतः आख्या पृष्ठ सूचीकरण के लिए सूचना प्रदान करने का मुख्य स्रोत है। आख्या पृष्ठ से ली गई सूचना की लिपिकरण सही होनी चाहिये। कभी कभी सूचीकरण उद्देश्यों के लिए आख्या पृष्ठ जैसे प्रस्तावना, भूमिका, विषय सूची की तालिका, परिचय और मूलपाठ इत्यादि में प्राप्त सूचना का उपयोग भी करना चाहिए। आजकल ऐसी सूचना पृष्ठ के पश्च भाग में दी जाती है।

→ सूची में संलखों की व्यवस्था और अभिरचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि पाठक उन्हें सरलता से समझ सके और प्रसूची का उपयोग बिना किसी कठिनाई के कर सके।

→ सूचियों की प्रमुख विशेषताओं और उनमें से सूचना खोजने की विधियों को प्रमुखता से संदर्शिकाओं के द्वारा प्रदर्शित किया जाना चाहिये।

7.10 सारांश (Summary)

अतः हम कह सकते हैं कि पुस्तकालय सूची पुस्तकालय की कुंजी है। यह सत्य है कि पुस्तकालय सूची एक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण उपकरण है क्योंकि वह पुस्तकालय में उपलब्ध प्रत्येक ग्रंथ के संबंध में सम्पूर्ण वाङ्मयी सूचना तथा चयन में सिर्फ सहायक ही नहीं बल्कि वह ग्रंथ के निश्चित स्थान की जानकारी भी प्रदान करती है। किसी भी पुस्तकालय की सूची का निर्माण मानक सिद्धान्तों में नियमावलियों के अनुसार होने पर सूची की उपादेयता सुनिश्चित हो पाती है।

हमने यह भी देखा है कि पुस्तकालय सूची और पुस्तकालय सूचीकरण से संबंधित बुनियादी विचारों का क्या योगदान है। पुस्तकालय सूची की परिभाषा, तथा उद्देश्यों के साथ साथ पुस्तकालय संग्रह के उपयोग के लिए पाठक के विविध अभिगमों के संदर्भ में इसके विभिन्न कार्यों का उल्लेख किया गया। पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्रों में निहितार्थ की व्याख्या पुस्तकालय प्रसूची और सूचीकरण के संदर्भ में की गई है। सूची के साथ अन्य पुस्तकालय अभिलेखों तथा परिग्रहण पंजी, फलक सूची, ग्रंथसूची और व्यापार विवरणी की विशिष्टताओं की तुलना उदाहरणों के साथ चर्चा की गई है।

सूचीकारों के लिए कुछ दिशा निर्देशों के प्रावधान के साथ साथ पुस्तकालय संग्रह के व्यवस्थापन में सूची करण प्रक्रिया की भूमिका की संक्षिप्त चर्चा की गई है।पुस्तकालय संचालन की जुड़वां प्रक्रियाओं सूचीकरण और वर्गीकरण की सहायक और पूरक प्रकृति को स्पष्ट किया गया है।

7.11 इकाई से संबंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'सूची' शब्द की उत्पत्ति एवं परिभाषाओं पर प्रकाश डालें।
2. पुस्तकालय सूची के उद्देश्यों एवं कार्यों का वर्णन करें।
3. पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में पुस्तकालय सूची के उपयोगिताओं पर प्रकाश डालें।
4. ''पुस्तकालय सूची पुस्तकालय संग्रह की कुंजी है।'' वर्णन करें।
5. वर्गीकरण और सूचीकरण की पूरक प्रकृति की संक्षिप्त व्याख्या करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पुस्तकालय सूची से आप क्या समझते हैं?
2. पुस्तकालय में व्यापार विवरणिकाओं के कार्य को लिखें।
3. चार प्रमुख प्रसूची संहिता का नाम बताओ।

4. सी.ए.कटर द्वारा उल्लेखित पुस्तकालय सूची के उद्देश्यों की विवेचना करें।
5. पुस्तकालय सूची के मूल कार्यों को लिखें।
6. सूचीकरण प्रक्रिया को संक्षेप में लिखें।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कैटलॉग शब्द का उद्भव किस भाषा से संबंधित है?
2. जब वे अभिलेख, जो विभिन्न प्रलेखों को प्रदर्शित करते हैं किसी पुनर्प्राप्ति योग्य फाइल का रूप देने के लिए एक क्रम से व्यवस्थित किये जाते हैं तब यह क्या बन जाता है?
3. ऐंग्लो अमेरिकन कैटलॉगिंग रूल्स द्वितीय कब प्रकाशित हुआ?
4. क्लासीफाइड कैटलॉग कोड के जनक कौन हैं?
5. पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्र के निर्माता कौन हैं?
6. सूचीकरण हेतु ग्रंथ का कौन सा पृष्ठ ग्रंथ परक विवरण प्राप्त करने के लिए मुख्य स्रोत का कार्य करती है।

7.12 अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. ग्रीक भाषा
2. ग्रंथालय सूची
3. 1978
4. डॉ. एस.आर.रंगनाथन
5. डॉ. एस.आर.रंगनाथन
6. मुखपृष्ठ

7.1 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल, श्याम सुन्दर : ग्रन्थालय सूचीकरण ।

सूद, एस.पी. : ग्रन्थालय सूचीकरण के सिद्धान्त ।

कुमार, गिरजा और कुमार, कृष्ण : सूचीकरण के सिद्धान्त।

त्रिपाठी, एस.एन.और शौकिन,एस.एन. : सूचीकरण सिद्धान्त के मुख्य तत्व।

शर्मा, पाण्डेय एस.के. : सरलीकृत पुस्तकालय सूचीकरण के सिद्धान्त।

कुमार,कृष्ण : कैटलॉगिंग

हन्टन, ई.जे.और बैकबेल, के.जी.बी. : कैटलॉगिंग ।

त्रिपाठी, वी.एन., दुबे, टी.एन. : पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान एक परिदृश्य।

इकाई -8 : पुस्तकालय सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

8.0 विषय परिचय

8.1 उद्देश्य

8.2 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त का अर्थ

8.3 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त की आवश्यकता

8.4 सूचीकरण सिद्धान्त की उपयोगिता एवं महत्व

8.5 सूचीकरण नियामक सिद्धान्त का नियम

8.6 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त का उपसूत्र

8.7 विषय वस्तु का सार संक्षेप

8.8 विषय वस्तु से सम्बन्धित प्रश्न

8.9 संबंधित प्रश्न के वस्तुनिष्ठ उत्तर

8.10 उपयोगी पुस्तकें

8.0 विषय परिचय (Introduction)

सूचीकरण नियमावली विकसित करने तथा उसके प्रयोग किये जाने का प्रयास मुख्यतः 19वीं शताब्दी के मध्य से आरम्भ हुआ है जिसे आधुनिक सूचीकरण का आरंभिक काल कहा जाता है। सूचीकरण के क्षेत्र तथा अपेक्षित कार्यों के संबंध में प्रायः अभाव सर्वत्र असन्तोष, असंगति, सारूप्यता का पूर्ण अभाव तथा अन्य अनेक त्रुटियां एवं सूचीकरण प्रतिविधियों के मौलिक अभाव को समय समय पर व्यक्त किया गया है। इसका मुख्य कारण स्वाभाविक तथा सार्वभौमिक सहयोगी विचारों तथा प्रयास का अभाव रहा है। राष्ट्रीय भाषा तथा लिपि की उपेक्षा कर संस्थागत, व्यक्तिगत एवं परम्परागत प्रचलित प्रणालियों का अनुसरण किया जाना रहा है। इसमें अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह भी रहा है कि सूचीकरण विधियों में मौलिक तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं किया जाता था।

परिणामतः सूचीकरण पद्धति को विज्ञान और कला की संज्ञा देने में कुछ पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान वेत्ताओं ने आपत्ति उठायी है। जिसमें एकोम्ब ने विशेष प्रकार से सूचीकरण को न तो कला और न विज्ञान ही माना बल्कि इसे केवल एक प्रविधि माना हैं । सुदृढ़ सैद्धान्तिक दृष्टिकोण के अभाव में जो सूचीकरण विज्ञान का वास्तविक आधार है, उस परिप्रेक्ष्य में एकोम्ब का कथन बिल्कुल सत्य माना जा

सकता है। सूचीकरण का एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए विनायक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। ये नियामक सिद्धान्त सूचीकरण के लिए नियमानुसार उपयोगी होते हैं।

1. संहिता के नियमों के निरूपण में ये सिद्धान्त आधार स्वरूप होते हैं।
2. संहिता का आलोचनात्मक अध्ययन इन्हीं सिद्धान्तों द्वारा किया जा सकता है।
3. विभिन्न सूची संहिताओं के नियमों का तुलनात्मक अध्ययन भी इन सिद्धान्तों के द्वारा किया जा सकता है।
4. इन्हीं सिद्धान्तों के द्वारा संहिता के नियमों की व्याख्या को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है।
5. इन सिद्धान्तों से सूचीकरण के लिए निर्देशन प्राप्त होता है।

डॉ.रंगनाथन ने **''थ्योरी ऑफ लाइब्रेरी कैटलॉग''** में इन नियामक (आदर्शक) सिद्धान्तों का वर्णन किया। इन सिद्धान्तों में पुस्तकालय विज्ञान के पंचसूत्रीय सिद्धान्त, सूचीकण के छः उपसूत्र तथा मितव्ययिता के सूत्र को सम्मिलित किया गया। सी.सी.सी. के पाँचवें संस्करण में सूचीकरण के आठ उपसूत्र बनाए गये। इसके बाद प्रसंभाव्यता का सिद्धान्त तथा पुनः स्मरण की विशेषता का उपसूत्र को सम्मिलित किया गया।सूचीकरण के सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए इफ्ला (IFLA) ने 1961 में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में सिद्धान्तों का निरूपण किया गया। ब्रुसेल्स के पुस्तकालयों तथा प्रलेखन केन्द्रों के अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस प्रतिवेदन का प्रकाशन इफ्ला (IFLA) द्वारा "Libri Vol 6(3)" में 1956 में किया गया है जिसमें यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि ''वर्तमान में प्रयुक्त की जाने वाली सूची नियमावलियों में से अधिकांश स्पष्ट रूप से प्रतिपादित सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है।उनकी आन्तरिक असंगति के कारण इनके सिद्धान्तों का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। यद्यपि नवीन सूची नियमावलियों को पुरानी परम्पराओं से मुक्त होने तथा सुदृढ़ पद्धतियों के अनुसरण को अनेक आलोचकों द्वारा प्रस्तावित करने से यह प्रतीत होता है कि एकरूपता की ओर झुकाव की प्रवृत्ति उनमें विद्यमान है।''

इससे स्पष्ट होता है कि डॉ. रंगनाथन ने किस सीमा तक पाश्चात्य सूचीकरण पद्धति को प्रभावित किया और सिद्धान्तमूलक बना दिया। यहाँ डॉ. रंगनाथन ने उन उपसूत्रों तथा नियामक सिद्धान्तों की विवेचना संक्षेप में की है।

8.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सूचीकरण से संबंधित नियामक सिद्धान्तों जिसके अन्तर्गत विभिन्न सूत्र, उपसूत्र एवं सिद्धान्त सम्मिलित है।, जिस पर प्रकाश डालना है। इनके साथ ही साथ अन्य क्षेत्रों जैसे सूचीकरण के दौरान दैनिक कार्य में

उचित निर्देशन हेतु सूची संहिताओं के आलोचनात्मक अध्ययन करने में, विभिन्न सूची संहिताओ के नियमों के तुलनात्मक अध्ययन करने में, सूची संहिताओं के नियमों के निर्माण तथा निरूपण में उचित दिशा निर्देश से परिचित कराना है।

8.2 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त का अर्थ (Meaning of Normative Principles of Cataloguing)

सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त से तात्पर्य ऐसे सामान्य सिद्धान्तों एवं मानकों से है। जिनकी सहायता से निर्णय लेना संभव हो सके और जो प्रमाणिक एवं विश्वसनीय हो। सूचीकरण के क्षेत्र में नियामक सिद्धान्तों द्वारा सूचीकरण को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया गया है और इसका श्रेय डॉ0 एस.आर.रंगनाथन को है। डॉ.रंगनाथन पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान के पहले विशेषज्ञ हैं, जिन्होंने सूचीकरण के नियामक सिद्धान्तों एवं उपसूत्रें का प्रतिपादन किया है। इन उपसूत्रों के प्रतिपादन, नियमबद्धता, परीक्षण एवं परिपालन करने में डॉ.रंगनाथन का अथक प्रयास रहा है जिसके परिणाम स्वरूप पुस्तकालय सूचीकरण का व्यवहारिक प्रयोग सैद्धान्तिक आधारों पर किया जाना इसकी प्रविधियों के अनुसरण से एकरूपता एवं साम्यता स्थापित कर पाना संभव हो सका है।

इससे स्पष्ट है कि सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त का आशय सूचीकरण प्रक्रिया में विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रयोग करना है। वास्तव में सूचीकरण के उपसूत्र वे मौलिक सिद्धान्त एवं नियम हैं जो सूची संहिताओं के निर्माण एवं नियमों को सिद्धान्तबद्ध करने में सहायता प्रदान करते हैं, तथा सूचीकारों को उस अवस्था में मार्ग दर्शन एवं नियमों की व्याख्या करने में सहायता करते है जब प्रकाशनों के विविध स्वरूपों से कोई विकट एवं विवादास्पद समस्या उत्पन्न हो जाती है।

8.3 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्तों की आवश्यकता (Need of Normative Principle of Cataloguing)

सूचना विस्फोट तथा साहित्य की विविधता के कारण सूचीकरण का कार्य उत्तरोत्तर और भी जटिल होता जा रहा है। प्रायः सभी पुस्तकों के मुख्य पृष्ठ में निहित सूचनाएँ समान नहीं होती है साथ ही पुस्तक के विषय को समझना भी अत्यन्त कठिन होता है। अतः विभिन्न समस्याओं के कारण सूचीकरण हेतु श्रेष्ठ उपसूत्रों एवं सिद्धान्तों की आवश्यकता को और भी प्रबलता के साथ अनुभव किया जाने लगा।

19वीं सदी के मध्य काल को आधुनिक सूचीकरण का आरंभिक काल माना जाता है। लगभग उस समय से पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान के विशेषज्ञों ने, निरन्तर एक कुशल एवं उपयोगी सूचीकरण नियमावली विकसित करने तथा उन्हें व्यवहारिक रूप से प्रयोग में लाने हेतु प्रयास किया है। परन्तु इस क्षेत्र में प्रायः सर्वत्र असंतोष,

असंगति तथा अन्य अनेक त्रुटियाँ एवं सूचीकरण हेतु मौलिक सिद्धान्तों एवं उपसूत्रों के अभाव को समय समय पर व्यक्त किया गया है।

आधुनिक समय में प्रत्येक पुस्तकालयों में सूचीकरण को एक अति महत्वपूर्ण उपकरण माना गया है। दूसरे शब्दों में पाठकों के विभिन्न अभिगमों को पूरा करने या संतुष्ट करने में, जो सूची के निर्माण के लिए कुछ सिद्धान्तों एवं उपसूत्रों का होना अत्यंत आवश्यक है, जिसके द्वारा सूचीकारों को पुस्तकालयों में संगतता, परिशुद्धता, एकरूपता लाने में समय समय पर सही मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

8.4 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त की उपयोगिता एवं महत्व (Use and Importance of Normative Principles of Cataloguing)

डॉ. रंगनाथन महोदय ने सूचीकरण के अन्तर्गत सूची प्रविष्टियों के निर्माण में एकरूपता, साम्यता, सुसंगति एवं प्रमाणिकता को बनाये रखने के उद्देश्य से सूचीकरण के उपसूत्रों का प्रतिपादन किया है। इन उपसूत्रों के उपयोग तथा प्रभाव के क्षेत्र निश्चित है। सूची किसी भी पुस्तकालय का एक महत्वपूर्ण उपकरण है जो पाठकों को उनकी वांछित सूचना सामग्री तक पहुँचाने में सहायता करता है। डॉ. रंगनाथन महोदय ने सूचीकरण में सहायक कुल नौ उपसूत्रों का प्रतिपादन किया है जिनकी प्रमुख उपयोगिता एवं महत्व निम्नांकित है -

→ यह सूचीकारों को सूचीकरण कार्य करने में उचित मार्ग दर्शन करता है।

→ इन उपसूत्रों के सहयोग से विभिन्न सूची संहिताओं का तुलनात्मक अध्ययन या आलोचनात्मक अध्ययन एवं समीक्षा की जा सकती है।

→ इन सिद्धान्तों के द्वारा सूचीकरण की अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता हैं ।

→ ये सिद्धान्त सूचीकरण से संबंधित संहिता एवं नियमावली के निर्माण में सहायक होते हैं।

→ ये सिद्धान्त सूचीकरण को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं।

→ ये सिद्धान्त सूचीकरण कार्य को एक निश्चित आधार प्रदान करते हैं।

सूचीकरण के क्षेत्र में ये नियामक सिद्धान्त एवं उपसूत्र भारत की अनुपम देन है। ये अपने समय में बहुत पहले ही निर्मित हो गये थे। अतः बहुत से लोग अभी भी इन सिद्धान्तों के महत्व को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, किन्तु आने वाले समय में इनका महत्व सर्वत्र स्वीकार किया जाएगा।

8.5 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त (Normative Principles of Cataloguing)

सूचीकरण के वे सिद्धान्त जो सूची संहिताओं की आवश्यकता पर बल देते हैं

तथा न्यूनतम लागत पर ग्रंथालयों को पुनः संगठन तथा पुनः सूचीकरण के लिए निर्देशित करते हैं उन्हें सामान्य नियामक सिद्धान्त की संज्ञा दी जाती है। पहले हमें रंगनाथन द्वारा सृजित पद सूत्र, उपसूत्र एवं सिद्धान्त को समझना होगा।

सूत्र - डॉ. रंगनाथन के मुख्य विद्या के सन्दर्भ में प्रयुक्त किसी भी नियम को सूत्र की संज्ञा दी है जैसे - पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्र या नियम।

उपसूत्र - मुख्य विद्या के विभाजन के प्रथम क्रम में उन्होंने उपसूत्र शब्द का उपयोग किया है। जैसे - वर्गीकरण के उपसूत्र या सूचीकरण के उपसूत्र।

सिद्धान्त - मुख्य विद्या के विभाजन के द्वितीय क्रम या बाद के क्रमों हेतु सिद्धान्त शब्द का उपयोग किया है। जैसे - पक्ष या अनुक्रम के सिद्धान्त आदि।

अब हम यहाँ मात्र सूत्रीकरण के नियामक सूत्रों का उल्लेख कर रहे हैं। ये सिद्धान्त सूची संहिताओं की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं जो निम्न हैं।

(i) **अर्थ निर्णय का सूत्र** - इस नियम से तात्पर्य सुप्रसिद्ध न्यायकोश में सन्निहित 1008 अर्थ निर्णय के सूत्रों से है। डॉ. रंगनाथन का कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार न्यायालय में किसी विवाद को सुलझाने में न्यायकोश में प्रस्तुत अर्थ-निर्णय के सूत्र न्याय करने में न्यायाधीश की सहायता करते हैं ठीक उसी प्रकार सूचीकरण के क्षेत्र में उत्पन्न किसी भी विवाद को सुलझाने में सूची संहिता में दिये गये सूत्र सूचीकार की सहायता करते हैं। न्याय के लिए किसी भी नियम का पहले अर्थ समझा जाता है। उसके बाद निर्णय दिया जाता है। इसलिए इन्हें अर्थ निर्णय के सिद्धान्त कहते है। चूँकि सूची संहिता में इन सूत्रों का न्यायकोश के अर्थ निर्णय के सिद्धान्तों की तरह उपयोग किया जाता है इसीलिए इन्हें अर्थ निर्णय के सूत्र कहते हैं। इसके अनुसार उत्तर काल में निर्मित नियम प्रभावी होगा अर्थात नवीन नियम को प्रामाणिक माना जायेगा।

(ii) **निष्पक्षता का सूत्र** - डॉ. रंगनाथन का यह सूत्र निर्देश देता है कि यदि प्रविष्टि बनाते समय शीर्षक के रूप में प्रयुक्त होने के लिए दो या दो से अधिक शीर्षक दावेदार हो तो उनको निष्पक्ष रूप से पर्याप्त आधार पर ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए न कि स्वेच्छा के आधार पर। जैसे - किसी पुस्तक के दो लेखक हैं तो उन सभी को ही समान महत्व दिया जाना चाहिए। यदि शीर्षक अनुच्छेद में लिखना है तो सभी का नाम आना चाहिए। इसी प्रकार यदि पुस्तक ने कई ग्रन्थ मालाओं में स्थान प्राप्त किया है तो सभी पुस्तकमालाओं के मुख्य प्रविष्टि में टिप्पणी अनुच्छेद में लिखना चाहिए तथा ग्रंथमाला से इतर प्रविष्टियाँ भी निर्मित करनी चाहिए।

सी.सी.सी. और ए.ए.सी.आर. - किसी पुस्तक के दो लेखक होने पर सी.सी.सी. में दोनों ही नामों को मुख्य प्रविष्टि के शीर्षक अनुच्छेद में अंकित करने और दोनों नामों से ही इतर प्रविष्टियाँ निर्मित करने का निर्देश हैं।अतः

इस सूत्र का पालन होता है लेकिन लेखकों की संख्या तीन या तीन से अधिक हो जाने पर सी.सी.सी. में केवल प्रथम लेखक के नाम को ही शीर्षक अनुच्छेद में लिखने का प्रावधान है और उसी से इतर प्रविष्टियाँ निर्मित करने का भी प्रावधान है। लेकिन ए.ए.सी.आर. के अनुसार प्रथम लेखक के नाम को ही मुख्य प्रविष्टि के शीर्षक अनुच्छेद में अंकित करने का निर्देश है और केवल उसी से इतर प्रविष्टियाँ भी निर्मित की जाती हैं। अतः यहाँ इस सूत्र का पालन नहीं होता हैं।

(iii) **मितव्ययिता का सूत्र -** इस सिद्धान्त का आधार मितव्ययिता है। डॉ. रंगनाथन के शब्दों में - यदि किसी विशेष क्रिया पर दो या दो से अधिक वैकल्पिक नियम उपस्थित हों तो उसमें से उस एक को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिसके द्वारा मानवशक्ति, सामग्री, धन तथा समय सभी को उचित गुरूता देते हुए समय की मितव्ययिता हो। इस सूत्र के अनुसार मितव्ययिता की दृष्टि से सरलीकरण तथा कुछ तत्वों का परित्याग अतिरिक्त संलेख में आवश्यक है। अतः सूची संहिताओं में इतर प्रविष्टियों के लिए अतिरिक्त नियमों का प्रावधान करना चाहिये। जिनके अनुसार कुछ निश्चित तत्वों के उल्लेख को पुनः अतिरिक्त संलेखों में न किये जाने का निर्देश होना चाहिए। जैसे - क्रमांक संख्या, ग्रंथमाला टिप्पणी, संक्षिप्त शीर्षक आदि उन सभी तत्वों का उल्लेख नहीं होना चाहिए जो किसी प्रकार से प्राप्त विशिष्ट, अतिरिक्त संलेख तथा उसके मुख्य संलेख से कोई संबंध न रखते हों।

(iv) **साम्यरूपता का सूत्र** - समान्यतया निष्पक्षता का सिद्धान्त तथा यह सिद्धान्त एक समान प्रतीत होते हैं परन्तु दोनों में सूक्ष्म भेद भी हैं। साम्यरूपता सिद्धान्त यह निर्देश देता है कि यदि दो वस्तुएँ या दो अवस्थाएँ एक दूसरे के प्रतिरूप की दृष्टि से विचार किये जाते हैं और यदि उनमें से किसी एक को किसी प्रसंगवश महत्वपूर्ण समझा जाता है तो दूसरी को भी वही महत्व दिया जाना चाहिए।

किसी पुस्तक के दो लेखक होने पर मुख्य संलेख में उनका उल्लेख उसी अनुक्रम में किया जाना चाहिए जिस अनुक्रम में उनका उल्लेख पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर किया गया हो। पुस्तक निर्देश प्रविष्टि में उसी अनुक्रम का अनुसरण किया जाता है परन्तु साम्यरूपता के सिद्धान्त यह निर्देश देता है कि दूसरे पुस्तक निर्देश संलेख में दोनों को विपरीत अनुक्रम में शीर्षक के रूप में उल्लेख करना चाहिये।

(v) **परिसरण का सिद्धान्त** - इसको परिशोध का सिद्धान्त भी कहते हैं तथा यह सिद्धान्त यह निर्देश देता है कि पुस्तकालय में नवीन पुस्तकों के संग्रह का वर्गीकरण तथा सूचीकरण नवीन पद्धतियों के अनुसार किया जाना चाहिये।

पुराने संग्रह में से वे ग्रंथ जो उपयोगी हों तथा जिनकी मांग उपयोगकर्ताओं द्वारा की जाती है उनका पुनर्वर्गीकरण तथा पुनः सूचीकरण करना चाहिए तथा इन पुस्तकों को नवीन संकलन के साथ एकत्रित करना चाहिए तथा इनकी प्रविष्टियाँ भी नवीन संकलन की सूची के साथ रखनी चाहिए। पुराने पुस्तकों को जिनका उपयोग कम होता है उन्हें अलग ही व्यवस्थित रहने देना चाहिये तथा सूची भी अलग ही रहनी चाहिये तथा जिन पुस्तकों का उपयोग उपयोगकर्ताओं द्वारा नहीं किया जाता है उन्हें मृत संकलन के रूप में अलग कर देना चाहिए तथा साथ ही इनके सूची-पत्रक भी निकाल देने चाहिये।

(vi) **स्थानीय भिन्नता का सिद्धान्त** - यह सिद्धान्त सूची संहिता से संबंधित है। कोई भी सूची संहिता स्थानीय विभिन्नता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकती विशेष कर उस दशा में जब असंख्य प्रकारों एवं विभिन्न भाषाओं में प्रकाशनों का उत्पादन दिन प्रतिदिन हो रहा है। अतः यदि अन्तर्राष्ट्रीय संहिता की कल्पना को साकार करना है तो उसका एक मात्र समाधान है डॉ. रंगनाथन द्वारा प्रतिपादित स्थानीय विभिन्नता का सिद्धान्त। इस सिद्धान्त के अनुसार चार स्तरों की सूची संहिताओं को स्वीकार किया जा सकता है अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, भाषा विषयक तथा स्थानीय सूची संहिता।

लिपि - यदि लिपि लें तो रोमन लिपि में बड़े छोटे दो प्रकार के अक्षर होते हैं परन्तु भारत की देवनागरी लिपि में ऐसा नहीं है। अतः समान नियमों से दोनों लिपियों में लिखना।

नाम - इसी प्रकार स्थानीय भिन्नता के कारण व्यक्तिगत नामों के लिए भी अन्तर्राष्ट्रीय नियम निर्मित करना संभव नहीं है। उनमें भी स्थानीय भिन्नता होती है। अनेक नामों में एक शब्द को प्रविष्टि शब्द बनाया जाता है। जैसे - Ranganathan, S.R. परन्तु बहुत से नामों में सेन गुप्त, राय चौधरी, दास गुप्ता आदि नामों से दो शब्दों की प्रविष्टि शब्द बनाना पड़ता है। अनेक नामों में कुल नाम नहीं होते हैं - जैसे जय प्रकाश नारायण, राजेन्द्र प्रसाद, अतः पूरे नाम को ही प्रविष्टि शब्द बनाना पड़ता है।

लिप्यान्तरण - साधारणतया प्रविष्टि में शीर्षक अनुच्छेद व्यक्तियों/संस्थाओं या भौगोलिक इकाइयों के नाम दिये जाते हैं इनका अनुवाद नहीं किया जाता। अपितु लिपि का अन्तरण किया जाता है। इस हेतु भी प्रत्येक भाषा तथा लिपि में विभिन्नता होना स्वभाविक है।

पुस्तकालय विज्ञान के पाँच सूत्र - डॉ. रंगनाथन ने पुस्तकालय विज्ञान के मूलभूत पाँच सूत्रों को प्रतिपादित किया जो कि उनकी महान-कृति मानी जाती है। ये सूत्र पुस्तकालय विज्ञान, पुस्तकालय प्रक्रिया एवं पुस्तकालय सेवा से संबंधित किसी भी क्षेत्र में उपयोग में लाये जा सकते है। दूसरे शब्दों में ये सूत्र पुस्तकालय विज्ञान के

सम्पूर्ण क्षेत्र पर व्याप्त होता है। पुस्ताकलय विज्ञान के सूत्र निम्नलिखित है जो कि सूचीकरण पर भी समान रूप से लागू होते हैं।

प्रथम सूत्र - पुस्तकें उपयोगार्थ हैं।

द्वितीय सूत्र - प्रत्येक पाठक को उसका पुस्तक मिले।

तृतीय सूत्र - प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले।

चतुर्थ सूत्र - पाठकों का समय बचे ।

पंचम सूत्र - पुस्तकालय एक वर्धनशील संस्था है।

पुस्तकालय विज्ञान के इन पॉच सूत्रों का संक्षिप्त उद्देश्य सूची के प्रसंग में निम्नलिखित है। -

प्रथम सूत्र - पुस्तकें उपयोगार्थ है : इस सूत्र के अनुसार पुस्तकालय में वे समस्त कार्य अपेक्षित है जिनसे पुस्तकों का अधिक से अधिक उपयोग संभव हो सके। चूँकि सूची पुस्तकों के उपयोग में सहयोग प्रदान करती है इसलिए इसका निर्माण अवश्य किया जाना चाहिए।

द्वितीय सूत्र - प्रत्येक पाठक को उसका पुस्तक मिले : समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक पाठक को पाठ्य सामग्रियाँ उपलब्ध कराना पुस्तकालय का दायित्व है। सूची का निर्माण इस प्रकार करना चाहिये ताकि पाठक के विभिन्न अभिगमों की वह पूर्ति करने वाला हो।

तृतीय सूत्र - प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले : पुस्तकालय के सभी पुस्तकों के पाठक उपलब्ध होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से सूची में प्रविष्टियों को इस प्रकार निर्मित की जानी चाहिए ताकि सभी प्रलेखों को प्रविष्टियों में वर्णित कर उसे पाठकों के समक्ष प्रदर्शित किया जा सके।

चतुर्थ सूत्र - पाठकों का समय बचे : पाठकों के बहुमूल्य समय को बचाने हेतु हर प्रयास अपेक्षित है। सूची का निर्माण भी इस प्रकार किया जाय ताकि पाठकों को किसी प्रलेख की प्रविष्टि खोजने में समय न लगे तथा सूची के आधार पर शीघ्र पुस्तक पुस्तकालय से खोज निकाली जाए।

पंचम सूत्र - पुस्तकालय एक वर्धनशील संस्था है : पंचम सूत्र में उन मूल तत्वों पर प्रकाश डालता है जो पुस्तकालय के सुनियोजन तथा व्यवस्था एवं संगठन से संबंधित होते हैं। पुस्तकालय एक वर्धनशील संस्था है जिसमें दिन प्रतिदिन वृद्धि एवं विकास होता है जिसमें पुस्तकालय के आकार कार्यक्रम व्यवस्था, समस्याओं आदि में परिवर्तन एवं वृद्धि होने वाले प्रत्येक पहलू पर पूर्व में ही विचार कर लेना आवश्यक होता है। इस दृष्टिकोण से सूची वर्णात्मक एवं सरलीकृत होना अपेक्षित माना जाता है।

8.6 सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त (उपसूत्र) (Normative Principles of Cataloguing (Canon))

सूचीकरण को एक वैज्ञानिक एवं सार्वभौमिक रूप प्रदान करने के लिए डॉ. रंगनाथन ने सूचीकरण के आदर्शमूलक सिद्धान्तों एवं उपसूत्रों का प्रतिपादन किया था। जिससे सूचीकरण का अध्ययन तथा व्यावहारिक प्रयोग सैद्धान्तिक आधारों पर किया जा सके। डॉ. रंगनाथन के सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त अर्थात उपसूत्र निम्नलिखित है -

(i) निर्धार्यता का उपसूत्र

(ii) प्रबलता का उपसूत्र

(iii) व्यष्टिकरण का उपसूत्र

(iv) वांछित खोज शीर्षक उपसूत्र

(v) प्रसंग उपसूत्र

(vi) स्थायित्व का उपसूत्र

(vii) प्रचलन का उपसूत्र

(viii) सुसंगति का उपसूत्र

(ix) पुनः स्मरण की विशेषता का उपसूत्र

(i) निर्धार्यता का उपसूत्र

इस उपसूत्र के प्रावधान तथा निर्देश के अनुसार सूचीकृत प्रलेख के मुखपृष्ठ तथा इसके अतिरिक्त पृष्ठों में उपलब्ध विवरण के ही अनुसार किसी प्रविष्टि के प्रत्येक अनुच्छेद के वरण को निश्चित करना चाहिए। प्रविष्टि के अन्तर्गत किसी अन्य सूचना को कभी सम्मिलित नहीं करना चाहिए जिसका सरलतापूर्वक निर्धारण नहीं किया जा सके। निर्धार्यता के उपसूत्र में अन्तर्निहित सिद्धान्त तथा इसके उद्देश्य एक अद्वितीय विधि है जिसे डॉ. रंगनाथन ने इस दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया है कि प्रविष्टियों को प्रस्तुत करने के लिए शीर्षक के वरण में किसी प्रकार की असंगति तथा किसी प्रकार का अनावश्यक विवाद उत्पन्न न होने पाये जो प्रायः मुखपृष्ठ तथा इसके अतिरिक्त पृष्ठों से बाहर जाकर सूचना संकलित करके प्रविष्टि को प्रस्तुत करने से उत्पन्न होता है। अनेक प्रचलित सूची संहिताओं में ऐसा प्रावधान है जिसके अनुसार संलेखों के शीर्षकों को नवीनतम नामों, पूर्व प्रचलित नामों तथा लोक प्रसिद्ध नामों आदि के द्वारा प्रस्तुत करना चाहिए। विशेषतः नामों तथा आख्याओं के परिवर्तित हो जाने की अवस्था; जब सूचीकार को आवश्यक सूचना प्राप्त करने के लिए अनेक प्रलेखों से उसे करना

रहता है जो सर्वदा न तो संभव ही है, न तो इस प्रकार की सूचनाओं की खोज करना सूचीकार का कार्य है। पुस्तक के मुख पृष्ठ तथा अन्य पृष्ठों में उपलब्ध सूचना के अतिरिक्त अन्य साधनों की सहायता लेने के लिए सूचीकार के पास इतना समय भी नहीं होता है। अतः निर्धार्यता के उपसूत्र का निर्देश ही समस्या के समाधान का एकमात्र साधन है। डॉ. रंगनाथन के इस सिद्धान्त का अप्रत्यक्ष रूप से जॉली महोदय ने भी समर्थन किया तथा इस विवाद को सुलझाने का प्रयास अपनी कृति ''सूचीकरण के सिद्धान्त'' के प्रथम अध्याय सूची के कार्य के अन्तर्गत किया है परन्तु कोई निश्चित मार्ग स्पष्ट नहीं किया है।

ए.ए.सी.आर. के अनुसार, आख्या पृष्ठ या उसके बदले प्रलेख के किसी भाग में उपलब्ध विवरणों पर ही साधारणतया प्रलेख की प्रविष्टि आधारित होती है, परन्तु अन्य विवरणों को भी ध्यान में रखना चाहिए जो स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हों।

सी.सी.सी. के अनुसार, किसी प्रलेख की आख्या पृष्ठ और उसके अतिरिक्त पृष्ठों पर जो सूचनाएँ अंकित है,उन्हें ही विभिन्न अनुच्छेदों के वरण तथा उपकल्पन के निर्धारण हेतु प्रयोग करना चाहिए।

सूची संहिता में उपसूत्र का प्रयोग

ए.ए.सी.आर.-1 में इस उपसूत्र का पालन किया गया है। मुख्य प्रविष्टि के निर्धारण में प्राक्कथन, भूमिका या मूल पुस्तक में उल्लेखित सामग्री का भी उपयोग तभी किया जाता है, जब आख्या पृष्ठ पर उपलब्ध सूचनाएं अस्पष्ट और अपूर्ण होती हैं। अमानक कृतियों के लिए प्रविष्टियों के निर्धारण में बाह्य स्रोतों से सहायता ली जाती है। ए.ए.सी.आर-1 के अनुसार, ''आख्या पृष्ठ या उसके बदले कृति के किसी भी भाग में उपलब्ध विवरणों पर ही साधारणतया कृति की प्रविष्टि आधारित होती है, परन्तु अन्य विवरणों को भी ध्यान में रखना चाहिए जो स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो।

सी.सी.सी. में इस उपसूत्र का पालन कठोरता से किया है संहिता के अनुच्छेद क्रमांक MDI के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि मुख्य प्रविष्टियों में शीर्षक के रूप में उसी सूचना को प्रयुक्त किया जा सकता है, जो पुस्तक में अंकित हो। अध्याय MD के अन्य अनुच्छेदों में भी मुख्य पृष्ठ को पर्याप्त महत्व दिया गया है।

इस प्रकार सी.सी.सी. के अनुसार प्रविष्टियों को अंकित की जाने वाली सूचना का निर्धारण मुख्य पृष्ठ है। यही सूचीकरण में निर्धार्यता का उपसूत्र है। फिर भी इसके कुछ अपवाद हैं, जो निम्न हैं -

→ वर्गीकृत सूची का अग्र अनुच्छेद, अन्तर्विषयी प्रविष्टि का निदेशक अनुच्छेद एवं शब्दकोशीय सूची का विषय विश्लेषण।

→ वर्गीकृत सूची के वर्ग निर्देश प्रविष्टि के शीर्षक एवं निदेशक अनुच्छेद तथा शब्द

कोशीय सूची की विशिष्ट विषय प्रविष्टि एवं 'और भी देखिए' प्रविष्टि

→ मुख्य प्रविष्टि की सार टिप्पणी, निस्सारण टिप्पणी तथा संबधित ग्रन्थ टिप्पणी।

→ प्रत्येक पुस्तक निर्देशी प्रविष्टि के लिए सार टिप्पणी, निस्सारण टिप्पणी एवं संबंधित ग्रन्थ टिप्पणी से निकाले गये शीर्षक एवं पुस्तक निर्देश प्रविष्टि का निदेशक अनुच्छेद ।

→ नाम प्रविष्टि के अतिरिक्त अन्तर्विषयी प्रविष्टि का निदेशक अनुच्छेद।

इस प्रकार सी.सी.सी. और ए.ए.सी.आर. दोनो संहिताओं में इस उपसूत्र का का पालन किया गया है।

(ii) प्रबलता का उपसूत्र

पुस्तकालय सूची की सफलता संलेखों की व्यवस्था तथा उसके अन्तर्गत आवश्यक संलेख तत्वों को समुचित ढग से प्रस्तुत करने की विधि पर निर्भर करती है। आवश्यक तत्वों के उल्लेख की क्रम व्यवस्था में किसी प्रकार की असंगति उत्पन्न हो जाने से सूची उद्देश्यहीन प्रतीत होने लगती है। डॉ. रंगनाथन के शब्दों में यह एक सिद्धान्त है जिसके अनुसार,

→ सूची में विभिन्न प्रविष्टियों के मध्य एक प्रविष्टि का स्थान निर्धारण करने के लिए जहाँ तक संभव हो, प्रबलता को पूर्णतः अग्र अनुच्छेद में एकत्रित करना चाहिये।

→ अग्र अनुच्छेद में भी जहाँ तक संभव हो इसको प्रविष्टि तत्व में एकत्रित करना चाहिए।

→ यदि अग्र अनुच्छेद में पूर्णतः एकत्रीकरण संभव न हो तो प्रबलता को न्यूनतम रूप से अगले अनुच्छेदों में जाने देना चाहिए।

→ प्रबलता का यह बहाव अगले अनुच्छेदों में तीव्रता के ह्रासमान अनुक्रम के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये।

इस प्रकार यह उपसूत्र प्रविष्टियों के व्यवस्थापन से संबंधित हैं। सूचीकरण में प्रविष्टियों को वरण करते हैं, उसमें से उस शब्द समूह को प्रविष्टि तत्व बनाना चाहिये जिनकी संख्या अन्य शब्द समूहों से अधिक हो।

वे शब्द या शब्द समूह जो शीर्षक के रूप में वरण किये जायेंगे, जो अन्य शब्द समूहों की अपेक्षा अधिक बहुसंख्यक होंगे। प्रविष्टि तत्व उस शब्द समूह से वरण करना चाहिए जो समूह में अधिक बहुसंख्यक हो तब प्रविष्टियों के मध्य एक

प्रविष्टि में वही शब्द प्रविष्ट तत्व के रूप में लिए जायेंगे जिसकी सम्भाव्यता कम हो जायेगी।

(iii) व्यष्टिकरण का उपसूत्र

इसमें किसी भी सत्ता का नाम चाहे वह किसी व्यक्ति, भौगोलिक सत्ता, समष्टि निकाय, ग्रन्थ-माला, प्रलेख, विषय का नाम हो, जिसे सूची प्रविष्टि के रूप में प्रयुक्त किया गया है, उसे व्यष्टिकरण तत्वों द्वारा पूर्णरूपेण व्यष्टिकरण होना चाहिये।

यानि यदि किसी सत्ता का नाम शीर्षक के रूप में प्रयुक्त होता है और वह व्यष्टिकृति नहीं हो तो उससे समनाम शब्दों का प्रादुर्भाव होता है। इससे पाठकों एवं कर्मचारियों दोनों को पुस्तक चयन में कठिनाई होगी। इस समस्या के समाधान के लिए व्यष्टिकरण उपसूत्र की अनुशंसा की गयी। इस उपसूत्र की सहायता से शीर्षक को व्यष्टिकृत किया जा सकता है। यदि इस उपसूत्र का पालन नहीं किया जाए तो विन्यसन में असुविधा होगी।

सूची संहिता में उपसूत्र का उपयोग

सी.सी.सी. में निम्न नियम व्यष्टिकरण उपसूत्र से संबंधित है -

व्यक्तिगत नाम - JA-5 व्यक्ति के नाम के साथ गौण पद के बाद उसका जन्म वर्ष व्यष्टिकृत पद (Individualising element) के रूप में जोड़ा जाना चाहिए। जन्म वर्ष का प्रयोग प्रविष्टि की शीर्षक में प्रदत्त नाम की एकरूपता को समाप्त करने के लिए व्यष्टिकरण पद के रूप में किया जाता है। जैसे - RANGANATHAN (S.R.)(1982)

भौगोलिक सत्ता - नियामक JB-31 यदि दो या अधिक भौगोलिक इकाइयाँ-

(1) समान नाम वाली हो,

(2) विभिन्न देशों में स्थित हों।

तो उनके नाम की समरूपता को समाप्त करने के लिए उस देश का नाम, जहाँ की भौगोलिक इकाई स्थित है, को व्यष्टिकृत पद के रूप में प्रयुक्त करेंगे।जैसे-

UXBRIDGE (Great Britain)

UXBRIDGE (United States of America)

नियम JB32, JB4, JB41 भी भौगोलिक सत्ताओं के व्यष्टिकरण से संबंधित है।

समष्टि निकाय - समष्टि निकाय के व्यष्टिकरण प्रदान करने के लिए नियम JC4, JC5, JC71, JC72, JD72 तथा JE2 का प्रावधान है। नियमांक JC4 के अनुसार जैसे - PUNJAB GOVERNOR (BD Pandey)

INDIA, PRESIDENT (Pratibha Patil)

नियामक JD2- यदि संस्था का केवल नाम से व्यष्टिकृत करने में असमर्थ हो तो समरूपता समाप्त करने के लिए निम्नांकित व्यष्टिकृत पदों का प्रयोग किया जाये।

→ स्थान, यदि वह स्थानीय संस्था हो,

→ देश, यदि वह राष्ट्रीय स्तर की संस्था हो,

→ संघटक राज्य, जिला, तहसील आदि संस्था, राज्य, जिला, तहसील स्तर की हो।

जैसे - LIBRARY (Public) (Ajmer) (1939), के व्यावस्थापन का काफी महत्व होता है। सूचियों के व्यवस्थापन का निर्धारण प्रबलता द्वारा ही होता है। प्रबलता वाले प्रथम शब्द या अंक में कोई गलती नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा होता है तो प्रविष्टि दृष्टि से हट जाती है। और उसे ढूँढना मुश्किल हो जाता है।

नियामक JE2- अनावधिक सम्मेलन के नाम के साथ स्थान का नाम जहाँ सम्मेलन सम्पन्न हुआ हो तथा सम्मेलन होने के वर्ष को जोड़ा जाना चाहिये। जैसे -

LIBRARIAN (University-s Conference) (Jaipur) (1964)

ए.ए.सी.आर.-1 में व्यक्तिगत नामों, भौगोलिक नामों, समष्टि निकाय के नामों, एक रूप आख्याओं के संबंध में व्यष्टिकरण तत्वों की अनुशंसा की गई है।

(iv) वान्छित खोज शीर्षक उपसूत्र -

यह उपसूत्र निर्देश करता है कि किसी भी पुस्तक या प्रलेख की मुख्य तथा अतिरिक्त प्रविष्टियों के शीर्षकों के वरण के संबंध में जो निर्णय लिया जाय वह इस बात पर आधारित हो कि अधिकतर पाठकों द्वारा उस शीर्षक से खोजने की सम्भावना अधिक हो। अर्थात इस उपसूत्र में पाठकों के अभिगमों को ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा उन प्रविष्टियों का निर्माण नहीं करने की सलाह दी गई है जो पाठकों के लिए वाँछित न हों। यही कारण है कि लेखकों को उनके कुल नामों से प्रविष्टि करने का निर्देश दिया गया है क्योंकि वे कुल से ही प्रसिद्ध होते हैं। इसी कारण साधारणतया प्रकाशक के नाम अथवा प्रकाशन स्थान से इतर प्रविष्टियां नहीं बनाते। विशिष्ट विषय शीर्षक आदि से इतर प्रविष्टियाँ निर्मित करते हैं। इसी उपसूत्र के आधार पर डॉ. रंगनाथन आख्या के आधार पर ग्रंथ निर्देशित प्रविष्टि निर्मित करने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि प्रायः आख्यायें समान व बहुशब्दीय होती हैं तथा पाठक इनको ठीक प्रकार से याद नहीं रख सकता है तथा अधिकतर आख्या प्रविष्टि का समाधान विषय शीर्षक प्रविष्टियाँ ही कर देती हैं। श्रृंखला प्रक्रिया में अन्विष्ट (sought) तथा अनविष्टहीन (Unsought) कड़ियों का निर्धारण भी इसी उपसूत्र के आधार पर किया जाता है।

सूची संहिता में उपसूत्र का प्रयोग

इस उपसूत्र का सूची संहिता निर्माताओं को अनुसरण करना चाहिए जिससे

सूचीकारों को सूची निर्मित करने में आसानी रहे। इस उपसूत्र के अनुसरण से ही सूची संहिताओं में लेखकों को उनके कुल नामों से प्रविष्टि करने का निर्देश है। जैसे - (William Shakeshpeare को SHAKESPEAR (WILLIAM) प्रविष्टि के शीर्षक अनुच्छेद में लिखा जाता है।

इस उपसूत्र में पाठकों के अभिगमों को ध्यान में रखा गया है तथा उन प्रविष्टियों को समाप्त करने की सलाह दी गयी है जो पाठकों के लिए वांछित न हो। इसी कारण साधारणतया प्रकाशक के नाम अथवा प्रकाशन स्थान आदि से इतर प्रविष्टियाँ निर्मित नहीं करते। इसी उपसूत्र के आधार पर डॉ. रंगनाथन आख्या प्रविष्टि निर्मित करने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि उनकी राय में पुस्तकों की आख्याएँ समान होती है, जिससे पाठक उनको भली प्रकार याद नहीं रख सकते।

निर्धायता के उपसूत्र के अनुसार मुख पृष्ठ एवं उसके अतिरिक्त पृष्ठों से परे किसी भी तत्व को शीर्षक के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए। जबकि अन्विष्ट शीर्षक के उपसूत्र के अनुसार, किस तत्व को शीर्षक के रूप में स्वीकार करना होगा, का निर्धारण किया जाता है।

वर्गीकृत सूची की नामान्तर निर्देशी प्रविष्टियाँ इसी उपसूत्र की पुष्टि करती है।। जैसे - अनेक पाठक लेखक का कृत्रिम नाम याद रखते हैं क्योंकि पुस्तक पर वही अंकित होता है। परन्तु कुछ पाठक वास्तविक नाम भी याद रख सकते है। अतः वास्तविक नाम से एक निर्देश बनाना आवश्यक है। जैसे -

DANNY (Frederic) and LEE (Manfred Bannington) See

QUEEN (Ellery), Pseud

रंगनाथन ने इस उपसूत्र का उपयोग अपनी शृंखला प्रक्रिया में भी किया है। इस उपसूत्र के उपयोग करने से केवल अन्विष्ट शीर्षक को ही वर्ग निर्देशी प्रविष्टि के रूप में स्वीकार करना चाहिये।

(5) प्रसंग का उपसूत्र

सूचीकरण पद्धति तथा सूचीकल्प अनेक परिस्थितियों से प्रभावित होता है।एक विधि, एक ही प्रणाली सर्वत्र सर्वकाल के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। परिवर्तन की सम्भावना तथा अनुसरणीयता की क्षमता सूचीसंहिता में हमेशा होनी चाहिए अन्यथा यह उपादेय नहीं सिद्ध हो सकती और शीघ्र ही पुरानी पड़ जाएगी।

सूचीसंहिता को सुविधाजनक बनाने के लिए तथा अद्यतन रखने के दृष्टिकोण से प्रसंग उपसूत्र का यह निर्देश कि सूचीकल्प के नियमों को सूत्रवद्ध करते समय पुस्तकों के प्रकाशन की प्रचलित विधि, पुस्तक के सूचीकरण विशेषताओं, पुस्तकालय के सम्प्रेषण व संगठन की सेवायें तथा उद्देश्य की प्रकृति तथा प्रकाशित संदर्भ ग्रन्थ

सूचियां और विशेषतः ग्रन्थात्मक सामयिकियों को दृष्टिकोण में अवश्य रखना चाहिये। अर्थात अन्य तत्वों के प्रसंग में नियमावलियों को सिद्धान्तबद्ध करना चाहिये। समय समय पर नियमावलियों को सिद्धान्तबद्ध करना चाहिए। अर्थात इन तत्वों के प्रसंग में नियमावलियों में परिवर्तनों के प्रसंग में संशोधन का भी प्रावधान होना चाहिये।

सूची संहिता में सूत्र का प्रयोग -

(i) **डॉ. रंगनाथन** का मानना है कि वर्तमान समय में मुद्रण का अविष्कार होने से पुस्तकें दुर्लभ नहीं हैं। मुद्रण के अविष्कार से पूर्व पुस्तकों की संख्या अत्यंत सीमित थी। जिस कारण प्रविष्टियों में पुस्तक का विस्तृत विवरण देना आवश्यक था। लेकिन वर्तमान में इसकी आवश्यकता नहीं है।डॉ. रंगनाथन सूची प्रविष्टियों में अधिक विवरण देने के पक्ष में नहीं है। उनके अनुसार प्रविष्टि में प्रकाशन वर्ष, प्रकाशन का नाम, पृष्ठ संख्या, आदि के संबंध में सूचना अंकित करने की आवश्यकता नही है। जबकि ए.ए.सी.आर.-2 में ये सभी सूचना अंकित करने के निर्देश हैं।

(ii) **प्रकाशित ग्रंथ सूचियाँ-** शोधकर्ताओं की आवश्यकता को पूरा करने के लिए सूची में विषय विश्लेषक प्रविष्टियाँ निर्मित करना जरूरी होता है। इन प्रविष्टियों को निर्मित करने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। लेकिन आधुनिक समय में अनेक राष्ट्र, राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र आदि द्वारा ग्रंथ सूचियाँ प्रकाशित की जा रही हैं, जिसमें विषय विश्लेषिक प्रविष्टियाँ निर्मित करने की आवश्यकता नहीं है। अतः ग्रंथ संदर्भ सूची उपलब्ध हो तो उन प्रलेखों के संबंध में विश्लेषकों को देने की आवश्यकता नहीं है।

(iii) **प्रसंग में परिवर्तन** - समय समय पर पुस्तकों, पाठकों एवं पुस्तकालय सेवाओं में परिवर्तन होते रहते हैं। इस कारण एक बार बनायी गयी सूची संहिता के नियम सदैव उपयोगी नहीं रहते। इस उपसूत्र के अनुसार समय समय पर हुए परिवर्ततनों के अनुरूप सूची संहिता के नियमों में भी संशोधन करना आवश्यक है।

(iv) **सूची प्रविष्टियों** में दी जाने वाली सूचनाएँ पुस्तकालय संगठन पर भी निर्भर करती है। पुस्तकालय संगठन में अप्रवेश्य प्रणाली एवं अबाध प्रवेश प्रणाली दोनों ही हैं।

(v) आधुनिक समय में अबाध प्रवेश प्रणाली का प्रचलन अधिक है। इस प्रणाली में पाठक पुस्तकालय में बिना किसी व्यवधान के पुस्तकों के बीच पहुँच कर अपनी इच्छित पाठ्य सामग्री प्राप्त कर सकता है। इसलिए सूची प्रविष्टियों में बहुत अधिक सूचनाओं को अंकित करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार

पुस्तकालय संगठन को ध्यान में रखकर सूची प्रविष्टियों में सूचनाएं अंकित करना चाहिए। यदि अप्रवेश्य प्रणाली है, तो विस्तृत विवरण, यहाँ तक की अभिटिप्पणी भी देने की आवश्यक है। यदि मुक्त प्रवेश है तो विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं है।

(vi) स्थायित्व का उपसूत्र -

इस उपसूत्र के अनुसार किसी भी प्रविष्टि के स्थायी तत्व में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। किसी व्यक्ति या समष्टि निकाय के नाम में परिवर्तन कर देने से किसी प्रकाशित ग्रंथ के प्रविष्टि ग्रंथ के प्रविष्टि के शीर्षक में परिवर्तन करना निषिद्ध है। यह उपसूत्र निर्देश करता है कि किसी भी संलेख का कोई तत्व विशेषतः शीर्षक को परिवर्तित करने का सूची संहिता में प्रावधान नहीं करना चाहिए, जब तक कि नियमावलियाँ स्वयं प्रसंग के उपसूत्र के प्रभाव में परिवर्तित न हो जायें। कहने का तात्पर्य है कि जब सूचीकरण की नियमावलियों में परिवर्तन हो जाये तब ही किसी प्रकार का परिवर्तन प्रविष्टि में लागू करना चाहिए अन्यथा नहीं।

डॉ. रंगनाथन के अनुसार इस परिस्थिति में निर्धार्यता उपसूत्र का अनुसरण करने पर इस उपसूत्र का पालन करने में आसानी रहती है। निर्धार्यता उपसूत्र के अनुसार यदि भविष्य में कोई नाम परिवर्तन होता है तो प्रविष्टियों के शीर्षकों में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए, बल्कि परिवर्तित नाम से एक नामान्तर निर्देशी प्रविष्टि निर्मित कर देना चाहिए। इससे स्थायित्व उपसूत्र का पालन भी हो जायेगा और पाठक के अभिगम की पूर्ति भी।

सूची संहिता में उपसूत्र का प्रयोग -

सी.सी.सी.में वैकल्पिक नामों से नामान्तर निर्देशी प्रविष्टियाँ दी जाती हैं। इसके नियमानुसार जब कभी व्यक्ति या समष्टि निकाय के नाम में परिवर्तन होता है तो उसके अनुरूप संबंधित प्रलेखों की प्रविष्टियों के शीर्षक को नये नाम के अन्तर्गत परिवर्तित नहीं किया जाता है, बल्कि पाठकों को सतुष्ट करने के लिए नामान्तर निर्देश प्रविष्टि दी जाती है।

ए.ए.सी.आर.-2 इस उपसूत्र की पालन नहीं करता है। इस सूची संहिता के अनुसार यदि नाम में परिवर्तन होता है, तो नये नाम के अन्तर्गत ही नया शीर्षक प्रदान करना चाहिए।

(vii) प्रचलन का उपसूत्र -

यह उपसूत्र यह निर्देशित करता है कि वर्गीकृत सूचीकरण में वर्ग निर्देश प्रविष्टियाँ तथा शब्दकोशीय सूची में विषय प्रविष्टियाँ जो विषयों को निरूपित करती है उनके शीर्षक पदों में प्रचलित पदों या शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। कभी कभी एक ही विषय के दो या अनेक पद प्रचलित होते हैं जैसे - Filling of entries या प्रविष्टियों

का व्यवस्थापन। इसी प्रकार एक शब्द Aves तथा Birds दोनों का अर्थ पक्षी है। ऐसे विषय पाठकों के लिए भ्रम उत्पन्न करते हैं। अतः डॉ. रंगनाथन ने इस समस्या के समाधान के लिए सामान्य प्रचलित शब्द के प्रयोग को विशिष्ट पद की अपेक्षा अत्यधिक उपयुक्त बताया है। क्योंकि विशेषज्ञ पाठक तो दोनों पदों से अवगत होता है जबकि सामान्य पाठक प्रचलित शब्द से ही परिचित होता है। अतः सामान्य पद का ही प्रयोग करना चाहिए। परन्तु विशिष्ट पुस्तकालयों में विशेषज्ञों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले पदों का प्रयोग करना अधिक उपादेय सिद्ध होगा और साथ ही मितव्ययी भी होगा। लेकिन यह उपसूत्र विषय शीर्षकों के ही परिप्रेक्ष्य में मान्य किया गया। अन्य क्षेत्रों में इसको महत्व नहीं दिया गया।

प्रचलन के उपसूत्र का पालन करने पर स्थायित्व के उपसूत्र की अवहेलना होती है। यदि हम परिवर्तन होने पर प्रविष्टियों में परिवर्तन करते हैं, जो प्रचलन का पालन होता है एवं स्थायित्व की अवहेलना होती है। इन दोनों उपसूत्रों के द्वन्द्वों को समाप्त करने के लिए रंगनाथन ने सुझाव दिया कि प्रचलन के उपसूत्र का उपयोग वर्ग निर्देशित प्रविष्टियों तथा विषय प्रविष्टियों के शीर्षकों तक ही सीमित रखना चाहिए और स्थायित्व के उपसूत्र का उपयोग नाम शीर्षकों के लिए करना चाहिए। इस प्रकार इस द्वन्द्व को समाप्त किया जा सकता है।

(viii) सुसंगति का उपसूत्र

यह उपसूत्र यह निर्देश देता है कि सूची संहिता के नियमों को ऐसा होना चाहिए कि किसी भी पुस्तक की सभी इतर प्रविष्टियाँ उसी पुस्तक की मुख्य प्रविष्टि से संगति रखती हो या सभी प्रलेखों की प्रविष्टियों में आपस में कुछ आवश्यक तत्वों जैसे वरण, प्रस्तुतिकरण तथा शीर्षक एवं अनुच्छेदों के लिखने की शैली में संगति होनी चाहिए ताकि समस्त पुस्तकों की मुख्य प्रविष्टियाँ एक ही किस्म व जाति की होनी चाहिए। जैसे - शब्दकोशीय सूची में लेखक प्रविष्टि मुख्य प्रविष्टि है तो सभी पुस्तकों की मुख्य प्रविष्टियों शब्दकोशीय सूची में लेखक प्रविष्टि ही होनी चाहिए।

सूची संहिता में उपसूत्र का प्रयोग

ए.ए.सी.आर. में इस उपसूत्र की अवहेलना होती है। इस संहिता में कई ऐसे नियम हैं, जिससे संगति का उपसूत्र का उल्लंघन होता है। जैसे शासन समष्टि लेखक की कृतियों की मुख्य प्रविष्टियों में विषय शीर्षक को उपशीर्षक के रूप में देने की अनुशंसा की है। इसी प्रकार धार्मिक ग्रंथ, आख्याहीन अनामक कृतियाँ, पूर्वकाल के संकलन, शांति संधियाँ आदि के लिए एक रूप आख्या देने की अनुशंसा की गयी है।

सी.सी.सी.में इस उपसूत्र का पूर्ण पालन किया गया है। इसमें मुख्य प्रविष्टि के शीर्षक के रूप में सदैव आह्वान अंक देने की ही अनुशंसा की गई है।

(ix) **पुनः स्मरण की विशेषता का उपसूत्र**

डॉ. रंगनाथन ने इस सूत्र का प्रतिपादन 1969 में किया था उन्होंने अनुभव के आधार पर देखा कि सफल सूची के लिए साधारण पाठक की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं विशेष कर उनकी स्मरण की क्षमता को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। स्मरण की इस विशेषता को ध्यान में रखने से यह लाभ होगा कि जिन शब्दों का व्यवहार हम सत्ता को संबोधित करने के लिए करेंगे पाठक भी उन्हीं शब्दों द्वारा उस सत्ता को स्मरण करने की कोशिश करेंगे। अतः हम उन्हीं शब्दों का व्यवहार करने की कोशिश करें जिनके सम्पर्क में प्रायः पाठक रहते है।

इस सूत्र से तात्पर्य यह है कि यदि किसी पुस्तक के लेखक के रूप में किसी सत्ता का नाम बहु शब्दों में अभिव्यक्त किया हो या पुस्तक की आख्या बहु शब्दों में हो तो उनमें से उस शब्द को मुख्य प्रविष्टि के शीर्षक के रूप में स्थान देना चाहिए जिनमें पाठकों के पुनः स्मरण की विशेषता अधिक हो।

ज्ञान जगत गतिशील एवं निरंतर वर्द्धनशील है। ज्ञान जगत के विकास में व्यावसायिक संगठनों ने भी शोध एवं प्रलेखों के प्रकाशन के माध्यम से पूरा योगदान दिया है।विशेष श्रेणी के नामों की संख्या में वृद्धि, समष्टि ग्रंथकारिता की संख्या में वृद्धि तथा नामों में परिवर्तन कर लेने की प्रवृत्ति आदि ऐसे मद हैं जिन्होंने पुनः स्मरण की आवश्यकता को और अधिक प्रबल किया है। निम्नांकित कारणों से पुनः स्मरण विशेषता के उपसूत्र की आवश्यकता महसूस की गयी है -

- **समष्टि निकाय की संख्या में वृद्धि** - पिछले कुछ वर्षों में समष्टि निकायों की संख्या में वृद्धि होने से, पाठकों के लिए इनके नामों को स्मरण रखना काफी कठिन हो गया है। भारत में ही प्रतिवर्ष औसतन 30 संस्थाएं स्थापित हो रही है। पूरे विश्व में प्रति वर्ष 1700 के लगभग संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है।
- **समष्टि निकायों की श्रेणियों में वृद्धि** - समष्टि निकाय की संख्या में वृद्धि के साथ साथ श्रेणियों में भी वृद्धि होने लगी है। इस कारण इनकी एक दूसरे से अलग पहचान हेतु विशेष व्यवहार की आवश्यकता होती है। डॉ. रंगनाथन ने समष्टि निकाय को शासन, संस्था व सम्मेलन की श्रेणियों में विभक्त किया है। लेकिन अब नयी sovereign body का प्रादुर्भाव हुआ है।
- **समष्टि निकायों के समनाम** - एक साथ ही क्षेत्र में अनेक संस्थाओं के कार्य करने से उनके नाम भी मिले जुले होते हैं। ऐसी स्थिति में पाठकों को अपनी अभीष्ट निकाय के प्रलेख प्राप्त करने में कठिनाई होती है केवल अन्तर्राष्ट्रीय संबंध क्षेत्र में ही से 100 से अधिक संस्थाएँ पूरे विश्व में कार्यरत हैं।
- **बहुशब्दीय नाम** - संस्थाओं की संख्या में वृद्धि के कारण उनके नाम भी बहुशब्दीय होते जा रहे हैं, जिससे उनके नाम अन्य संस्थाओं से अलग हो

सकें। नाम को स्पष्टता प्रदान करने के लिए सही विषय, भौगोलिक क्षेत्र,समष्टि की प्रकृति आदि को मिलाकर नाम को विशिष्टता प्रदान करती है।

- **वैकल्पिक नाम** - कई समष्टि निकायों के नामों को संक्षिप्त नामों से विख्यात होते हैं। जैसे FID, ISO आदि। अतः इस प्रकार के अभिगमों की पूर्ति हेतु इस उपसूत्र की आवश्यकता महसूस होती है।

सूची संहिता में उपसूत्र का प्रयोग :-

(1) **व्यक्ति नाम** - सूची संहिता में पाश्चात्य तथा पाश्चात्यीकृत पारिवारिक नामों अर्थात अंतिम शब्द को प्रविष्टि तत्व समझा जाता है। इन तत्वों में पुनः स्मरण की विशेषता संकेन्द्रित रहती है। जैसे - TALE SARA (Dilip Kumar)

(2) **समष्टिगत नाम** - डॉ. रंगनाथन ने समष्टिगत नामों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है -

शासन या सरकार - शासन में प्रकाशीय अंग का उपकल्पन पुनः स्मरण विशेषता के उपसूत्र के आधार पर किया जाता है। नियमांक JC6 के अनुसार शासन के प्रशासकीय विभाग के उपकल्पन में उसके कार्य क्षेत्र को दर्शाने वाला शब्द या शब्द-समूह को प्रविष्टि पद बनाया जाता है। जैसे - INDIA, EDUCATION (Ministry of -),

शासन द्वारा समय समय पर विशेषज्ञ कार्य व निश्चित अवधि हेतु आयोग, समिति आदि स्थापित किए जाते हैं। ऐसे आयोग एवं समिति के प्रतिवेदनों को सूचीकृत करने के लिए नियामंक JC7 के अनुसार शासन के अस्थायी अंग के प्रविष्टि तत्व का उपकल्पन प्रशासकीय विभाग से संबंधित JC6 व उसके उपखण्डों के अनुसार होगा। जैसे - INDIA FINANCE (Commission)(1951) (chairman: Kc Neogy).

संस्था और सम्मेलन के अंगों के बहुशब्दीय नामों को पाठक उनके नाम के शब्दों को यथाक्रम में स्मरण रखने में असमर्थ रहते हैं। अतः उनके नाम में उस पद या उन शब्दों को चयन करना पड़ता है जिनमें सर्वाधिक पुनः स्मरण विशेषज्ञता निहित हो। साधारणतया अनुमान लगाया गया है कि स्मृति, सम्बद्ध स्मरण रखने और पुनः स्मरण के आधार पर किसी समष्टि निकाय के नाम के उस शब्द या उन शब्दों को किसी पाठक द्वारा पुनः स्मरण करने की अधिक सम्भावना है, जिनसे वह साधारणतया अधिक संबंद्ध या सम्बन्धित रहता है।

नियमांक JD17 के अनुसार किसी संस्था के नाम से संबंधित जिस प्रविष्टि तत्व का शीर्षक के रूप में व्यवहार किया जाये उसको उस शब्द या शब्द समूह के द्वारा एकवचन कर्ताकारक के रूप मे व्यक्त करना चाहिये जिससे संस्था का विषय या उसके कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत उसकी कोई विशिष्टता प्रकट होती है।

जैसे - Indian Institute of Science = Science (Indian Institute of -)

नियमांक JE17 के अनुसार, सम्मेलन के नाम के शीर्षक के उपकल्पन में सम्मेलन के विषय या अन्य विशेषता सूचक शब्द या शब्द समूह प्रविष्टि पद होगा। जैसे- MANAGEMENT SCIENCE (International Conference on-) (London) (1959).

कुछ सम्मेलन ऐसे होते है जिनका कोई विशिष्ट नाम नहीं होता तथा यह सामान्यता कुछ व्यक्तियों का समूह होता है जो कि अपने समूह के सदस्यों पर विचार विनिमय करता है। जैसे - राजनीतिज्ञ, वकील, कपड़ामील श्रमिक आदि। नियमांक के अनुसार यदि सम्मेलन का कोई विशिष्ट नाम न हो और वह अनावधिक हो, तो व्यक्तियों के वर्ग के अनुरूप नाम दिया जाना चाहिए। जैसे नागरिक भारतीय निवासी, महिलाएं, व्यापारी, संगीतज्ञ आदि। इस प्रकार व्यक्तियों के वर्ग को दर्शाने वाले शब्द या शब्द समूह की प्रविष्टि पद बनायी जायगी। जैसे -INDIAN RESIDENTS (Ceylon) (1978).

इस प्रकार पुनः स्मरण की विशेषता का उपसूत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डॉ. रंगनाथन ने जहां इस उपसूत्र को सूचीकरण में क्रान्तिकारी कदम बताया है वहीं यह उपसूत्र उनके ही मुख्य चिन्तन के विपरीत हैं। रंगनाथन सूचीकार को स्वायत्तता देने के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार सूची संहिता के नियम ऐसे होने चाहिये कि जिससे उसका कहीं भी और कभी भी लागू किये जाने पर समान परिणाम प्राप्त हों।

पुनः स्मरणमान के उपसूत्रों का अन्य उपसूत्रों से संबंध

(i) **निर्धार्यता का उपसूत्र के साथ संबंध** - इस सूत्र के अनुसार केवल उन्हीं सूचनाओं को प्रविष्टियों में मुख्यतया शीर्षक अनुच्छेद में अंकित करना चाहिए जो पुस्तक के मुख पृष्ठ तथा उसके अतिरिक्त पृष्ठों पर अंकित हो। यही से पुनः स्मरण के उपसूत्र का कार्य क्षेत्र प्रारम्भ होता है कि उपलब्ध शब्द या शब्द समूह में से ऐसे शब्द को प्रविष्ट पद के रूप में चयन किया जाता है, जिसमें सर्वाधिक पुनः स्मरण निहित हो। अतः इस हेतु प्रकाशक को चाहिये कि लेखक के नाम के उस भाग को या तो काले अक्षरों में या मोटे अक्षरों में मुद्रित करे जिनसे वह पाठकों में विख्यात है अथवा होना चाहता है।

(ii) **प्रगुणता का उपसूत्र के साथ संबंध** - दोनों ही उपसूत्र बहुउद्देश्यीय नामों से संबंधित है। प्रगुणता का उपसूत्र कहता है कि ऐसे शब्द को प्रविष्टि पद बनाया जाना चाहिए जिसमें सर्वाधिक अन्तर्शक्ति को पूर्णत अग्र भाग में एकत्रित किया जाना चाहिये तथा न्यूनतम अन्तर्शक्ति को अगले अनुच्छेद में जाने देना चाहिये तथा अन्तर्शक्ति का यह बहाव भी अगले अनुच्छेदों में तीव्रता के ह्रासमान अनुक्रम में होना चाहिये। वैसे तो पुनः स्मरण व प्रगुणता के उपसूत्र लगभग समान ही लगते हैं फिर भी दोनों में भिन्नता है। जहाँ पुनः स्मरण का उपसूत्र

पुनःस्मरण वाले शब्द या शब्द समूह को प्रविष्टि पद बनाने पर जोर देता है, वही प्रगुणता का उपसूत्र सर्वाधिक अन्तर्शक्ति वाले शब्द या शब्द समूह को प्रविष्टि पद बनाने को कहता है। जिसमें कभी कभी भिन्नता हो सकती है।

(iii) **व्यष्टिकरण का उपसूत्र के साथ संबंध** - जहाँ इस उपसूत्र का प्रमुख उद्देश्य शीर्षकों में एकरूपता व समानता को भंग करना है चाहे वह शीर्षक व्यक्ति का नाम, भौगोलिक सत्ता, समष्टि निकाय, ग्रंथमाला, प्रलेख, विषय या भाषा का हो वहीं पुनः स्मरण के उपसूत्र का कार्यक्षेत्र बहुशब्दीय नाम वाले व्यक्तियों या समष्टि निकायों में है जहाँ व्यष्टिकरण के उपसूत्र, किसी प्रविष्टि में शब्दों के आधार पर भिन्नता नहीं करता और पुनः स्मरण बहुशब्दीय शीर्षकों पर लागू होता है। सर्वाधिक पुनः स्मरण वाले शब्द का चयन करते ही पुनः - स्मरण उपसूत्र का कार्य समाप्त हो जाता है। जबकि व्यष्टिकरण का उपसूत्र पद को अन्य पदों से भिन्नता प्रदान करने के लिए प्रयुक्त होता है।

(iv) **प्रसंग के उपसूत्र के साथ संबंध** - एक सूची संहिता के नियमों का निर्माण निम्नांकित प्रसंग में होना चाहिए।

→ पुस्तकालयों के संगठन की प्रवृत्ति जो पुस्तकालय सेवा की नीति के संबंध में प्रचलित हों।

→ पुस्तक के सूचीकरण लक्ष्यों की प्रवृत्ति जो ग्रन्थ उत्पादक नीति में प्रचलित है।

→ प्रकाशित ग्रंथ संदर्भ सूचियों और विशेष रूप से ग्रंथपरक पत्रिकाओं के अस्तित्व में आना।

→ नियमों के समय समय पर प्रसंग में परिवर्तन होने के कारण पग से पग मिलाकर चलने के लिए संशोधित करना/व्यवहार में उक्त परिवर्तन के कारण ही पुनः स्मरण के उपसूत्र का जन्म हुआ।

(v) **वांछित शीर्षक के उपसूत्र के साथ संबंध -** वांछित शीर्षक, प्रगुणता व पुनः स्मरण तीनों ही उपसूत्र एक ही परिवार के सदस्य प्रतीत होते हैं। वांछित शीर्षक से या उस शीर्षक के एक विशेष वरण के एक विशेष उपकल्पन में एक विशेष इतर प्रविष्टि जो उससे व्युत्पन्न होती है निर्मित की जाये या नहीं इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है कि क्या पाठकों या पुस्तकालय कर्मचारियों के द्वारा उक्त पुस्तक को उस विशेष प्रकार या उसके उस विशेष वरण या उसके विशिष्ट उपकल्पन या उस विशेष प्रविष्टि के अन्तर्गत खोजे जाने की संभावना है।

दोनों उपसूत्रों से सभी समानताओं के बावजूद इनके प्रयुक्तिकरण में भिन्नता है। पुनः स्मरण उपसूत्र वांछित शीर्षक व उपसूत्र से अत्यधिक यांत्रिक है, क्योंकि किसी भी सूचीकार को किसी भी लेखक के बहुशब्दीय नाम में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती फिर भी कभी कभी उसके सामने कठिनाई उत्पन्न

हो जाती है। ऐसी स्थिति में सूचीकार को विवश होकर पुनः स्मरण के उपसूत्र की अवहेलना करनी पड़ती है।

8.8 सारांश (Summary)

इस इकाई में सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त के विभिन्न सूत्र और उपसूत्रों की जितने भी दृष्टिकोण से चर्चा की गयी है उससे स्पष्ट है कि पुस्तकालयों में संग्रहित ग्रंथों की प्रकृति चाहे कैसी भी हो किन्तु उनका सूचीकरण निर्वाध रूप से किया जा सकता है। सूचीकरण के इन उपसूत्रों के फलस्वरूप न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व के सूची संहिताओं के निर्माण करने,सूचीकरण से संबंधित नियमों की वैज्ञानिक व्याख्या करने, अनेक नियमों के मध्य उत्पन्न विवादों के निपटारा तथा समाधान करने में इनका महत्व निःसन्दिग्ध है।

डॉ. एस.आर. रंगनाथन ने पुनः स्मरण विशेषता के उपसूत्र को सूचीकरण में क्रान्तिकारी कदम बताया है वहीं यह उपसूत्र उनके ही मुख्य चिन्तन के विपरीत जाता है। डॉ. रंगनाथन सूचीकार को स्वायत्ता देने के पक्ष में नहीं हैं।

उनके अनुसार सूची संहिता के नियम ऐसे होने चाहिये कि जिससे उसको कहीं भी और किसी भी व्यक्ति द्वारा लागू किए जाने पर समान परिणाम प्राप्त हों। सूची संहिता के नियमों का पालन भी दृढ़ता से होना चाहिये। उसकी स्थिति एक विधि संहिता के समान हो उनके अनुसार जहाँ तक संभव हो सूचीकार को निर्णय बुद्धि पर कुछ नहीं छोड़ना चाहिए। यह सब वैज्ञानिक विधि में भी आवश्यक है।

8.9 संबंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त के विभिन्न उपसूत्रों का वर्णन करें।

(2) सूचीकरण के संदर्भ में निर्धायता के उपसूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

(3) सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त का अर्थ एवं आवश्यकताओं की विवेचना करें।

(4) सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त के विभिन्न सूत्रों की चर्चा करें।

(5) वांछित शीर्षक के उपसूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

(6) डॉ. रंगनाथन ने सूत्र ; उपसूत्र और सिद्धान्त को किस किस प्रसंग में वर्णित किया है ? उनका संक्षिप्त वर्णन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) संक्षिप्त टिप्पणी लिखें -

(क) व्यष्टिकरण का उपसूत्र

(ख) निर्धार्यता का उपसूत्र

(ग) पुनः स्मरण की विशेषता का उपसूत्र

(घ) प्रबलता का उपसूत्र

(ङ) प्रचलन का उपसूत्र

(च) स्थायित्व का उपसूत्र

(छ) सुसंगति का उपसूत्र

(2) सूचीकरण के नियामक सिद्धान्त की उपयोगिता की संक्षिप्त चर्चा करें।

(3) निम्नांकित पर टिप्पणी लिखें -

(क) अर्थ निर्णय का सिद्धान्त

(ख) निष्पक्षता का सिद्धान्त

(ग) मितव्ययता का सिद्धान्त

(घ) साम्यरूपता का सिद्धान्त

(ङ) परिसरण का सिद्धान्त

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) लेखक के नाम के साथ जन्म तथा मृत्यु जोड़ने की अनुशंशा किस उप सूत्र के पालनार्थ की गई है?

(2) किस सूत्र के अनुसार सूची मूल्यों के नियमों में संशोधन करना आवश्यक हैं।

(3) मुख पृष्ठ पर अंकित नाम को ही मुख्य प्रविष्टि में प्रयोग करने से किन दो उप सूत्रों का पालन होता है।

अति लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. व्यष्टिकरण का उपसूत्र
2. प्रसंग का उपसूत्र
3. निर्धार्यता का उपसूत्र तथा स्थायित्व का उपसूत्र ।

8.10 उपयोगी पुस्तकें

1. रंगनाथन, एस.आर. : वर्गीकृत सूची संहिता ।
2. एंग्लो अमेरिकन कैटलॉगिंग रूल्स : द्वितीय संस्करण।
3. अग्रवाल, एस.एस. : सूची प्रविष्टि और प्रक्रिया
4. सूद, एस.पी. : पुस्तकालय सूचीकरण के सिद्धान्त
5. त्रिपाठी, एस.एम.: आधुनिक सूचीकरण।
6. शर्मा, एस.के. पाण्डेय : सरलीकृत पुस्तकालय सूचीकरण सिद्धान्त ।
7. कुमार, गिरजा एवं कुमार, कृष्ण : सूचीकरण के सिद्धान्त ।

इकाई - 9 : केन्द्रीकृत एवं सहकारी सूचीकरण तथा संघ सूची

इकाई की रूपरेखा

9.0 विषय परिचय

9.1 उद्देश्य

9.2 केन्द्रीकृत सूचीकरण

- अर्थ एवं परिभाषाएं
- उद्देश्य
- लाभ
- हानि
- स्वरूप
- पत्रक सेवा
- वाणिज्यिक सूचीकरण

9.3 सहकारी सूचीकरण

- परिभाषाएँ
- आवश्यक कारक
- लाभ
- हानि
- स्वरूप

9.4 केन्द्रीकृत और सहकारी सूचीकरण में अंतर

9.5 संघ सूची

- अर्थ एवं परिभाषाएँ
- उद्देश्य
- निर्माण
- महत्व
- लाभ
- संकलन

9.6 सारांश

9.7 सम्बन्धित प्रश्न

9.8 अति लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 विषय परिचय (Introduction)

हम एक पुस्तकालय के संग्रह में जोड़े जाने वाले लगभग प्रत्येक प्रलेख का वर्गीकरण एवं सूचीकरण करते हैं। उन्हीं प्रलेखों को दूसरे पुस्तकालयों द्वारा भी अर्जित किया जा सकता है। वे पुस्तकालय भी उन प्रलेखों का वर्गीकरण और सूचीकरण करेंगे। अगर वे सभी पुस्तकालय एक समान सूची संहिता एवं वर्गीकरण पद्धति को अपनाते हैं तब प्रलेखों की वर्ग संख्या के साथ साथ सूची संलेख भी एक जैसे होंगे। अर्थात उन पुस्तकालयों में समान कार्य को दोहराया जाएगा। लेकिन इस कार्य को ऐसे पुस्तकालय आपस में बाँट ले तब दोनों के धन एवं समय के व्यय में कमी आएगी तथा दोनों पुस्तकालयों को लाभ भी होगा।

केन्द्रीकृत प्रक्रिया को अपनाये जाने की स्थिति में कुछ समस्याएं हो सकती है। इस उद्देश्य हेतु पुस्तकालय की कार्य प्रणाली तथा अभ्यास का आँकलन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय संगठन कोई समाधान नहीं देते है। क्योंकि सभी पुस्तकालय सभी पुस्तकों का क्रय नहीं करते है। इसलिए स्थानीय आवश्यकतानुसार एवं विशिष्ट पुस्तकालय एक प्रलेख का व्यष्टिकरण करेगा। इसी प्रकार पुस्तकालय के आकार के कारण जहाँ एक पुस्तकालय को अधिक इतर संलेख (Added Entry) की आवश्यकता पड़ती है वहीं दूसरे पुस्तकालय को कम संलेखों की आवश्यकता पड़ सकती है।

अगर इस प्रकार की सहभागिता अनेक पुस्तकालयों द्वारा की जाती है तो सभी सहभागी पुस्तकालय लाभान्वित होते हैं। इसी प्रकार अगर एक केन्द्रीय पुस्तकालय या एक शीर्ष पुस्तकालय है और कई शाखाएँ हैं, तब सभी पुस्तकालय द्वारा तकनीक कार्य में व्यय किये जाने वाले समय एवं धन के स्थान पर इन शाखा पुस्तकालयों की इच्छा पर केन्द्रीय पुस्तकालय स्वतः ही इस प्रक्रियाकरण को कर देता है।

जब तक पुस्तक की सैकड़ों प्रतियाँ प्रकाशित होती रहेंगी उस पुस्तक को क्रय करने वाले सभी पुस्तकालय इस प्रक्रिया को हमेशा करेंगे। अगर पुस्तक में ही सामान्यतया स्वीकृत प्रसूची संहिता के अनुसार प्रसूची संलेख एवं प्रचलित पद्धति के अनुसार आह्वान संख्या दी जाए तो पुस्तक के प्रक्रियाकरण करने का भार उस पुस्तक के क्रेता सभी पुस्तकालयों के लिए काफी कम हो जाता है। इस प्रकार केन्द्रीकृत प्रक्रियाकरण एक बहुत अच्छी सहकारी या एक व्यापारिक पद्धति हो सकती है।

9.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में हम केन्द्रीकृत तथा सहकारी सूचीकरण और संघ सूची से संबधित सभी तथ्यों की चर्चा करेंगे। जैसे -

- केन्द्रीकृत सूची की परिभाषा, उद्देश्य, लाभ, हानि, स्वरूप, पत्रक सेवा इत्यादि के बारे में जानेंगे,
- सहकारी सूचीकरण का अर्थ एवं परिभाषा, आवश्यक कारक, लाभ, हानि, स्वरूप इत्यादि से अवगत होंगे।

- केन्द्रीकृत सूची और सहकारी सूचीकरण के तुलनात्मक अध्ययन से परिचित होंगे,
- संघ सूची के अर्थ एवं परिभाषा, उद्देश्य, निर्माण, महत्व, लाभ इत्यादि की व्याख्या कर पाएंगे।

9.2 केन्द्रीकृत सूचीकरण (Centralized Cataloguing)

केन्द्रीकृत सूची से तात्पर्य कई उपयोगकर्ताओं को केन्द्रीय बिन्दु से सूचीकरण सेवा देना है। इन सेवाओं का विस्तार प्रलेख के साधारण सूचीकरण से पूर्ण सूचीकरण के अन्तर्गत पत्रकों का निर्माण करके सूची में समावेश करने तक हो सकता है।

अनेक महानगरों में जनता को सेवा प्रदान करने हेतु सरकार द्वारा पुस्तकालय स्थापित किए जाते हैं लेकिन विशाल क्षेत्रफल वाले इन नगरों में यदि पुस्तकालय को महानगर के केन्द्रीय स्थान पर भी स्थापित कर दिया जाय तब भी प्रत्येक क्षेत्र के नागरिक उस पुस्तकालय की सेवा प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकते। इसलिए ऐसे शहरों में एक केन्द्रीय पुस्तकालय के साथ-साथ अलग-अलग स्थानों पर शाखा पुस्तकालयों की स्थापना की जाती है। जहाँ सेवा की दृष्टि से उनका केन्द्रीकृत होना आवश्यक है। जिसका अर्थ है कि सभी शाखा पुस्तकालयों के लिए पुस्तकों का क्रय, उनका वर्गीकरण, सूचीकरण इत्यादि केन्द्रीय पुस्तकालयों द्वारा किया जाता है। उसके बाद पुस्तकों को उनके सूची पत्रकों के साथ संबंधित शाखा पुस्तकालयों में भेज दिया जाता है। केन्द्रीय ग्रंथालय द्वारा सभी पुस्तकालयों हेतु की गई इस सूचीकरण प्रक्रिया को केन्द्रीकृत सूचीकरण कहा जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन में केन्द्रीकृत सूचीकरण शेफील्ड, मैनचेस्टर तथा लिवरपूल नामक बड़े नगरों में अपनाया गया है। यू.एस.ए.में लाइब्रेरी आफ कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत सूची पत्रक भी केन्द्रीकृत सूची का ही उदाहरण है। क्योंकि विशेष रूप से इस पुस्तकालय में सूची पत्रक निजी उपयोग के लिए मुद्रित किये जाते हैं।

अर्थ एवं परिभाषाएँ -

- **अर्थ -**

आधुनिक समय में कोई भी सार्वजनिक संस्था चाहें वह कितनी ही विशाल क्यों न हो स्वयं अकेले ही सभी जनता को सेवा प्रदान नहीं कर सकती है। इसलिए सार्वजनिक संस्थाएँ अपनी सेवायें अपने कार्यक्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर समस्त जनता तक पहुँचाने के लिए अनेक शाखाओं एवं चल केन्द्रों की स्थापना करती है। इनके माध्यम से अपनी सम्पूर्ण सेवाओं से जनता को लाभांवित करती है जैसे - डाक सेवा, स्वास्थ्य इत्यादि।

पुस्तकालय सेवा भी कुछ इसी तरह के दृष्टिकोण पर आधारित है, अतः पुस्तकालय भी अपनी समस्त सेवाओं से अपने कार्यक्षेत्र की समस्त जनता को लाभान्वित कराने के उद्देश्य से अनेक शाखा पुस्तकालय एवं चल पुस्तकालय की स्थापना करती है। कुछ कार्य जैसे - ग्रन्थों का क्रय, वर्गीकरण, सूचीकरण इत्यादि एक केन्द्रीय एवं

निर्धारित स्थान पर किये जाते हैं, तो यहाँ केन्द्रीयकरण के सिद्धान्तों का अनुसरण हुआ माना जाएगा।

- **परिभाषाएँ**

→ **सी.डी.नीथम** के मतानुसार, ''अन्य पुस्तकालयों के लाभ के लिए किसी केन्द्रीय संगठन द्वारा ग्रंथों का सूचीकरण।''

→ **ए.एल.ए.** के अनुसार, ''एक पुस्तकालय या केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा पुस्तकालय तंत्र के सभी पुस्तकालयों हेतु सूचियों का निर्माण एवं वितरण की व्यवस्था करना ही केन्द्रीकृत सूची है।''

एच.ए.शार्प के शब्दों में, ''केन्द्रीकृत सूची जो कि सामान्यतया विशाल पुस्तकालय प्रणाली में अपनाया जाता है जिसके समस्त सूचीकरण, वर्गीकरण और अन्य प्रक्रियाएं तंत्र के इस केन्द्रीय बिन्दु पर सम्पन्न की जाती हैं, जो सामान्यतः केन्द्रीय पुस्तकालय होता है।

- **ग्लोसरी** के शब्दों में, ''किसी केन्द्रीय ब्यूरो द्वारा पुस्तकों का सूचीकरण और उसके द्वारा सूची पत्रकों या अन्य विधि द्वारा सूची प्रविष्टियों का वितरण। जैसे - लाइब्रेरी आफ कांग्रेस एवं ब्रिटिश नेशनल विब्लियोग्राफी द्वारा प्रदत्त सेवायें।''
- **उद्देश्य**

केन्द्रीकृत सूची के निम्नांकित उद्देश्य है -

→ सूचीकरण अभ्यास में एकरूपता एवं मानकीकरण प्राप्त करना।

→ सूचीकरण की लागत को कम करना।

→ कार्य की द्विरावृत्ति को रोकना।

→ अच्छी एवं प्रभावी पुस्तकालय सेवा देने में समस्त पुस्तकालयों की सहायता करना।

लाभ :

केन्द्रीकृत सूचीकरण के निम्नांकित लाभ है -

→ जब प्रक्रियाकरण कार्य कई पुस्तकालयों द्वारा सहकारिता के आधार पर एक पुस्तकालय द्वारा किया जाता है तो वैयक्तिक पुस्तकालयों के द्वारा किये जाने वाले व्यय में बचत करना।

→ इस कार्य में सभी सहयोगी पुस्तकालयों द्वारा कार्य की द्विरावृत्ति को रोकना।

→ अच्छे मानव शक्ति संसाधन की व्यवस्था कर गुणवत्ता में सुधार करना।

→ सूचीकरण कार्य से मुक्त कुछ व्यावसायिक कर्मचारियों को अन्य उपयोगी व्यवसायिक सेवाओं के कार्यों में लगाया जा सकता है।

→ केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा सूचीकरण एक स्थान पर होने तथा विशिष्ट सूचीकारों द्वारा निष्पादित किये जाने को कारण सूचियाँ उपयुक्त स्तर की होती है और उनमें एकरूपता होती है जिससे ''इन्टर लाइब्रेरी लोन'' में सुविधा होती है।

हानि :

केन्द्रीयकृत सूचीकरण के निम्नांकित हानि हैं -

→ सूची प्रलेखों के उत्पादन में विलम्ब होना स्वाभाविक है जिससे पाठकों को जानकारी प्राप्त करने में असुविधा होती है और संबंधित पुस्तकालय की सूची अद्यतन नहीं रखी जा सकती है।

→ सूची संलेखों से संबंधित पुस्तकालय में संबंधित पुस्तकों से मिलान करने में समय नष्ट होता है और स्थानीय पद्धति को समाहित करने में असुविधा होती है।

→ सूची पत्रकों को प्राप्त करने के लिए उनके व्यय को, क्रय करने वाले पुस्तकालय द्वारा वहन करना पड़ता है।

→ कुछ पुस्तकालयों में केन्द्रीकृत सूची अपनाने के लिए आवश्यक धनराशि का अभाव हो सकता है।

→ स्थानीय वैभिन्यता के कारण केन्द्रीकृत सूची को लागू करने में कठिनाइयाँ हो सकती है। छोटे संग्रह वाले पुस्तकालय सूचीकरण कार्य को स्वयं जल्दी पूरा कर सकते हैं।

स्वरूप :

केन्द्रीकृत सूचीकरण के प्रमुख स्वरूप निम्नांकित है -

(i) पत्रक/शीफ सेवा

पत्रक सेवा केन्द्रीकृत सूचीकरण का एक प्रकार है, जहाँ एकक संलेखों को एक केन्द्रीय संगठन के द्वारा बनाया जाता है। प्रत्येक व्यैक्तिक पुस्तकालय इन पत्रकों को कई संख्याओं में खरीद सकते हैं। एक पत्रक मुख्य प्रविष्टि के लिए रखकर अन्य पत्रकों का उपयोग इतर संलेखों में उचित अभिगम बिन्दुओं जैसे सहकारक आख्या, विषय इत्यादि के नाम से बनाने के लिए किया जाता है। इसके अलावे भी इतर प्रविष्टियों का निर्माण एकक अभिलेख प्रणाली में किया जा सकता है। बी.एन.बी., लाइब्रेरी आफ कांग्रेस एवं एच.डब्ल्यू. विल्सन कम्पनी द्वारा इस प्रकार की सेवा प्रदान की जा रही है।''

(ii) मार्क सेवा

इस प्रक्रिया में कोई केन्द्रीय संगठन प्रलेखों की प्रविष्टियां को मशीन पठनीय स्वरूप में तैयार करता है जैसे-मैगनेटिक टेप/माइक्रोफिल्म/संबधित एजेन्सी मैगनेटिक टेपों पर सूचीकरण पत्रक को अभिलेखबद्ध कर उनकी प्रतियों को विभिन्न पुस्तकालयों में वितरित करता है। इन मैगनेटिक टेपों से प्रत्येक पुस्तकालय कम्प्यूटर की सहायता से मुद्रित सूची तैयार कर सकते हैं और वाङ्मय सूचियों के लिए भी पत्रकों पर संलेखों को तैयार कर सकते हैं। मार्क आधुनिक समय में अधिक प्रचलित है। अनेक सूचना प्रणालियों तथा प्रलेखन केन्द्र मैगनेटिक टेपों का उपयोग कर अनुक्रमणिकाओं एवं सारांश सेवाओं के

प्रलेखों के संलेख तैयार कर वितरित कर रहे हैं। मैगनेटिक टेप का उपयोग भी पत्रक सूची की भाँति उपयोग में लाया जा सकता है। यू.एस.ए. के नासा की सूचियां मैगनेटिक टेपों की है। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस का मार्क प्रोजेक्ट इसी प्रकार की प्रणाली से कार्य करता है। जो मशीन रीडबेल सूचीकरण सूचना टेपों पर तैयार कर सुलभ करता है।

(iii) सूचना सेवा

सूचना सेवा केन्द्रीकृत संगठन ग्रन्थसूची बनाता है, जिससे सहभागी पुस्तकालय अपनी सूची बना सकते हैं। इन सूचियों को या तो प्रदत्त ग्रन्थ सूची में से प्रसूचीकृत पुस्तकों की सूचना का उपयोग किया जाता है या ग्रंथसूची में से आवश्यक प्रविष्टियों को काटकर तथा पत्रकों पर चिपका कर प्रसूची बनायी जा सकती है। बी.एन. बी. एवं आई.एन.बी. इस प्रकार के उपकरण हैं।

(iv) स्त्रोत में सूचीकरण

यदि पुस्तक में ही पुस्तक सूची संलेख प्रकाशक द्वारा दे दिया जाय तो इससे पुस्तक खरीदने वाले पुस्तकालय को काफी सहायता मिल सकती है। इससे व्यक्तिगत पुस्तकालय का प्रक्रियाकरण कार्य कुछ सीमा तक कम हो जाता है। ऐसी सेवा के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक पुस्तकालय में समान सूची संहिता अपनाई जाये। प्रविष्टि में प्रदत्त वर्ग संख्याएँ भी लोकप्रिय एवं स्वीकार्य वर्गीकरण पद्धति के अनुसार प्रदान की जानी चाहिए। इस प्रकार की सेवा को स्रोत में सूचीकरण के नाम से जाना जाता है।

(v) प्रकाशनांतर्गत

पूर्व प्रकाशन सूचीकरण योजना को 1958 में प्रारम्भ किया गया था और कुछ कठिनाइयों के कारण 1959 में समाप्त कर दिया गया। पुनः जुलाई 1971 में लाइब्रेरी आफ कांग्रेस ने उसी योजना की कार्य पद्धति पर एक दूसरी नवीन पूर्व प्रकाशन सूचीकरण योजना प्रारम्भ की है जिसे प्रकाशनांतर्गत सूचीकरण के नाम से जाना जाता है। इस पद का चयन इसकी पहली परीक्षण योजना से इसके भेद को स्पष्ट करने के लिए किया गया है और साथ ही इसमें तथा पुस्तकों के प्रकाशनों, चलचित्रों, मानचित्रावलियों तथा पुस्तकों आदि को सम्मिलित किया गया है। इस कार्यक्रम को पहले की भाँति परीक्षण के रूप में प्रारम्भ करने की अपेक्षा स्थायी रूप से स्थापित किया गया है। काउन्सिल आफ लाइब्रेरी रिसोर्सेज के क्लैंप नाम से इस योजना का विशद विवेचन यूनेस्को बुलेटिन 22(1) 1973 में किया है।

स्त्रोत स्थल योजना की अनेक कठिनाइयों के कारण तथा लाइब्रेरी आफ कांग्रेस के पत्रकों के मुद्रण तथा वितरण की समस्या की असीमित मांगों के कारण जटिल हो गयी। 1959 में, 1203 पुस्तकों की सूची पत्रकों का मुद्रण किया गया और 1969 में 2,44,000 ग्रन्थों के सूची पत्रकों का मुद्रण किया

गया। इसी बीच मुद्रित पत्रकों की संख्या 350 लाख से 1010 लाख हो गयी। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए स्वचालित विधियों के प्रयोग की योजना तैयार की गई, जिसे साकार नहीं किया जा सका।

एल.सी. ने जुलाई 1971 में ग्रन्थालय साधन समिति राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान, राष्ट्रीय मानविकी तथा संयुक्त राष्ट्र शिक्षा कार्यालय की आर्थिक सहायता से प्रकाशनांतर्गत सूचीकरण परीक्षण योजना को प्रारम्भ करने की घोषणा की। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस ने कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी अमरिकन प्रकाशनों को जो प्रतिवर्ष 30,000 से 36,000 पुस्तकों के सूचीकरण का प्रतिवर्ष अनुमान लगाया है। उनको सी.आई.पी. संलेख 1973 के अंत तक प्रस्तुत करने का आश्वासन दिया था। इस योजना को वेल्स के निर्देशन में कायान्विंत किया गया और लाइब्रेरी आफ कांग्रेस के विवरणात्मक सूचीकरण विभाग के जिमरमैन तथा गासलिंग इसके प्रबंधक एवं संचालक का कार्य सम्पन्न कर रहे हैं।

(vi) मुद्रण पूर्व सूचीकरण

केन्द्रीकृत सूचीकरण की व्यवस्था की स्थापना पर डॉ. रंगनाथन ने बड़ा जोर दिया है और इस व्यवस्था के अनुसरण से 79 प्रतिशत की राष्ट्रीय बचत का अनुमान उन्होंने निश्चित किया और यदि सभी देश इस व्यवस्था की स्थापना करें और सहकारी सूचीकरण की ओर अग्रसर हों तो 79 प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय बचत हो सकती है।

डॉ. रंगनाथन ने यह सुझाव दिया कि सूचीकरण व्यवस्था के लिए राष्ट्रीय केन्द्रीय संस्थान तथा राज्य केन्द्रीय संस्थान की स्थापना की जानी चाहिए। प्रत्येक प्रकाशित की जाने वाली पुस्तक की प्रारूप कापी को उसके प्रकाशन से पूर्व ही इन संस्थानों को भेज दिये जाने चाहिये जिससे सभी प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की क्रामक संख्या तथा सूची संलेख को प्रस्तुत किया जा सके। क्रमांक संख्या के मुख्य पृष्ठ के पीछे मुद्रित किया जा सकता है। सूची पत्रकों का मुद्रण किया जा सकता है और उनको पुस्तकालय में पुस्तकों के प्रकाशन से पूर्व ही भेजा जा सकता है। इस प्रक्रिया को डॉ.रंगनाथन ने पुनः प्रकाशन सूचीकरण की संज्ञा दी है।

पत्रक सेवा

चार्ल्स जेबेट, अल्बर्ट ब्लोर, हेनरी स्टेवन, एफ मैक्स मुलर, डब्ल्यू सी लेन, मेल्विल ड्यूई एवं अन्य प्रसिद्ध पुस्तकालयाध्यक्षों ने केन्द्रीकृत सूचीकरण सेवा का समर्थन किया है।

लाइब्रेरी आफ कांग्रेस -

लाइब्रेरी आफ कांग्रेस ने जुलाई 1898 से अपनी सूची पत्रकों को मुद्रित करना प्रारम्भ किया तथा सभी पुस्तकालयों को 1901 से यह सेवा प्रदान की जाने लगी। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस की गतिविधियों में से पत्रक सेवा भी एक गतिविधि है इस कार्य

हेतु लाइब्रेरी ऑफ कॉंग्रेस का कोई अलग से संगठन नहीं है। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस के द्वारा स्वीकृत प्रत्येक ग्रंथ की एक क्रम संख्या दी जाती है जिसे पत्रक संख्या भी कहा जाता है। पत्रक संख्याओं को क्युमुलेटिव बुक इण्डेक्स में अंकित किया जाता है जिसके आधार पर पत्रकों को मँगवाने हेतु आदेश दिया जाता है। 1951 एवं 1963 के दौरान लाइब्रेरी आफ कांग्रेस ने सीमित सूचीकरण को लागू किया। सीमित सूचीकरण में प्रलेख का केवल सामान्य विवरण दिया जाता है। कुछ मद जो ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं होते है। उन्हें हटा दिया जाता है।

सर्व पुस्तक परियोजना

सर्व पुस्तक परियोजना का आरम्भ 1953 में लाइब्रेरी आफ कांग्रेस ने किया। इसका उद्देश्य इन आख्याओं की संख्या में वृद्धि करना था जिनके लिए पत्रक उपलब्ध थे। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस को आशा थी कि शीघ्र गति से पत्रकों के निर्माण हेतु अमेरिकन प्रकाशक नवीन प्रकाशनों की प्रकाशन पूर्व पाण्डुलिपि भेजकर सहयोग देंगे। 1959 आर. आर. बाउकर कम्पनी, लाइब्रेरी आफ कांग्रेस द्वारा समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकों की सूचीकरण सूचना के बदले में, पुस्तकों को लाइब्रेरी जर्नल एण्ड पब्लिशर्स वीकली में सूचीबद्ध करने पर सहमत हुई।

पुस्तकों के साथ पत्रक कार्यक्रम

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लाइब्रेरी आफ कांग्रेस द्वारा पत्रकों को प्रकाशकों एवं पुस्तक विक्रेताओं के माध्यम से पुस्तक के साथ ही दिया जाता था। 1961 में प्रलेखों के साथ उनके सूची पत्रक भेजने का कार्यक्रम पुस्तकालयों को सहायता देने के अन्य प्रयास के रूप में प्रारम्भ किया गया।

नेशनल प्रोग्राम आफ एक्वीजिशन एण्ड कैटेलॉगिंग (एन.पी.ए.सी.)

1958 एवं बाद में 1965 में अधिनियम के अन्तर्गत, लाइब्रेरी आफ कांग्रेस को विदेशों में प्रकाशित समस्त शोध सामग्री का अधिग्रहण, सूचीकरण तथा उनके ग्रन्थात्मक अभिलेखों का वितरण करने के लिए अधिकृत किया गया। इस कार्यक्रम में स्थित नौ ऑफिस इक्कीस देशों के साथ साथ सत्रह विदेशी स्त्रोतों से सूचीकरण सूचना दे रहे थे। वर्तमान में मुद्रित सूची की माँग की पूर्ति मार्क टेप द्वारा की जाती है।

ब्रिटिश नेशनल लाइब्रेरी एक स्वपोषित संगठन है। प्रतिलिप्यधिकार कार्यालय में प्रलेखों के प्राप्त होते ही इस संगठन को उनको उपयोग करने की सुविधा प्राप्त हो जाती है। इसकी पत्रक सेवा 1956 में आरम्भ हुई। बीएनबी के द्वारा पत्रक सेवा के प्रारम्भ किया जाने से पूर्व पुस्तकालय इसकी बिब्लियोग्राफी को एक मास्टर प्रतिलिपि के रूप में उपयोग कर सकते थे। जिसमें से वे अपने पत्रक बनाते थे कुछ पुस्तकालय प्रणालियों के शाखा पुस्तकालय में बी.एन.बी. की चिन्हित प्रतियों को सूची के रूप में प्रयोग किये जाने का प्रयत्न किया गया था।

जब किसी एजेंसी द्वारा केन्द्रीकृत प्रक्रियाकरण के अन्तर्गत सूची संलेख पत्रकों का निर्माण एवं विक्रय वाणिज्यिक गतिविधि के रूप में किया जाता है। तब हम इसे वाणिज्यिक सूचीकरण कहते हैं। बारबरा वेस्टबाई ने वाणिज्यिक सूचीकरण को इस

प्रकार परिभाषित किया है। ''यह पुस्तकालय के अतिरिक्त किसी अन्य एजेन्सी द्वारा आर्थिक लाभ हेतु केन्द्रीकृत सूचीकरण के निष्पादन एवं विक्रय का कार्य है।'' ऐसे बहुत से वाणिज्यिक सूचीकरण हैं -

प्रकाशक की आख्या पत्रिका ।

रूडोल्फ इन्डेक्सर कम्पनी।

लाइब्रेरी ब्यूरो।

एच.डब्ल्यू. विल्सन कम्पनी।

9.3 सहकारी सूचीकरण (Cooperative Cataloguing)

आधुनिक युग में सहकारिता के माध्यम से एक दूसरे का सहयागे करते हुए राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हो रही है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सहकारिता का प्रमुख हाथ होता है। सहकारिता का सरल अर्थ किसी कार्य को पारस्परिक सहयोग के साथ करना है। जब किसी पुस्तक का प्रकाशन होता है तब अनेक ग्रन्थालय उस पुस्तक का क्रय करते हैं और उन सभी पुस्तकालयों को उनका सूचीकरण करना भी आवश्यक है जिस पर प्रत्येक पुस्तकालय अपना धन एवं समय के साथ-साथ श्रम भी अलग-अलग व्यय करेंगे जो वास्तव में मानव शक्ति के साथ-साथ राष्ट्रीय शक्ति का भी अपव्यय है। अतः यदि यही कार्य सहकारी आधार पर कई पुस्तकालय मिलकर करें तो धन, समय एवं श्रम का अपव्यय होने से बचता है। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सहकारी सूचीकरण का तात्पर्य अनेक स्वतंत्र ग्रंथालयों द्वारा परस्पर सहयोग से उसे सम्पन्न करना है। इस प्रकार सहकारी सूचीकरण में अलग-अलग पुस्तकालयों के एक समूह द्वारा सूचीकरण कार्य किया जाता है।

परिभाषाएँ

सी.डी.नीथम के अनुसार, ''सहकारी सूचीकरण उस स्थिति को निर्देशित करता है, जिसमें कई स्वतंत्र पुस्तकालय सूचीकरण कार्य में मिलजुल कर भाग लेते है और उसके लाभ को पारस्परिक रूप में बांटते हैं।''

ग्लोसरी के अनुसार, ''कई पुस्तकालयों द्वारा सूचीकरण व्यय एवं श्रम में सहयोग जिससे पुस्तकालयों में कार्य की अनावश्यक द्विरावृत्ति को रोका जा सकता है।''

ए.एल.ए. के अनुसार, ''कार्य की अनावश्यक द्विरावृत्ति को रोकने हेतु कई पुस्तकालयों के आपसी सहयोग द्वारा सूची की प्रविष्टियों का निर्माण, विशेष कर लाइब्रेरी आफ कांग्रेस की योजना जिसमें सहयोगी पुस्तकालयों द्वारा तैयार पत्रकों की प्रविष्टियों को मुद्रण करके अन्य ग्रंथालयों को वितरित करने का कार्य होता है।''

एच.ए.शार्प के शब्दों में, ''सहकारी सूचीकरण का एक सरल स्वरूप तब विद्यमान हुआ कहा जा सकता है जब अनेक पुस्तकालय मिलकर एक केन्द्रीय ब्यूरो की स्थापना तथा अनुरक्षण करते हैं और केन्द्रीय ब्यूरो द्वारा स्वीकृत किये गये ग्रंथों की प्रविष्टियां निर्मित करने के कार्य से मुक्त होकर जो लाभ होता है, उसका उपयोग करते हैं।''

आवश्यक कारक :

सहकारी सूची में मात्र वे ही पुस्तकालय सहभागी हो सकते हैं जो अनिवार्य रूप से आवश्यक निम्न कारकों पर अमल करते हों-

→ **समान वर्गीकरण पद्धति** - एक ही वर्गीकरण पद्धति का उपयोग करना भी आवश्यक है जिससे कि सूची पत्रकों पर ग्रंथों के वर्गांक और ग्रंथांक मुद्रित किये जा सकेगे।

→ **समान सूची संहिता** - इसमें सहभागी सभी पुस्तकालयों हेतु यह आवश्यक है कि वे सभी किसी एक सूची संहिता को ही अपनाये। अगर ऐसा नहीं है तो सहकारी सूचीकरण की योजना लागू करना संभव नहीं हो सकता है।

→ **पत्रक स्वरूप का ही प्रयोग** - इसके लिये यह भी आवश्यक है कि समस्त सहभागी पुस्तकालयों की सूची के पत्रक स्वरूप का ही प्रयोग करें क्योंकि यह योजना पत्रक स्वरूप को अपनाते हुए ही क्रियान्वित की जा सकती है।

→ **स्वयं वित्तपोषक** - इसमें सूचीकरण कार्य में जितना भी धन व्यय हो वह सभी सूची-प्रसूची -पत्रकों के विक्रय से प्राप्त हो जाना अत्यंत आवश्यक है नहीं तो यह योजना असफल हो सकती क्योंकि स्वयं वित्तपोषक योजना के लिये अलग से धन का कोई प्रावधान नहीं होता है।

→ **अधिनियम का प्रावधान -** सहकारी सूचीकरण हेतु सबसे महत्वपूर्ण समस्या सूचीकरण हेतु पुस्तकों को प्राप्त करने की है। इसके लिए ऐसा कोई प्रावधान होना आवश्यक है जिससे ग्रंथ एक केन्द्रीय संस्था को प्राप्त हो सकें। यह कार्य सहभागी पुस्तकालयों को एक वैधानिक नियम बनाकर करना चाहिए। अगर पुस्तकालय किसी सरकार के अधीन है तो यह कार्य सरकार द्वारा किया जा सकता है।

लाभ

सहकारी सूचीकरण के निम्नलिखित लाभ है -

→ सहकारी सूचीकरण से मितव्ययिता लायी जा सकती है। अर्थात समय, श्रम एवं धन की बचत की जा सकती है।

→ पुस्तकालय सूचीकरण में एकरूपता, मानकता एवं परिशुद्धता लायी जा सकती है।

→ एक ही तरह के कार्य अलग अलग पुस्तकालय द्वारा करने से होने वाली द्विरावृत्ति को रोका जा सकता है।

→ सभी पुस्तकालयों को श्रेष्ठ सूचीकार के ज्ञान व अनुभव का लाभ प्राप्त होगा।

→ इस व्यवस्था में पत्रक स्वरूप को अपनाया जाता है। जिससे ये मुद्रित पत्रक देखने में स्वच्छ, सुन्दर एवं टिकाऊ प्रकृति के होते हैं।

→ संघ सूची के निर्माण में सहायता प्राप्त होगी।

हानि

सहकारी सूचीकरण की निम्नांकित हानियाँ हैं -

→ सहकारी सूचीकरण की व्यवस्था में अनेक पुस्तकालयों का सूचीकरण कार्य एक केन्द्रीय संस्था में सम्पन्न होता है। अतः कार्य की अधिकता के कारण केन्द्रीय संस्था समय पर सूचीकृत पत्रक उपलब्ध नहीं करवा पाती है जिससे पुस्तकालय अपने आप को अप-टू-डेट नहीं रख पाते हैं।

→ सहकारी सूचीकरण में सूचीकरण कार्य एक केन्द्रीय संस्था द्वारा किया जाता है। अतः सदस्य पुस्तकालयों को सूचीकारों की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिस कारण रोजगार के अवसरों में कमी आती है।

→ पुस्तकों का सूचीकरण कार्य एक केन्द्रीय संस्था द्वारा किये जाने से सदस्य पुस्तकालयों के कर्मचारी पुस्तकों की सामान्य सूचनाओं तथा सूचीकरण की तकनीकी जानकारी प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं, जिसका प्रभाव कर्मचारी की कार्यकुशलता पर पड़ता है।

इस व्यवस्था में सभी पुस्तकालयों में एक ही सूची संहिता तथा वर्गीकरण पद्धति होनी चाहिये परन्तु सभी पुस्तकालयों की आवश्यकताएं एवं सेवाएं भिन्न भिन्न हो सकती हैं। अतः वे एक समान पद्धति एवं संहिता अपना पाने में असमर्थ हैं।

इस व्यवस्था की सबसे प्रमुख समस्या यह है कि यदि एक अथवा कुछ पुस्तकालय इस व्यवस्था से अपने आप को अलग कर लें तो सहकारी सूचीकरण व्यवस्था को चला पाना कठिन हो जाएगा।

इस व्यवस्था में सभी पुस्तकालयों को एक ही सूची पत्रक को अपनाना पड़ता है परन्तु छोटे पुस्तकालय जहाँ स्थान एवं धन की कमी होती है उनके लिए वह एक विकट समस्या बन जाती है।

स्वरूप

सहकारी सूची के निम्नांकित स्वरूप हैं -

(i) **मुद्रित प्रविष्टियाँ -** आधुनिक समय में सहकारी सूचीकरण को लाइब्रेरी आफ कांग्रेस द्वारा प्रायोजित किया जा रहा है। लाइब्रेरी आफ कांग्रेस विभिन्न पुस्तकालयों से उनके सूची पत्रकों की प्रतिलिपियां प्राप्त कर उन्हें इस प्रकार सम्पादित करता है कि वे लाइब्रेरी आफ कांग्रेस की प्रविष्टियों से मेल खा जाए। इन सम्पादित प्रविष्टियों को मुद्रित कर ग्राहकों को वितरित कर दिया जाता है।

(ii) **मार्क सूची** - मार्क सूची का निर्माण लाइब्रेरी आफ कांग्रेस विभिन्न पुस्तकालयों द्वारा भेजे गये ग्रंथपरक विवरण के आधार पर किया जाता है। विभिन्न पुस्तकालयों से ग्रंथपरक विवरण प्राप्त करने के लिए लाइब्रेरी आफ कांग्रेस द्वारा विश्व के प्रायः सभी राष्ट्रों में अपने कार्यालय स्थापित कर रखे हैं। इस संघ सूची को विभिन्न पुस्तकालयों को वितरित कर दिया जाता है, ये पुस्तकालय अपनी प्रविष्टियाँ इन्हीं के आधार पर व्यवस्थित कर सकती हैं।

(iii) **अन्य** - सहकारी सूचीकरण के अन्य स्वरूप केन्द्रीकृत सूचीकरण के स्वरूप के ही समान हैं।

9.4 केन्द्रीकृत सूचीकरण और सहकारी सूचीकरण में अन्तर (Difference between Centralize and Co-operative Cataloguing)

केन्द्रीकृत और सहकारी सूचीकरण के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों में कई समानताएं तथा कई विभिन्नताएं हैं पर इसकी व्यवस्था में अत्यधिक अन्तर है। जिसे इस प्रकार दर्शाया जा सकता है -

केन्द्रीकृत सूचीकरण	सहकारी सूचीकरण
1) इसमें केन्द्रीय पुस्तकालय ही पुस्तक क्रय करता है।तथा उनकों सूची पत्रकों के साथ शाखा पुस्तकालयों को बिना मूल्य के भेज दिया जाता है।	1) जबकि इसमें पुस्तकालय भिन्न पुस्तक खरीदते है। केवल सूची पत्रक ही प्राप्त किये जाते हैं। वे भी मूल्य देकर प्राप्त किये जाते है।वे भी मूल्य देकर प्राप्त किये जाते हैं।
2) इसमें पुस्तकों को क्रय, वर्गीकरण सूचीकरण आदि सभी कार्यों पर ध्यान दिया जाता है।	2) जबकि इसमें सूचीकरण कार्य पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है।
3) कुछ सन्दर्भों में सहभागी ग्रंथालयों को भी सेवा दी जाती है।	3) इसमें सहभागी पुस्तकालयों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकालय को सेवाएं नहीं दी जाती हैं।
4) इसमें सूचीकरण तथा अन्य सभी कार्य धन की बचत के उद्देश्य से किया जाता है।	4) यह सूचीकरण कार्य व्यापारिक दृष्टि से लाभ प्राप्ति के लिए किया जाता है।
5) केन्द्रीय सूचीकरण मात्र एक केन्द्रीय	5) सहकारी सूचीकरण में अनेक पुस्तकालय

पुस्तकालय में अपनाया जाता है जिनकी शाखाएँ होती है।	सम्मिलित होकर सहयोग के साथ सूचीकरण प्रक्रिया में सहभागी हाते हैं।
6) इसमें केन्द्रीय पुस्तकालय कार्य को अन्य शाखाओं की सहमति से सम्पन्न करता है।	6) इसमें सूचीकरण कार्य को सभी सहभागी पुस्तकालयों द्वारा बॉटकर सम्पन्न किया जाता है।
7) इसमें सूचीकरण कार्य एक केन्द्रीय स्थान पर ही किया जाता है।	7) इसमें सूचीकरण कार्य करने के स्थान विभिन्न होते हैं।
8) इसमें सूचीकरण कार्य को केन्द्रीकृत रूप में नियंत्रित किया जाता है।	8) इसमें सूचीकरण कार्य को समन्वित किया जाता है।
9) इसमें सहभागी पुस्तकालय को न्यूनतम तकनीक सेवा कार्य करना होता है।	9) सहभागी पुस्तकालय अपने तकनीकी सेवा कार्यों को सम्पन्न करते हैं।
10) इसमें कोई भी पुस्तकालय कार्य में भाग नहीं लेता है।केवल केन्द्रीय पुस्तकालय कार्य करता है। और वही लाभ का भागी होता है।	10) इसमें सभी पुस्तकालय कार्य में सहभागी होते हैं तथा लाभ के भागीदार भी होते हैं।

9.5 संघ सूची (Union Catalogue)

पुस्तकालय सूची एक पुस्तकालय की सम्पूर्ण या आंशिक संग्रह की एक सूची है।दो या दो से अधिक पुस्तकालय द्वारा बनाई जाने वाली ऐसी सूची को संघीय सूची कहते हैं। दो या दो से अधिक पुस्तकालय द्वारा आपस में एक दूसरे के संग्रह को सूचीबद्ध करने के लिए आंशिक अथवा पूर्ण रूप से सहयोग किया जाना संघीय सूची सहकारी सूची करण का एक अच्छा उदाहरण है। संघीय सूची को स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय स्तर पर संकलित किया जा सकता है।

सूची की उपयोगिता की दृष्टि से संघ सूची अत्यंत उपयोगी एवं सूचना प्रद उपकरण है। संदर्भ ग्रंथावली तथा शोधार्थियों को अन्य पुस्तकालयों में उपलब्ध वांछित सामग्रियों की जानकारी प्रदान करने हेतु संघ सूची की भूमिका अद्वितीय है।

अर्थ एवं परिभाषाएँ

अर्थ -

संघ सूची दो शब्द से मिलकर बना है 'संघ'और 'सूची' । इसलिए संघ सूची का सीधा सा अर्थ संगठित सूची अर्थात दो या दो से अधिक पुस्तकालयों की संगठित सूची से होता है। इस प्रकार संघ सूची किसी क्षेत्र विशेष के पुस्तकालयों की सम्मिलित सूची है। यह क्षेत्र राष्ट्र, राज्य, मंडल या विशेष क्षेत्र हो सकता है।सामान्य पाठकों की अपेक्षा अनुसंधानकर्ताओं एवं संदर्भ ग्रंथालियों को अन्य पुस्तकालयों में उपलब्ध

वांछित पुस्तकों की जानकारी प्रदान करने हेतु संघ सूची महत्वपूर्ण है।

परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने संघ सूची को परिभाषित किया है जो इस प्रकार हैं -

(i) **के. लारसेन** के शब्दों में, "दो या दो से अधिक पुस्तकालयों के सम्पूर्ण संग्रह या उसके किसी अंश मात्र संग्रह को एक अनुक्रम में तालिका बद्ध करने वाले सूची को संघ सूची कहते हैं।"

(ii) **डी.एम.नॉरीस** के मतानुसार, "अनेक पुस्तकालयों में संग्रहीत पुस्तकों की सम्मिलित सूचियों को संघ सूची कहते हैं, वे किसी एक ही संस्था से संबंधित हो सकती हैं या नहीं भी हो सकती हैं।"

(iii) **डॉ. रंगनाथन** के अनुसार संघ सूची, "दो या दो से अधिक पुस्तकालयों के सभी प्रलेखों की सूची है। जो उन सभी पुस्तकालयों के नाम की सूचना देती है जहाँ संबंधित प्रलेख की प्रतियाँ पायी जाती है। एक संघीय सूची सभी प्रकार के प्रलेखों को या उनमें से विशेष प्रकार के प्रलेखों को सम्मिलित करती है।"

उद्देश्य

एक बार दक्षतापूर्वक निर्मित होने पर संघीय सूची कई उद्देश्यों को पूरा करती हैं। इनमें से कुछ उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

(1) यह संग्रह विशिष्टीकरण एवं उपयोग के संभावित क्षेत्रों की ओर इंगित करती हैं।

(2) यह पुस्तकालयों की संग्रह विकास गतिविधियों के समन्वयन में सहायता करती है।

(3) यह पुस्तकालय संग्रह की समृद्धि एवं दुर्बलता को दर्शाती है।

(4) एक भौगोलिक क्षेत्र के पुस्तकालयों में प्रलेखों की उपलब्धता को बताने वाले उपकरण के रूप में काम करती है।

(5) यह प्रलेख चयन के लिए उपयोगी सूचना प्रदान करती है।

(6) यह ग्रंथपरक सूचना के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य करती हैं।

निर्माण

संघ सूची में लेखकों के नाम के अन्तर्गत पुस्तकों/पत्रिकाओं आदि के संलेख तैयार किये जाते है और प्रत्येक संलेख में एक होल्डिंग सेक्सन रखा जाता है जिसमें उन पुस्तकालयों के नाम का भी उल्लेख संक्षेप में किया जाता है जिससे यह पता चलता है कि पुस्तक कौन कौन से पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं? इसलिए संघ सूची को फाइन्डिंग लिस्ट भी कहते हैं। साधारणतया संघ सूची के लिए पत्रक सूची ही अपनाई जाती है। कार्य पूर्ण होने पर इसे मुद्रित कराया जाता है।

महत्व

आधुनिक समय में संघ सूची की उपयोगिता का विशेष महत्व है। संघ सूची की उपयोगिता पुस्तकों के क्षेत्र में न होकर पत्र पत्रिकाओं तथा विषयों के आधार पर अत्यंत आवश्यक है । देश के विकास में विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः विज्ञान के विभिन्न विशिष्ट क्षेत्रों इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रानिक्स, चिकित्साशास्त्र आदि में विषय संघ सूचियों का निर्माण होना चाहिए। इसी कारण भारत में पुस्तकालय विज्ञान के जनक डॉ. रंगनाथन ने विज्ञान व उससे संबंधित उसकी अन्य शाखाओं पर केवल पत्र पत्रिकाओं की संघ सूची बनाने पर बल दिया और इसी के फलस्वरूप उन्होंने 1953 में अन्य व्यक्तियों की सहायता से फिजिकल सेक्सन और बायलॉजिकल सेक्सन की संघ सूचियों का संकलन एवं प्रकाशन किया।

लाभ

पुस्तकालय सूचीकरण में संघ सूची के निम्नांकित लाभ हैं जो इस तरह है।-

(1) संघ सूची से हमें अन्य पुस्तकालयों में पुस्तक की उपलब्धता का ज्ञान हो जाता है।

(2) पुस्तकालयों के सूचीकरण का व्यय कम हो जाता है।

(3) एक ही सूची कई पुस्तकालयों की सूची की तरह कार्य करती है।

(4) संघ सूची से हमें किसी क्षेत्र में विभिन्न पुस्तकालयों में संग्रहीत पाठ्य सामग्री के संबंध में सूचना प्राप्त हो जाती हैं ।

(5) संघ सूची से ही इण्टर लाइब्रेरी लोन संभव हो सकता है।

(6) संघ सूची पुस्तकों की अपेक्षा सामायिक प्रकाशनों की ही बनाई जाती है। जो शोध कार्य हेतु ही प्रकाशित किए जाते हैं। इसलिए संघ सूची शोधकार्यों में अधिक सहायक होती है।

(7) उपयोगकर्ताओं के अमूल्य समय को नष्ट होने से बचाता है।

संकलन

संघ सूची के संकलन के प्रयास समय समय पर भारत में तथा विशेष कर पाश्चात्य देशों में किये जा रहे हैं। भारत में 1878 में सर्वप्रथम संघ सूची का संकलन एवं प्रकाशन किया गया था जो कलकत्ता के सभी पुस्तकालयों के सिरियल्स का था। भारत में दूसरी संघ सूची Royal Institute of Science, Bombay ने तैयार किया था। तीसरा डॉ. रंगनाथन द्वारा 1953 में आई.एल.ए. के तत्वावधान में किया गया था।

संघ सूची का संकलन करने की योजना निर्मित करते समय सर्वप्रथम उसका उद्देश्य निश्चित करना चाहिए। तत्पश्चात निम्नांकित मुद्दों के संबंध में निर्णय लेना चाहिए।

(i) सम्मिलित ग्रंथालय

यह निर्णय करना आवश्यक है कि संघ सूची का क्षेत्र स्थानीय होगा, क्षेत्रीय

होगा या राष्ट्रीय होगा। यह सामान्य अनुभव है कि एक सर्वव्यापी राष्ट्रीय या प्रदेशीय संघ सूची निर्मित करना तथा उनको अनुरक्षित रखना एक जटिल तथा कठिन कार्य है। स्थानीय संघ सूची का निर्माण और अनुरक्षण सरल है। अतः उचित समझा जाता है कि अनेक क्षेत्रीय संघीय सूचियों का संकलन किया जाए।

(ii) सम्मिलित सामग्री

यहाँ सम्मिलित पाठ्य सामग्री से तात्पर्य मुद्रित पुस्तक, आवधिक प्रकाशन, फिल्म आदि से है। इसके अतिरिक्त इसमें काल, विषय तथा भाषायें भी सम्मिलित हैं । आवधिक प्रकाशनों की संघ सूचियां निर्मित करने में संकलना व्यय कम और उनको अद्यतन रखना सरल होता है। इसके द्वारा विभिन्न पुस्तकालयों में आवधिक प्रकाशनों के अर्जन की दृष्टि से सहयोग तथा मितव्ययिता प्राप्त की जाती है।

(iii) प्रविष्टियों के प्रकार

प्रविष्टियों के प्रकार तथा उनमें अंकित सूचना के संबंध में निर्णय किसी मान्य सूची संहिता के आधार पर करना चाहिए। रंगनाथन कृत क्लासीफाइड कैटॉलॉग कोड में इस संबसंघ में नियमों का समावेश किया गया है।

डा. रंगनाथन के अनुसार आवधिक प्रकाशनों की मुख्य प्रविष्टि वर्ग संख्या के अन्तर्गत निर्मित की जाती है। जो आवधिक प्रकाशन के संबंध में पूर्ण विवरण, इतिहास तथा उपलब्धता की अवधारणा के संबंध में सूचना प्रदान करती है। मुख्य प्रविष्टि के अतिरिक्त आवधिक प्रकाशन की आख्या, प्रायोजक, निकाय तथा विषय के अन्तर्गत वर्ग निर्देश प्रविष्टियां निर्मित करने का प्रावधान है। इतर प्रविष्टियाँ मुख्य प्रविष्टि के प्रति क्रम संख्या द्वारा निर्देशित करती है।

मुद्रित पुस्तकों की संघ सूची में दो प्रकार की प्रविष्टियों का समावेश किया जा सकता है ग्रंथकार और आख्या प्रविष्टियाँ। प्रथम मुख्य प्रविष्टि होती है तथा द्वितीय इतर प्रविष्टि जो सम्पूर्ण सूचना के लिए मुख्य प्रविष्टि पर निर्भर करती है। रंगनाथन जो कि अनुवर्ण सूची के कट्टर समर्थक थे, मुद्रित पुस्तकों की संघ सूची के संबंध में उपरोक्त मत से ही सहमत थे।

प्रत्येक प्रविष्टि में विवरण की सीमा - मुद्रित पुस्तकों की संघ सूची की मुख्य प्रविष्टि में जो कि रंगनाथन कृत क्लासीफाइड कैटलॉग कोड के अनुसार ग्रंथकार प्रविष्टि होती है, उतना विवरण सम्मिलित करना ही पर्याप्त है जो पुस्तक की पहचान के लिए पर्याप्त हो अर्थात ग्रंथकार, आख्या, संस्करण तथा प्रकाशन वर्ष। मुख्य प्रविष्टि के अतिरिक्त इतर प्रविष्टियों के रूप में केवल आख्या प्रविष्टि निर्मित करना पर्याप्त समझा जाता है। जिसमें आख्या तथा मुख्य प्रविष्टि की ओर निर्देश करने के लिए मुख्य प्रविष्टि की क्रम संख्या अंकित की जाती है।

आवधिक प्रकाशन की मुख्य प्रविष्टि में रंगनाथन कृत क्लासीफाइड कैटालॉग कोड के अनुसार वर्ग संख्या, आख्या, प्रायोजक निकाय, आख्या में परिवर्तन की

सूचना, जटिलता अनुच्छेद,अवधारणा अनुच्छेद, प्रत्येक सम्मिलित ग्रंथालयों के लिए पुस्तकालय संख्या प्रतीक के रूप में तथा वहाँ प्राप्त सामग्री संबंधी सूचना प्राप्त की जाती है।। इसको वस्तुतः सूची के बजाय खोज तालिका कहना उचित हैं ।

भौतिक स्वरूप

पंचम सूत्र की दृष्टि से तो पुस्तकालय सूची की भांति संघ सूची का भौतिक स्वरूप भी पत्रक स्वरूप ही होना चाहिये। रंगनाथन इसी भौतिक स्वरूप के समर्थक थे। इसके लिए कोई सस्ती द्विरावृत्तिकरण की विधि को अपनाना उचित होगा परन्तु व्यवहार में अधिकांश संघ सूचियां पुस्तक स्वरूप में ही मुद्रित पाई जाती हैं।

9.6 सारांश (Summary)

सभी उपयुक्त विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी पुस्तकालय के लिए केन्द्रीकृत और सहकारी सूचीकरण तथा संघ सूची बहुत ही महत्वपूर्ण उपकरण है। सामग्री का अधिग्रहण, प्रसूचीकरण, वर्गीकरण तथा उपयोग के लिए उसे तैयार करना इत्यादि कार्य सभी पुस्तकालयों में समान रूप से किये जाते हैं। अगर पुस्तकालय परस्पर सहयोग के लिए सहमत हो जाते हैं तो वे आपस में समूह बनाकर नेटवर्क के रूप में जुड़ सकते हैं तथा अलग अलग पुस्तकालयों में प्रक्रियाकरण कार्य में कमी करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार के प्रक्रियाकरण को एक केन्द्रीय संगठन के द्वारा वाणिज्यिक आधार पर भी किया जा सकता है। केन्द्रीय एवं सहकारी प्रक्रियाकरण के लाभ हैं जैसे कार्य की द्विरावृत्ति को रोकना, सेवा में गुणात्मक सुधार इत्यादि। इस प्रक्रिया में कुछ कमियां भी हैं जैसे अधिक लागत व्यवहार में स्थानीय भिन्नता तथा अन्य।

केन्द्रीकृत और सहकारी सूचीकरण में बहुतसारी भिन्नताएं भी देखी जा सकती है। ऐसी सूचीकरण प्रणाली होने से पुस्तकालय में काफी सुविधा प्राप्त होती है। संघ सूची का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं ।

9.7 संबंधित प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

(1) केन्द्रीकृत और सहकारी सूची से आप क्या समझते हैं? इनके उद्देश्यों और स्वरूपों का वर्णन करें।

(2) केन्द्रीकृत सूचीकरण के लाभ और हानि की चर्चा करें?

(3) केन्द्रीकृत सूचीकरण पत्रक सेवा और वाणिज्यिक सूचीकरण की विवेचना करें?

(4) सहकारी सूचीकरण के आवश्यक उपकरण को लिखिये।

(5) संघ सूची के अर्थ एवं परिभाषा को लिखे तथा इनके महत्व पर प्रकाश डालें?

लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) केन्द्रीकृत सूचीकरण स्वरूपों को लिखें।

(2) सहकारी सूचीकरण के स्वरूप का वर्णन करें।

(3) सहकारी सूचीकरण के लाभ और हानि की समीक्षा करें।

(4) केन्द्रीकृत औैर सहकारी सूचीकरण में अंतर स्पष्ट करें।

(5) संघ सूची के निर्माण का वर्णन करें।

(6) संघ सूची के लाभ की चर्चा करे।

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) मार्क योजना किस सूचीकरण का स्वरूप है?

(2) मार्क योजना किसने प्रारम्भ की थी?

(3) प्रीनेटल कैटालॉगिंग शब्द किसने दिया था?

(4) सूची पत्रक का प्रमाणिक आकार बताएँ।

(5) सीसीसी में मुख्य प्रविष्टि, प्रति संदर्भ प्रविष्टि, वर्ग निदेशि प्रविष्टि, ग्रंन्थ निर्देश प्रविष्टि तथा ...... बनाते हैं ।

(6) पत्रक स्वरूप सूची का प्रादुर्भाव किस देश में हुआ था?

9.8 अति लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

(1) केन्द्रीकृत एवं सहकारी सूची।

(2) लाइब्रेरी आफ कांग्रेस।

(3) डॉ. रंगनाथन ने।

(4) 12.5 x 7.5 cm अथवा 5"x3"

(5) प्रति संदर्भ निर्देशि प्रविष्टि

(6) फ्रांस

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल, श्याम सुन्दर : पुस्तकालय सूचीकरण - एक अध्ययन।
- सूद, एस.पी. : पुस्तकालय सूचीकरण के सिद्धान्त।
- शर्मा, पाण्डेय एस.के. : सरलीकृत पुस्तकालय सूचीकरण सिद्धान्त ।
- त्रिपाठी, एस.एम. और शौकीन, एन.एस. : सूचीकरण सिद्धान्त के मूल तत्व।
- कुमार, गिरिजा और कुमार कृष्ण : सूचीकरण के सिद्धान्त ।
- त्रिपाठी, एस. एम. : आधुनिक सूचीकरण।
- कुमार, कृष्ण : सूचीकरण।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

BLIS-03

ज्ञान संगठन एवं प्रक्रियाकरण

खण्ड

4

सूचीकरण के मानक

इकाई -10 5

शब्दावली नियंत्रण : विषय शीर्षक सूचियाँ एवं थिसॉरस

इकाई -11 29

रिकार्ड आरुप का मानकीकरण : ISBD, MARC, CCF

इकाई -12 50

ISBN, ISSN, ISO : 2709, ISO : Z39.50

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 बी0 एन0 सिंह	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति - पाठ्यक्रम अभिकल्पन

डॉ0 पाण्डेय एस0 के0 शर्मा	अवकाश प्राप्त मुख्य ग्रंथालयी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली,
डॉ0 ए0 पी0 गक्खर	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इला0
डॉ0 यू0 सी0 शर्मा	एसोसियेट प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष, बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ0 सोनल सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ0 ए0 पी0 सिंह	एसोसिएट प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0संजीव सर्राफ	उपपुस्तकालयाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 टी0एन0 दुबे (सदस्य सचिव)	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक मण्डल

डॉ0 टी0 एन0 दुबे	विश्वविद्यालय ग्रंथालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री आर0 जे0 मौर्य	सहायक ग्रन्थालयी, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री राजेश गौतम	प्रवक्ता, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, उ0 प्र0 रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 यू0 एम0 ठाकुर	भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान संस्थान, पटना विश्वविद्यालय, पटना

परिमापक

डॉ0 वी0 पी0 खरे	एसोसिएट प्रोफेसर, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-978-81-921668-4-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ0 ए0 के0 सिंह, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मई 2011 मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-4 : सूचीकरण के मानक

खण्ड परिचय

विभिन्न एजेन्सियों के मध्य ग्रन्थपरक डेटा का प्रभावी विनिमय (Effective Exchange) तभी सम्पन्न किया जा सकता है; यदि इनके अभिलेख (Records) तीन बातों में परस्पर समानुरूपता रखते हों : (1) संरचना (Structure), (2) अर्न्तविषय अभिज्ञापक (Content designators) तथा (3) डेटा अवयव परिभाषा (Data element definitions) कहने का तात्पर्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर सूचना सम्प्रेषित करने के लिए परस्पर समान आरुप आवश्यक है।

शब्दावली नियंत्रण से तात्पर्य प्राकृतिक भाषा से लिए गये असीमित पदो के सेट से है जिसे प्रलेखों के अन्तर्विषयों को प्रदर्शित करने में प्रयुक्त किया जाता है । प्राकृतिक भाषा में बड़ी मात्रा में समनाम, अर्धसमनाम, पर्यायवाची शब्द, तुल्य पर्याय, परिवर्णी पद, अस्पष्ट पद आदि होते हैं। इसलिए यदि नियंत्रित शब्दावली का उपयोग नहीं किया जाता तो विभिन्न अवसरों पर समान अवधारणा के लिए, विभिन्न पदों का उपयोग हो सकता है। इसी कारण से शब्दावली नियंत्रण की आवश्यकता होती है। शब्दावली नियंत्रण हेतु उपकरण के रूप में विषय शीर्षक सूचियाँ एवं थिसारस का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय पुस्तकालयों में अभिलेख आरुप (Record Format) के मानकीकरण पर विशेष ध्यान देना अपेक्षित है। रिकार्ड आरूप के रूप में ISBD, MARC एवं CCF प्रचलन में है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बिब्लियोग्राफिकल कन्ट्रोल हेतु पुस्तकों के लिए ISBN संख्या एवं पत्रिकाओं के लिए ISSN संख्या वर्तमान में अत्यंत आवश्यक है।

यह पाठयक्रम बी.एल.आई.एस.-03 का खण्ड 4 है जो सूचीकरण के मानक से सम्बन्धित है। इसमें तीन इकाइयाँ है। प्रथम इकाई (इकाई-10) शब्दावली नियंत्रण जिसके अन्तर्गत विषय शीर्षक सूचियाँ एवं थिसारस का उल्लेख है, से सम्बन्धित है। द्वितीय इकाई (इकाई-11) रिकार्ड आरूप के मानकीकरण से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत विशेष रूप से ISBD, MARC एवं CCF का उल्लेख है । तृतीय इकाई (इकाई-12) ISBN, ISSN,ISO :2709, ISO:239.50 से सम्बन्धित है।

इकाई -10 : शब्दावली नियंत्रण : विषय शीर्षक सूचियाँ एवं थिसॉरस

इकाई की रूपरेखा

10.0 विषय परिचय
10.1 इकाई का उद्देश्य
10.2 शब्दावली नियंत्रण
 10.2.1 अर्थ एवं आवश्यकता
 10.2.2 उद्देश्य
 10.2.3 प्रविष्टि शब्दावली एवं अनुक्रमणी शब्दावली
10.3 विषय शीर्षक
 10.3.1 अर्थ एवं सिद्धान्त
 10.3.2 विषय शीर्षकों का प्रयोग
 10.3.3 श्रृंखला प्रक्रिया
 10.3.4 पॉप्सी और प्रेसिस
 10.3.5 सियर्स लिस्ट ऑफ सब्जेक्ट हेडिंग्स
 10.3.6 विषय शीर्षक की तालिकाएँ एवं दर्शिकाएँ
10.4 थिसॉरस
 10.4.1 परिभाषाएँ
 10.4.2 उद्देश्य एवं कार्य
 10.4.3 संरचना एवं प्रकार
 10.4.4 थिसॉरी - फेसेट
 10.4.5 क्लैसारस
 10.4.6 थिसॉरस एवं विषय शीर्षक सूची में अन्तर
10.5 सारांश
10.6 संबंधित प्रश्न
10.7 अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर
10.8. उपयोगी पुस्तकें

10.0 विषय परिचय (Introduction)

शब्दावली नियंत्रण का उपयोग पुस्तकालयी कार्यों में लगभग एक शताब्दी से आवश्यक तत्व बन चुका है। वर्गीकरण प्रणाली जिसका उपयोग निधानियों पर पुस्तकों

के व्यवस्थापन हेतु तथा वर्गीकृत सूची में प्रविष्टियों के व्यवस्थापन हेतु किया जाता है, विषय शीर्षकों का एक ग्रन्थ है। इस इकाई में विषय शीर्षकों की रचना एवं रख-रखाव के परिपेक्ष्य में दो महत्वपूर्ण मानक विषय शीर्षकों की सूचियों लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस सब्जेक्ट हेडिंग्स' एवं 'सियर्स लिस्ट ऑफ सब्जेक्ट हेडिंग्स' की चर्चा करेंगे। पुस्तकालय में अन्य संदर्भ के साथ नियंत्रण पदावली का उपयोग किया जाता है। इसे नियंत्रित प्रणाली के द्वारा सम्पन्न किया जाता है जिसे विषय 'अथॉरिटी प्रणाली' कहते हैं। इसमें प्रत्येक पद हेतु पद पर निर्णय के लिए आधार और अन्य पदों को जोड़ने वाली कड़ी क्या है, को अभिलेखित किया जाता है। विषय अर्थारिटी प्रणालियों की यहाँ विषय शीर्षक सूची में सतत् रूप से किए जाने वाले रख-रखाए के बारे में भी चर्चा की गई है। शब्दावली नियंत्रण विधि के क्षेत्र में थिसॉरस की अवधारणा सापेक्षिक रूप में नई प्रस्तुति है। थिसॉरस के लाक्षणिक गुणों का इसके कार्यों, संरचना, पदों के मध्य पदानुक्रम एवं अपदानुक्रम संबंध तथा अन्य शब्दावली नियंत्रण विधियों द्वारा यह कैसे भिन्न है इससे संबंधित साधनों एवं विधियों के अन्तर्गत यहाँ चर्चा की गई है। थिसॉरस के दूसरे रूपों जैसे थिसारों फेसेट एवं क्लैसारस की भी इस इकाई में चर्चा की गई है। अनुक्रमणीकरण एवं खोज प्रक्रिया में थिसॉरस के उपयोग की व्याख्या भी की गई है।

10.1 इकाई का उद्देश्य (Objectives of Unit)

इस इकाई के निम्न उद्देश्य हैं-

- शब्दावली नियंत्रण का अर्थ, आवश्यकता, उद्देश्य एवं संरचना इत्यादि का विवरण देना,
- शब्दावली नियंत्रण विधियों, जैसे विषय शीर्षक सूची एवं थिसॉरस के मुख्य लक्षणों का वर्णन करना,
- थिसॉरस एवं विषय शीर्षक सूची में अन्तर स्पष्ट करना, तथा
- विषय शीर्षक सूची के विभिन्न पहलुओं की चर्चा करना।

10.2 शब्दावली नियंत्रण (Vocabulary Control)

सूचना पुनर्प्राप्ति प्रणाली में प्रभावी खोज परिणाम के लिए प्राकृतिक भाषा तथा नियंत्रित शब्दावली का उपयोग किया जाता है। अनेक अनुक्रमणीकरण प्रविष्टियों के निर्माण के लिए प्राकृतिक भाषा के स्थान पर नियंत्रित शब्दावली का प्रयोग किया जाता

है। जिससे प्राकृतिक भाषा की सिन्टैक्स (वाक्य रचना) एवं शब्दार्थ आदि समस्याओं का निराकरण हो जाता है। अधिकांश पुस्तकालयों में प्रलेख निधानियों पर व्यवस्थित किये जाते है जबकि अनुक्रमणी के संलेख सूची प्रत्रक पर बने होते हैं जो प्रलेखों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उनकी विषयवस्तु को दर्शाने वाले चयनित अनुक्रमणी यंत्र पठनीय या माइक्रोफिल्म या मुद्रित पुस्तक के रूप में होते हैं। नियंत्रित शब्दावली का उपयोग अधिकांशतः मानक निरुपकों या प्रलेखों के अंतर्विषयों को प्रस्तुत करने वाले विषय शीर्षकों या पाठकों की विषय अभिरूचि प्रोफाइल्स में किया जाता है। सैद्धान्तिक रूप में इस प्रकार के उपकरण का उपयोग उन स्थितियों में किया जा सकता है जिनमें मानक पदावली आवश्यक है।

10.2.1 अर्थ एवं आवश्यकता (Meaning and Need)

शब्दावली नियंत्रण का अर्थ पदों के सीमित सेट से है जिसका प्रयोग विशेष प्रणाली के अन्तर्गत प्रलेखों का अनुक्रमणीकरण किये जाने एवं संबंधित प्रलेखों की खोज हेतु किया जाता है। इन्हें पदों की सूची के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो पदों के संबंधों को दर्शाती है एवं जिसका प्रयोग प्रलेख के विशिष्ट विषय को प्रदर्शित करने हेतु किया जाता है।

नियंत्रित शब्दावली की संरचना में प्रमाणिक पदों की नियत मात्रा को प्रस्तुत किया जाता है ताकि वे पद जो अर्थगत रूप में संबंधित है एक साथ लाए जा सकें। नियंत्रित शब्दावली प्राकृतिक भाषा से लिए गए असीमित पदों का एक सेट है और प्रलेखों के अंतर्विषयों को प्रदर्शित करने में प्राकृतिक भाषा को पर्यायवाची शब्दों एवं समनामों से रहित होने की संभावना कठिन है। जब शब्दावली में कोई नियंत्रण नहीं रखा जाता है तो खोज प्रक्रिया में कुछ समस्याएँ आती है। इसका कारण यह है कि प्राकृतिक भाषा में बड़ी मात्रा में समनाम भिन्न अर्थ समनाम, पर्यायवाची शब्द, तुल्य पर्याय, परिवर्णी शब्द, अस्पष्ट पद इत्यादि होते हैं।

इसलिए यदि शब्दावली नियंत्रण का उपयोग नहीं किया जाता है तो विभिन्न अनुक्रमणीकर्त्ताओं या उसी अनुक्रमणीकर्त्ता द्वारा समान विषय वाले प्रलेखों के अनुक्रमणीकरण हेतु विभिन्न अवसरों पर समान अवधारणा के लिए विभिन्न पदों का उपयोग किया जा सकता है तथा खोज करते समय समान विषय को दर्शाने के लिए पदों के विभिन्न समुच्चयों का भी उपयोग किया जा सकता है। इस गलत मिलान के फलस्वरूप सूचना पुर्नप्राप्ति में त्रुटियाँ होती है। जिससे शब्दावली नियंत्रण की आवश्यकता परिलक्षित

होती है। अतः हम कह सकते हैं कि निम्नलिखित समस्याओं को दूर करने के लिए शब्दावली नियंत्रण की आवश्यकता हो सकती है।

आवश्यकता

शब्दावली नियंत्रण की निम्नांकित आवश्यकताएँ हैं :-

(i) यह अनुक्रमणीकर्ता और खोजकर्त्ता की खास विषय अवधारणा को इसके पदानुक्रम एवं अन्योन्य संदर्भों की संरचना के द्वारा व्यक्त करने के लिए आवश्यक तथा प्रयुक्त पदों के चयन में सहायक होती है।

(ii) इसे साहित्य की पदावली एवं वास्तविक या संभावित पाठकों की सूचना आवश्यकताओं से लिया जाना चाहिये। कहने का तात्पर्य है कि पद भी न्यायसंगत हों।

(iii) इसमें यह भाव अन्तर्निहित है कि विशिष्टता का स्तर शब्दावली के अनुसार परिवर्तित होगा क्योंकि कुछ विषय क्षेत्र अन्य की अपेक्षा विस्तृत रूप में विकसित होंगे। नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसिन द्वारा विकसित शब्दावली में गणित के केवल कुछ सामान्य पदों की आवश्यकता होगी जबकि अमेरिकन मैथेमेटिकल सोसाइटी द्वारा विकसित शब्दावली में मेडिकल प्रकृति के केवल कुछ सामान्य पदों की आवश्यकता होगी।

(iv) यह पर्यायवाची, लगभग पर्यायवाची एवं अर्थ पर्यायवाची शब्दों द्वारा अनुक्रमणीकरण तथा खोज में सुसंगतता को प्रोत्साहित करती है।

(v) इसके द्वारा समलेख शब्दों के पृथक्करण, पदावली संबंधी अस्पष्टता एवं उन पदों की परिभाषा जिनका अर्थ या क्षेत्र अस्पष्ट है को कम किया जाता है।

(vi) मिथ्या समन्वय एवं गलत पद सम्बन्धों की अधिकांश समस्याओं से बचने हेतु इसका प्रयोग किया जाता है।

10.2.2 शब्दावली नियंत्रण के उद्देश्य (Objective of Vocabulary Control)

शब्दावली नियंत्रण के निम्न उद्देश्य है जो इस प्रकार हैं -

- खोजकर्ता और अनुक्रमणीकर्त्ता द्वारा प्रलेखों की विषय-सामग्री के प्रस्तुतिकरण को संगत बनाने में बढ़ावा देना। उनके अन्तर्गत संबंधित प्रलेखों के विखराव को पर्यायवाची तथा लगभग पर्यायवाची अभिव्यक्तियों के नियंत्रण द्वारा दूर करना और समलेखों के मध्य भेद करना।

- अर्थगत रूप से अत्यधिक या लगभग संबंधित पदों को किसी प्रकार एक साथ लगाकर व्यापक खोज के संचालन को सुगम करना।

प्रथम उद्देश्य की प्राप्ति पदावली को विभिन्न प्रकार से नियंत्रित करके की जाती है। सर्वप्रथम पद के रूप को नियंत्रित किया जाता है चाहे यह व्याकरण रूपों, वर्त्तनी, एकवचन एवं बहुवचन रूप, संक्षेपन या पदों के मिश्रित रूप में अंतर्निहित हो।

दूसरे चरण में दो या अधिक पर्यायवाची लगभग पर्यायवाची एवं अर्थ पर्यायवाची शब्दों के बीच चयन किया जाता है। पर्यायवाची शब्दों का नियंत्रण संभावित विकल्पों से एक के रूप में चयन के द्वारा सरलता से प्राप्त किया जाता है। इस पद को अन्य पदों से संदर्भित किया जाता है जिसके अन्तर्गत खोजकर्ता अपने अभिगम की तुष्टि कर सकता है। यह स्पष्ट होना चाहिये कि वरीयता प्राप्त पद के रूप में चुना गया पर्यायवाची शब्द एक ही होना चाहिये जिसके अन्तर्गत पाठकों का बहुमत सर्वप्रथम दिखाई पड़ता है। कभी-कभी अर्थपर्यायवाची पद बहुत तथ्यपरक नहीं होते है। अधिकतर लेखक अर्थ-पर्यायवाची शब्द को विलोम शब्द के रूप में अपनाते हैं जो महत्व के विपरीत विचारों को व्यक्त करते हैं।

शब्दावली नियंत्रण समलेख शब्दों के अंत को प्रायः लघुकोष्ठीय योग्यतासूचक अथवा क्षेत्र टिप्पणी द्वारा स्पष्ट किया जाता है। पर्यायवाची, लगभग पर्यायवाची एवं अर्थ-पयार्यवाची शब्दों के नियंत्रण एवं समलेख शब्दों के बीच अन्तर द्वारा शब्दावली नियंत्रण युक्ति एक समान विषय सामग्री के विखराव तथा, असमान विषय सामग्री के संकलन को दूर करती है। अतः इससे अनुक्रमणीकरण एवं खोज में विषय सामग्री के संगत प्रतिनिधित्व एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता होती है।

शब्दावली नियंत्रण का दूसरा उद्देश्य अर्थगत रूप से संबंधित पदों की व्यापक खोज के संचालन को सुगम करने के क्रम में एक-दूसरे को जोड़ना है। पदानुक्रमिक संबंधित पद हेतु यह पदों के बीच अर्थगत संबंधों को भी व्यक्त करता है।

10.2.3 प्रविष्टि शब्दावली एवं अनुक्रमणी शब्दावली (Entry Vocabulary Index Vocabulary)

समतुल्य संबंधों से जुड़े पद अन्य समूहों में निर्मित पदों से अपेक्षाकृत भिन्न होते हैं। अनुक्रमणीकर्ता एक वरीयता प्राप्त पद चुनकर अपनी अनुक्रमी में उपयोग करते हैं। पदों के बीच दोनों प्रकार के संबंध निहित होते हैं और उन दोनों का अनुक्रमणी में उपयोग किया जाता है। वरीयता प्राप्त पद निजी पदों से अनुक्रणीय शब्दावली निर्मित

करते हैं जबकि वरीयता प्राप्त और अवरीयता प्राप्त पद दोनों मिलकर ''प्रविष्टि शब्दावली'' निर्मित करते हैं। प्रविष्टि शब्दावली बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसे बहुत से मौके होंगे जब हम एक विशेष पद का उपयोग नहीं करते एक अथवा अन्य कारण से उसके बदले में अनुक्रमणी शब्दावली में प्रयुक्त पद का उपयोग करते हैं। प्रविष्टि शब्दावली में से प्रयुक्त पद क्षेत्र को केवल साहित्यिक मांग या साहित्य समादेश को ही नहीं बल्कि खोज मांग को भी व्यक्ति करना चाहिये। दूसरे शब्दों में वे पद जो सिर्फ साहित्य में नहीं पाए जाते परन्तु उन पदों का उपयोग पाठकों द्वारा सूचना देखने के लिए किया जाता है। सूचना पुर्नप्राप्ति प्रणाली के खोजकर्ता द्वारा पदों के साथ ही साथ उन लेखकों जिनकी कृतियों का अनुक्रमणीकरण कर रहे हैं के द्वारा प्रयुक्त पदों की जानकारी भी होनी चाहिये।

10.3 विषय शीर्षक (Subject Heading)

विषय शीर्षक को विषय को दर्शाने वाले एक शब्द या शब्दों के समूह के रूप में उल्लेखित किया जाता है। जिसके अन्तर्गत समान विषय को व्यक्त करने वाली सारी सामग्री प्रसूची या ग्रंथसूची में अभिलेखित की जाती है। इसका पहला श्रेय क्रेस्टा डोरो को जाता है जिसने सन् 1856 में प्रकाशित अपनी कृति ''द आर्ट ऑफ मेकिंग कैटलॉग्स'' में पहली बार महसूस किया कि सूचीकर्ता को पुस्तक के अंतर्विषय के मानकीकृत निर्देशिका द्वारा एक शीर्षक प्रदान करना चाहिए। सन् 1895 में विषय शीर्षकों की पहली मानक सूची प्रकाशित हुई। विभिन्न प्रकार के पुस्तकालयों के अनेक विचारों एवं अनुभवों को विषय शीर्षकों की मुद्रित सूची में सम्मिलित किया जाता है।

10.3.1 अर्थ एवं सिद्धान्त (Meaning and Theory)

शब्दकोषीय अर्थ के अनुसार विषय शीर्षक को शब्द अथवा शब्दों का समूह होते हैं जिनमें कोई विशिष्ट विषय भी सम्मिलित होता है और जिसके अन्तर्गत किसी सूची या वाङ्मयसूची में एक ही विषय-वस्तु से संबंधित सभी सामग्रियों को व्यवस्थित किया जाता है। विषय शीर्षक सूची सूचीकरण या अनुक्रमणीकरण प्रक्रिया के समय उपयोग किये जाने वाले विषय अभिगम पदों को अर्न्तनिहित करती है। यह खोजकर्ता के विषय के लिए वरीयता प्राप्त पदों की ओर निर्देशित करते हैं। अवरीयता प्राप्त पदों की जोड़ने वाले संदर्भ ''और भी देखिए'' अन्यान्य संदर्भ कहलाते हैं। इसे एक नियंत्रण प्रणाली जिसे विषय अधिकृत प्रणाली कहते हैं, के द्वारा पूरा किया जाता है, जिसमें पदों के उपयोग एवं संयोजन से संबंधित निर्णय दिये गए होते हैं।

सिद्धान्त

विषय शीर्षक सूचियों से विषय शीर्षकों का चयन करने हेतु कुछ सामान्य सिद्धान्तों का प्रावधान किया गया है ये सिद्धान्त इस प्रकार है-

(i) विशिष्ट एवं प्रत्यक्ष संलेख

इसके अन्तर्गत यह आवश्यकता होती है कि प्रलेख को उसके उस अति विशिष्ट विषय शीर्षक के अन्तर्गत प्रत्यक्ष रूप से रखा जाना चाहिये जो यथार्थरूप से प्रलेख के अन्तः विषय को व्यक्त करता है। मान लें कि एक प्रलेख अनार फल के बारे में है तो इसे अति विशिष्ट अनार के अन्तर्गत ही प्रत्यक्ष रूप से रखा जाना चाहिये न कि फलों या कृषि के अन्तर्गत। यदि इस विशिष्ट विषय अनार का नाम मानक विषय शीर्षक सूची में उपलब्ध नहीं है तो व्यापक अथवा अति सामान्य जैसे कृषि या फल शीर्षक का उपयोग किया जा सकता है।

(ii) एकरूपता

इस सिद्धान्त में विषय पर पुस्तकालय संग्रह में क्या है इसे प्रदर्शित करने हेतु अपनाया जाता है। बहुत से पर्यायवाची पदों में एक एकरूप पद अवश्य चयन किया जाना चाहिये और इस पद को उस विषय के सभी प्रलेखों हेतु सुसंगत रूप से प्रयुक्त किया जाना चाहिए तथा चयन के लिए परिचित भी होना आवश्यक है। इसी प्रकार यदि पद समान है अथवा समान शीर्षक के विभिन्न रूप संभव हों तो केवल एक रुप को ही शीर्षक के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिये। यदि शीर्षक पद के कई अर्थ निकलते हों तो उस पद को व्यष्टिकृत किया जाना चाहिये ताकि पाठक उसके अर्थ को समझते हुए उसका प्रयोग कर सके।

(iii) सर्वसामान्य प्रयोग

यह विषय को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त शब्दों के सर्वमान्य प्रयोग को प्रदर्शित करता है। वर्तमान में अमेरिकन वर्तनी एवं पदावली का उपयोग हो रहा है। सर्वसामान्य प्रयोग या लोकप्रिय सिद्धान्त के अनुसार विषय शीर्षक का चयन पाठकों की अभिगम को ध्यान में रखकर करना चाहिये। छोटे सार्वजनिक पुस्तकालयों के पाठकों के लिए लोकप्रिय अथवा सर्वसामान्य नाम अति उपयुक्त हो सकते हैं परन्तु शोध या विशिष्ट पुस्तकालयों में वैज्ञानिक या तकनीकी नाम शीर्षक के रूप में अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। शीर्षक का नाम निर्धारित करने के बाद सूचीकर्ता को अप्रयुक्त शीर्षक से प्रयुक्त शीर्षक को जोड़ने वाले अन्यान्य संदर्भ अवश्य बनाने चाहिये।

(iv) रूपशीर्षक

रूप शीर्षक ऐसे शीर्षक हैं जो विषयात्मक शीर्षकों के समान दृष्टिगत होते हैं परन्तु साहित्यिक या कलात्मक रूप से संबंधित होते हैं। इस तरह की सामग्री के लिए अभिगम प्रदान करने की इच्छा रखने वाले पुस्तकालय व्यक्तिगत रचनाओं के साथ ही साथ संग्रह एवं सामग्री के रूप के बारे में उपयुक्त शीर्षक प्रदान कर सकते हैं। उनमें साहित्यिक कृतियों से अलग साहित्य रूपों से संबंधित बहुत सी सामग्री भी होती है जिसमें विषय शीर्षक की जरूरत होती है। रूप शीर्षकों को विषयात्मक विषय शीर्षक हेतु एक वचन रूप तथा रूप शीर्षक हेतु बहुवचन रूप का उपयोग करके बनाया जा सकता है। साहित्यिक रूप शीर्षकों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य रूप शीर्षक होते हैं जो सामान्य आरूप एवं प्रलेखों के उद्देश्य के द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।

(v) सुसंगत एवं सामयिक पदावली

जब शीर्षक के चयन हेतु अनेक पयार्यवाची पद होते हैं दो पदों के बीच चयन की समस्या सामने आती है तब सर्वसामान्य सिद्धान्त लागू किया जाता है। इसलिए सामान्य पाठकों हेतु वैज्ञानिक पदों की अपेक्षा लोकप्रिय पदों को वरीयता दी जाती है। इसके विपरीत अनुसंधान एवं विशिष्ट पुस्तकालयों हेतु वैज्ञानिक एवं तकनीक पदों की आवश्यकता होती है क्योंकि ऐसे पुस्तकालयों का संग्रह एवं उसके उपयोगकर्ता दोनों ही विशिष्ट होते हैं। इसलिए इन पुस्तकालयों हेतु मानक सूचियों में परिवर्तन किया जा सकता है।

(vi) प्रति संदर्भ

प्रति संदर्भ पाठकों को शीर्षक में अप्रयुक्त पद से प्रयुक्त पद की ओर निर्देशित करते हैं और प्रदत्त विषय को व्यक्त करने के लिए वर्णित पद को व्यापक तथा अन्य प्रकरणों से संबंधित करते हैं। विषय शीर्षक संरचना में तीन प्रकार के प्रति संदर्भ का उपयोग किया जाता है जो इस प्रकार है :-

(क) 'देखें' संदर्भ :

यह संदर्भ पाठकों को शीर्षक के रूप में अप्रयुक्त पद उपयुक्त पदों से संदर्भित विषय हेतु प्रयुक्त शीर्षकों की ओर मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। 'सी' या 'यूज' संदर्भ प्रदत्त विषय के विभिन्न नामों के अन्तर्गत संबंधित सामग्री को देखने में पाठकों की सहायता करते हैं।

(ख) ''और भी देखें'' संदर्भ :

यह पाठकों को उन शीर्षकों के बारे में मार्गदर्शन करते हैं जो या तो पदानुक्रम या संबंध रूप से संबंधित होते हैं और सूची के प्रविष्टियों में प्रयुक्त हैं। ''और भी देखें''

का तात्पर्य यह है कि संबंधित पद के लिए निर्देश से संबंधित पदों को जोड़कर पाठकों का ध्यान उसकी अभिरूचि की संबंधित सामग्री की ओर आकर्षित करना और संकीर्ण पद हेतु निर्देशों से पदानुक्रमिक संबंधित पदों को जोड़कर पाठकों को उसकी विषय अभिरूचि के पक्षों एवं विशिष्ट झुकाव की खोज में सहायता प्रदान करना है।

(ग) ''सामान्य संदर्भ'' :

यह पाठकों को वैयक्तिक शीर्षकों के बदले शीर्षकों के समूह की ओर निर्देशित करता है। इसे कभी-कभी ''खुला संदर्भ'' भी कहते हैं। विषय शीर्षकों की मानक सूची में सामान्य निर्देशों का प्रवाधान विशिष्ट निर्देशों की लम्बी सूचियों को बनाने की आवश्यकता को रोकता है और इस प्रकार स्थान की मितव्ययिता को सुनिश्चित करता है।

10.3.2 विषय शीर्षकों का प्रयोग (Use of Subject Headings)

सी0 ए0 कटर की कृति ''रूल्स फॉर डिक्सनरी कैटलॉग'' विषय शीर्षकों की रचना के क्षेत्र में प्रथम सूचीसंहिता है जिससे इनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। जो अमेरिकन तथा अंग्रेजी पद्धतियों के लिये अत्यंत उपयुक्त माने गये है और आज भी उन सिद्धान्तों का प्रभाव भाषा-भाषी देशों में विद्यमान है। कटर ने सर्वानुवर्णी सूची के लिए विषय संलेख की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार सूची में ''किसी विषय विशेष को प्रस्तुत करने तथा विभिन्न विषयों के बीच वरण के लिए चुने गये नाम के उल्लेख को विषय शीर्षक कहते हैं इस संबंध में निर्देश है कि किसी कृति को इसके विषय के द्वारा प्रस्तुत करना चाहिये न कि किसी वर्ग के शीर्षक के द्वारा जो उस विषय को भी सम्मिलित किये होता है।'' इस प्रकार जिस विषय शीर्षक का प्रयोग करना है पूर्णतः विशिष्ट होना चाहिये जो वास्तव में विषय के विस्तार और सामान्य रूप की अपेक्षा विशिष्ट अंग को व्यक्त करता हो। विषय संलेखों के अतिरिक्त कटर रूप संलेखों को भी स्वीकार करते हैं।

फोरेटेस्क्यू ने सर्वप्रथम 1888 में बिना किसी तर्कगत अनुक्रम या सुविधाजनक वर्गीकरण आधार के विषयानुक्रमणिका के प्रयोग को प्रारंभ किया था। इन्होंने वर्गीकरण को अव्यावहारिक बताकर प्रयुक्त करने के योग्य नहीं समझा। परन्तु जिस स्वाभाविक शीर्षक का प्रयोग उपयुक्त समझा उसका कोई तर्कसंगत आधार प्रस्तुत नहीं किया।

डी0 एम0 नॉरिस ने किसी विषय के शीर्षक को निश्चित करने के लिए निम्न तथ्यों को विचारणीय बताया है :

- किसी पुस्तक का विषय उल्लिखित प्रकरण होता है।

- प्रकरण को सूची में प्रस्तुत करने के लिए चुना गया पद विषय शीर्षक होता है।
- विषय प्रविष्टि वह प्रविष्टि है जिसमें विषय शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये आवश्यक ग्रंथात्मक विवरणों का समावेश होता है।

जिस शीर्षक को किसी कृति की वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए वरण करते हैं वह पूर्णरूप से उस ग्रंथ के विषय को व्यक्त करने में समर्थ होना चाहिये। विषय शीर्षकों की प्रस्तुत करने के लिए दो प्रमुख नियमावलियाँ हैं-

- शीर्षकों की निर्माण विधि
- प्रयुक्त किये जाने वाले पदों को वर्णन प्रक्रिया से संबंधित।

अनेक विषय आवश्यकतानुसार आवश्यक प्रतीत होते हैं परन्तु उन्हें अप्रासंगिक, अनावश्यक तथा ऐसा नहीं होना चाहिये कि वे इष्ट शीर्षक न बन सकें। कोई भी ग्रंथ जिसके लिए तीन या चार शीर्षकों की आवश्यकता पड़े वह एक साधारण कृति नहीं होती।

10.3.3 श्रृंखला प्रक्रिया : (Chain Procedure)

विषय-शीर्षक निर्माण की इस विधि के जन्मदाता डॉ0 एस0 आर0 रंगनाथन है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग उन्होंने अपनी पुस्तक ''थ्योरी ऑफ लाइब्रेरी कैटॉलॉग'' में किया था।

श्रृंखला प्रक्रिया वर्ग संख्या से लगभग यान्त्रिक रूप में विषय-शीर्षक प्राप्त करने की विधि है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विषय शीर्षक प्राप्त करने की एक अर्द्ध-यांत्रिक विधि है। जो वर्ग संख्या के अनुक्रमिक उपविभाजनों की श्रृंखला से प्राप्त की जाती है। इसे अर्द्ध-यान्त्रिक माना जाता है, क्योंकि सूचीकार को यह निर्माण लेने में सहायता मिलती है कि उपयोगकर्ता का अभिगम क्या होगा? इसलिए सूचीकार द्वारा मनचाहेढंग से शीर्षक निर्माण करने पर अंकुश लग जाता है।

डॉ0 रंगनाथन ने अपनी सूचीकरण संहिता ग्रंथ ''क्लासीफाइड कैटॉलॉग कोड'' में मुख्य प्रविष्टि को ही विशिष्ट विषय माना है, परन्तु आह्वान/क्रामक संख्या प्रविष्टि की वर्गीकरण की कृत्रिम भाषा को पाठक समझने में अनभिज्ञ रहता है। अतः उसके विशिष्ट विषय में पाठ्य सामग्री प्राप्त करने में उसके सहायतार्थ विषय शब्द प्रविष्टि की आवश्यकता होती है। पाठक की इसी अभिगम पूर्ति हेतु श्रृंखला प्रक्रिया को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

(i) **एच0 डी0 शर्मा** के अनुसार, ''यह किसी भी पुस्तक को कृत्रिम भाषा में प्रदत्त वर्गांक के प्रत्येक अंक का जनभाषा में अनुवाद है।''

(ii) **ई0 जे0 कोट्स** के अनुसार, ''विशिष्ट श्रृंखलाओं में सम्मिलित पदों को बिना क्रम परिवर्तित किये विषय शब्द निर्मित करने की प्रक्रिया है।''

(iii) **डॉ0 रंगनाथन** के अनुसार, ''श्रृंखला प्रक्रिया किसी भी वर्गांक से विषय शब्द प्रविष्टि निर्मित करने की न्यूनाधिक यांत्रिक प्रक्रिया है।''

डॉ0 रंगनाथन की अवधारणा है कि प्रत्येक पुस्तक का वर्गांक विभिन्न कड़ियों में बद्ध श्रृंखला है तथा वर्गांक से विषय शब्द प्रविष्टि के निर्माण के लिए प्रत्येक कड़ी को विश्लेषित किया जाता है। इनके अनुसार कड़ियाँ प्रमुखतः तीन प्रकार की होती हैः

(i) मिथ्या कडी (False Link)

(ii) वान्छित कडी (Saught Link)

(iii) अवान्छित कडी (Unsaught Link)

किसी भी वर्गांक से विषय शीर्षक प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम पूर्ण वर्गांक को श्रृंखला रूप में लिया जाता है तत्पश्चात् उन अंकों का अर्थ जनभाषा में लिखा जाता है, जैसे-

वर्गांक- 22 : 51.44 = Classification in public library of India

2 = Library Science

↓

22 = Public library

↓

22 : = Connecting symbol of Eneregy.

↓

22:5 = Technical Treatment in Public Library

↓

22:51 = Classification in a Public Library

↓

22:51. = Connecting symbole of speace

22:51.4 = Classification in a Public Library of Asia.

↓

22:51.44 = Classification in a Public Library of India.

श्रृंखला प्रक्रिया में निम्नांकित सीमाएँ -

(i) इस प्रक्रिया के पूर्व सूची को विषय शीर्षक निर्माण के लिए अनेक विषय शीर्षक सूची पुस्तक एवं अन्य पुस्तक देखने का लाभ प्राप्त होता था, परन्तु इस प्रक्रिया के उपयोग से वह इनके अवलोकन से वंचित रह जाते हैं।

(ii) इसके द्वारा प्राप्त विषय शीर्षकों की सफलता एवं श्रेष्ठता वर्गीकरण पद्धति की श्रेष्ठता पर आश्रित होती है क्योंकि यह पूर्णतः वर्गीकरण पद्धति पर आधारित प्रक्रिया है।

(iii) श्रृंखला प्रक्रिया द्वारा विषय शीर्षकों का निर्माण करने हेतु मात्र उन शब्दों को ही प्रयुक्त किया जाता है जो वर्गीकरण की अनुसूचियों में प्रदान किये गये हैं जिससे सूचीकार का कार्य वर्गाकार के कार्य पर तो निर्भर करता ही है साथ ही सूचीकार की स्वायत्तता, विवेक आदि भी कुंठित हो जाते हैं।

(iv) विषय शीर्षक निर्माण, वर्गीकरण पद्धति पर आधारित होने के कारण सूचीकार का कार्य भी वर्गाकार के कार्य पर आश्रित हो जाता है। यदि वर्गाकार द्वारा गलत वर्गांक का निर्माण कर दिया गया और सूचीकार द्वारा भी उसका संशोधन न किया गया तो परिणामतः अनेक गलत प्रविष्टियों का निर्माण हो जाता है।

10.3.4 पॉप्सी और प्रेसिस (POPSI AND PRECIS)

पॉप्सी अभिधारणा आधारित क्रम परिवर्तित विषय अनुक्रमणीकरण का संक्षिप्त नाम है जिसका विकास **डॉ. रंगनाथन** के सिद्धान्तों के अधार पर डी. आर. टी. सी. बंगलौर में किया गया था। इसमें प्रत्येक प्रलेख के विषय को अभिधारण तथा सिद्धान्तों के आधार पर निरूरित किया जाता है जिसमें यह ध्यान रखा जाता है कि विषय का निरूपण प्रलेख में निहित विचारों के साथ सहविस्तारित हो। इसके बाद दूसरे निरूपित विषय में निहित पदों का क्रम बदलकर प्रविष्टियां तैयार की जाती है। इस प्रकार यह ऐसी विधि है जो कई उद्देश्यों को पूर्ण करने का सामर्थ्य रखती है। इस पद्धति के प्रयोग में निम्नचरण अपनाये जाते हैं :-

प्रथम चरण

शाब्दिक प्रदर्शन : इसमें शाब्दिक प्रस्तुतीकरण में विषय आख्या को बिना किसी परिवर्तन के मूलरूप में जैसा है वैसे ही प्रदर्शित किया जाता है।

द्वितीय चरण

संक्षिप्त प्रदर्शन : इसमें शाब्दिक प्रस्तुतीकरण में से केवल आवश्यक एवं वांछित पदों का निर्धारण किया जाता है। जो सम्भावित विषय शीर्षक हो सकते हैं। अनावश्यक योजक शब्दों इत्यादि को निकाल दिया जाता है।

तृतीय चरण

अभिगम पद : इसमें ऐसे वैकल्पिक पदों का निर्धारण किया जाता है जिनके अन्तर्गत उपभोक्ता द्वारा सूचना खोजी जा सकती है।

चतुर्थ चरण

चतुर्थ निर्देशिका प्रविष्टियों का व्युत्पादन : इसमे चुने गये अभिगम पदों के अन्तर्गत खोज को सरल बनाने हेतु विषय निर्देश प्रविष्टियों की व्युत्पादन विधि का निर्धारण किया जाता है।

पंचम चरण

विषय निर्देश प्रविष्टियों का प्रदर्शन : इसमें प्रत्येक विषय निर्देशित प्रविष्टि के प्रदर्शन के लिए उसके बनाने की विधि, आकार तथा संरचना का निर्धारण किया जाता है।

षष्ठम चरण

अंतर्विषयी प्रविष्टियां : इस चरण में वर्णानुक्रम विषय अनुक्रमणिका में अन्तर्विषयी निर्देशों के क्रम का निर्धारण किया जाता है।

सप्तम चरण

प्रविष्टियों का अनुवर्णिक विन्यास : इसमें सभी प्रकार की प्रविष्टियों को वर्णानुक्रम फाइल में व्यवस्थित कर दिया जाता है।

अष्टम चरण

मार्गदर्शन : इसमें पाठकों हेतु अनुक्रमणिका का उपयोग करने संबंधी निर्देश दिये जाते हैं ताकि उपयोग के समय किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

प्रेसिस :

प्रेसिस विषय अनुक्रमणिका के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पद्धति है जो प्रसंग आश्रित सिद्धान्त पर आधारित है। इसे 1971 में Derick Austin ने बी. एन. बी.की

विषय अनुक्रमणिका तैयार करने हेतु बनाया था। बी॰एन॰वी॰ की विषय अनुक्रमणिका प्रारंभ से लेकर 1970 तक रंगनाथन द्वारा प्रदत्त श्रृंखला प्रक्रिया का प्रयोग कर निर्मित की जाती थी जबकि आवश्यकता थी ऐसी पद्धति की जो कम्प्यूटर द्वारा संचालित हो सके। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्रेसिस का विकास हुआ। कम्प्यूटर पर आधारित प्रेसिस मुख्यतः दो अभिगमों पर ध्यान देती है-

(i) प्रलेख के विषय को निरूपित करने वाले पंक्तिबद्ध शब्दों में निश्चित क्रम स्थापित करती है।

(ii) उपर्युक्त पंक्ति के विभिन्न शब्द संदर्भ-आश्रित क्रम में होने चाहिये अर्थात् प्रत्येक शब्द उसके बाद आने वाले शब्द को व्यापक संदर्भ में प्रकट करता है तथा इनमें एकैकी संबंध होने चाहिये।

इस विधि द्वारा अनुक्रमणिका तैयार करने में निम्न तीन प्रक्रियाएँ निहित हैं-

1. विषय निर्धारण
2. भूमिका सूचकों का आवंटन
3. अनुक्रमणित शब्दों का सन्दर्भ अश्रित क्रम में गठन अथवा व्यवस्थापन।

पहली प्रक्रिया में प्रलेख के विषय का निर्धारण करके उसे विभिन्न अवधारणाओं में विभक्त किया जाता है ताकि सक्षिप्त रूप में विषय के अभिव्यक्त करता हुआ वक्तव्य (Statement) बनाया जा सके। यह वक्तव्य आख्या सदृश्य वाक्य होता है।

दूसरी प्रक्रिया में वाक्य रचना सम्बन्धी भूमिका निर्धारण हेतु ऐसे शब्दों को खोजा जाता है जो क्रिया (Action) अथवा इसके प्रभाव को अभिव्यक्त करते हैं क्रिया सकर्मक एवं अकर्मक दोनों प्रकार की हो सकती है। इसके बाद प्रत्येक शब्द को भूमिका सूचक चिह्न प्रदान किया जाता है जो शब्दों के मध्य सम्बन्ध को बताने के साथ-साथ अपने क्रमिक मूल्य (Ordinal Value) के अनुसार शब्दों का क्रमबद्ध व्यवस्थापन भी करते हैं। भूमिका सूचक पाँच प्रकार के होते हैं।

(1) मुख्य पंक्ति सूचक : ये 0 - 6 तक के अंकों द्वारा व्यक्त किये जाते हैं।

O = Location (स्थिति)

1 = Key System (मुख्य व्यवस्था) : Object of transitive action
सकर्मक क्रिया का कर्म

2 = Action/Effect (क्रिया/प्रभाव)

(2) मध्यस्थता सूचक

(3) विभेदक सूचक

(4) योजक

(5) मूल विषय अन्र्तसम्बन्धक

इसके अतिरिक्त चार प्रकार के भूमिका सूचक चिह्न अंग्रेजी भाषा के छोटे अक्षरों द्वारा व्यक्त किये जाते हैं जिन्हें यहाँ बताना आवश्यक नहीं है।

10.3.5 सियर्स लिस्ट ऑफ सब्जेक्ट हेडिंग्स : (Sears List of Subject Headings)

सियर्स लिस्ट ऑफ सब्जेट हेडिंग्स का प्रथम संस्करण Minnie Earl Sears द्वारा 1923 ई0 में ''लिस्ट ऑफ सब्जेट हेडिंग्स फॉर स्माल लाइब्रेरी'' नाम से प्रकाशित हुआ था। प्रथम तीन संस्करणों का प्रकाशन सियर्स द्वारा किया गया। बाद के संस्करण विभिन्न संपादकों द्वारा निकाले गये हैं। चतुर्थ संस्करण से विषय शीर्षक के साथ डी0डी0 सी0 संख्या भी दी जाने लगी। आनुवर्णिक और शब्दकोशीय सूची बनाने के लिए विषय शीर्षक की आवश्यकता होती है। उसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु विभिन्न सब्जेट हेडिंग्स लिस्ट की रचना गई। सियर्स लिस्ट को मध्यम और छोटे आकार के पुस्तकालयों के लिए उपयुक्त माना गया है।

इस सूची का उद्देश्य है कि किसी विषय विशेष पर पुस्तकालय में जो भी प्रलेख हो उनके विषय शीर्षकों में एक रूपता हो। इसके अतिरिक्त इस सूची में X, XX के बाद वे शीर्षक दिये गये है जिनसे 'देखिये' और 'इसे भी देखिये'' विषय निर्देशों का निर्माण किया जाता है। 'इसे भी देखिये' के अन्तर्गत या उसके बाद जो शीर्षक दिये गए है उनसे सूचीबद्ध किये जाने वाले संबंधित प्रलेख के लिए उपयुक्त शीर्षक या शीर्षकों का चयन किया जा सकता है। जैसे-

Catalogs, Classified

See also Classification Books.

X Catalogs, Systematic, Classed Catalogus

Classified Catalogs,

XX Classification - Books; Library Catalogs.

इस प्रविष्टि में से उपयुक्त शीर्षकों का चयन किया जाता है तो के बाद X के शीर्षकों से 'देखिये' वाले निर्देश दिये जाएंगे।

CATALOGS, SYSTEMATIC

See CATALOGS, CLASSIFIED

इसमें विशिष्ट प्रविष्टि सिद्धान्त विषयों के उपविभाजन, विषय शीर्षकों में भौगोलिक नामों का उपयोग, शीर्षकों के बहुवचन रूप, प्रत्यक्ष शीर्षक आदि का भी प्रवाधान है। साथ ही सामान्य प्रचलित शब्दों का उपयोग एवं संबंधी निर्देश किये गये हैं।

यह अमेरिका की पद्धति है। अतः इसमें अमेरिका में प्रचलित शब्दों का उपयोग किया गया है। जो भारतीय परिप्रेक्ष्य के लिए उपयुक्त नहीं है। इसमें विषय शीर्षकों के संबंध में भी कई असंगताएँ देखने को मिलती है। इसमें अमेरिका के पुस्तकालयों के लिए जो विषय शीर्षक महत्वपूर्ण है और जो वहाँ की आवश्यकता या रूचि के अनुकूल है, उन्हें विस्तृत रूप दिया गया है। इस प्रकार विशिष्ट रूचि के विषयों के दृष्टिकोण से यह सूची भारतीय पुस्तकालयों के लिए अपर्याप्त है।

10.3.6 विषय शीर्षकों की तालिकाएँ एवं दर्शिकाएँ

सूची में एक साथ एक ही विषय से संबंधित पुस्तकों को व्यवस्थित करने की सुविधा एवं सुसंगति की दृष्टि से यह बड़ा ही महत्वपूर्ण है कि अत्यंत उपयुक्त प्रकार के विषय-शीर्षकों का वरण किया जाय और उसी का प्रयोग विषय से संबंधित सभी ग्रंथों के लिए भी किया जाए। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए किसी प्रकार की सुव्यवस्थित नियमावली या शीर्षकों की मान्यता प्राप्त तालिका मार्गदर्शन के लिए आवश्यक है जिससे उपयुक्त एवं मानक पदों तथा शीर्षकों को प्रयोग किया जा सके।

मानक एवं सुपरिचित विषय शीर्षकों की आवश्यकता की पूर्ति 1910 में की गयी जब लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस में प्रयुक्त उन शीर्षकों की तालिका का प्रकाशन किया गया जो उस पुस्तकालय में 1897 से प्रयोग में लाये जा रहे थे। यद्यपि अमेरिकन पुस्तकालय संघ ने 1895 में मानक विषय शीर्षकों की एक तालिका तैयार की थी। विषय शीर्षकों की निम्नांकित तालिकाओं को विषय संलेखों को प्रस्तुत करने के लिए मानक तालिका के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है-

(i) अमेरिकन पुस्तकालय संघ की मानक विषय शीर्षक

(ii) लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस विषय शीर्षक तालिका।

(iii) सियर्स की विषय शीर्षक तालिका।

(iv) बाल पुस्तकालयों के सामग्रियों का विषय शीर्षक।

विषय शीर्षक निर्देशिका -

लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस की विषय शीर्षक तालिकाओं की अनेक दर्शिकाएं भी तैयार की गई है। जिनसे इन विषय शीर्षकों का उपयोग करने की विधि ज्ञात होती है।

विषय शीर्षक तालिकाओं की सीमाएँ -

लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस की विषय शीर्षक तालिका वास्तव में बड़े पुस्तकालयों के लिए उपयुक्त थी। परिणामतः इसका प्रयोग साधारण प्रकार के पुस्तकालयों में संभव नहीं था। सियर्स की विषय शीर्षक तालिका साधारण एवं मध्यम श्रेणी के पुस्तकालय के लिए निर्मित की गयी थी। इल्वाइस रु तथा ला प्लान्टे की विषय शीर्षक तालिका स्कूलों तथा बाल पुस्तकालयों की दृष्टि से उपयोगी है। इन विषय शीर्षक तालिकाओं में सर्वानुवर्णी सूची में प्रयोग करने के लिए 'देखिये' और ''इसे भी देखिये'' के वरण का भी प्रावधान किया गया है। परन्तु इनमें एक अनुरूप नियमों का अभाव है और ये अत्यन्त सीमित हैं अतः उपयुक्त शीर्षकों का वरण करने में पूर्णतः सहायक सिद्ध नहीं होते। इनमें अनुपयुक्त विषय शीर्षकों के प्रयोग से मुक्त रखने का कोई प्रावधान नहीं है।

विषय शीर्षकों के अतिरिक्त इस दिशा में अन्य प्रयास भी किये गये हैं जिससे विषय शीर्षकों की समस्या का समाधान हो सके और आनुवर्णिक विषय सूची का प्रयोग सुविधाजनक सिद्ध हो सके। सभी विषयों का विशद् वर्णन यहाँ संभव नहीं है। अतः मौलिक एवं आवश्यक तत्वों का विवेचन किया गया है जिससे पाठक उनकी उपयोगिता तथा रचना से अवगत हो सके।

10.4 थिसॉरस (Thesaurus)

थिसॉरस शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है। जिसका अभिप्राय शब्दों का भंडार, कोश अथवा संग्रह होता है। 'ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' के अनुसार थिसॉरस का प्राचीनतम प्रयोग 1565 में आख्या ''थिसॉरस लिग्युआ मने एट ब्रिटानिके'' के नाम से जाना गया। इसका प्रथम अंग्रेजी प्रयोग सन् 1736 में किया गया। इसका आधुनिक प्रयोग सन् 1852 में पीटर मार्क रोजेट द्वारा प्रकाशित ग्रंथ ''थिसॉरस ऑफ इंग्लिश वर्ड्स एण्ड फ्रेजेज' थिसॉरस का एक महत्वपूर्ण कोश माना गया। केरेन स्पॉर्क जोन्स ने अपने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विवरण में शब्द कोशों में 'पर्याय संग्रह' की उत्पति की रूपरेखा तथा प्राकृतिक भाषा में भिन्न ''शब्दावली प्रसामान्यीकरण'' के रूप में पहचान की।

पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान के क्षेत्र में थिसॉरस की अवधारणा सन् 1950 से देखी जा सकती है। हैलेन ब्राउन्सन ने 14 मई, 1957 में वर्गीकरण पर आयोजित डोर्किंग सम्मेलन में पहली बार इस शब्द का प्रयोग सूचना पुर्नप्राप्ति हेतु किया। इसका

प्रयोग अनुक्रमणीकरण की भाषा एवं प्रक्रिया में अधिक-से-अधिक किया जाने लगा है। यद्यपि एच0 पी0 लुहान की 'डिक्सनरी ऑफ नोशन्स एण्ड नोटेशनल कैलिमिटीस' तथा ''वर्ड एसोसिएशन मैट्रिक्स कांफ्रेन्स'' पूर्व में किए गए प्रयास हैं 1960 में सूचना पुर्नप्राप्ति हेतु प्रमुख थिसारसों के विकास को देखा जा सकता है। कुछ समय बाद रोजेट पॉलिग्लॉट लैक्सइक पर आधारित बहुभाषी थिसॉरसों को विकसित किया गया। आज थिसॉरस शब्द अनेक परिप्रेक्ष्यों में परिवर्तित कर दिया गया है तथा इसमें पर्याप्त सुविधा मिलती है। इस प्रकार थिसॉरस शब्दकोश का एक पर्याय भी है तथा इसका दूसरा नाम भी। इसी परिप्रेक्ष्य में इसे हम ''विशिष्ट शब्दसूची'' भी कह सकते हैं।

10.4.1 परिभाषाएँ (Definitions)

इसकी कई परिभाषाएँ मिलती है, जो संदर्भ स्रोतों हेतु प्रमुख रूप से प्रचलित है। यद्यपि यहाँ हमारा उद्देश्य प्रकाशित संदर्भ स्रोतों में उपलब्ध परिभाषाओं की एक व्यापक सूची प्रदान करना नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण परिभाषाओं के मुख्य तत्वों को ज्ञात कर वर्णन करना है तो इस प्रकार है-

(i) ए0 रायजादा के शब्दों में, ''थिसॉरस अर्थगत संबंधित पदों की सक्रिय नियंत्रित शब्दावली है जो ज्ञान के किसी विशेष अधिकार क्षेत्र का व्यापक विवरण प्रस्तुत करती है।''

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय मानक संगठन ने इसको इस तरह परिभाषित किया है कि, ''थिसॉरस अनुक्रमणीकर्ताओं, उपभोक्ताओं या प्रलेखों की प्राकृतिक भाषा से अधिक सटीक प्रणाली भाषा के अनुवाद में प्रयुक्त पदावली नियंत्रक विधि है।''

(iii) ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी ने थिसॉरस को 'खजाना' या ज्ञान के ''भंडार गृह'' जैसे शब्दकोश, विश्वकोश आदि के रूप में परिभाषित किया है।''

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से प्रकट होता है कि थिसॉरस का अभिप्राय सामान्य प्रयोग में खजाना या भंडार गृह से है। साहित्यिक क्षेत्र में इसका प्रयोग शब्द संग्रह का शब्दकोश या विश्वकोश में परिवर्तित हो गया है जिसमें किसी विशेष क्षेत्र के पदों या शब्दों या मुहावरों के समूह को उनके समान अर्थों के अनुसार एक साथ रखा जाता है।

10.4.2 उद्देश्य एवं कार्य (Objective and Function)

(i) विभिन्न पदों में संदर्भ प्रदान करना जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि पर्यायवाची पदों के समूह में से केवल एक ही पद का प्रयोग किसी अवधारणा

के अनुक्रमणिकाकरण में किया जा सके।

(ii) किसी विषय क्षेत्र का एक मानचित्र प्रस्तुत करना जिसमें यह प्रदर्शित हो सके कि एक अवधारणा दूसरी आवधारणा से किस प्रकार संबंधित है।

(iii) संबंधित विषय क्षेत्र हेतु मानक शब्दावली उपलब्ध कराना।

(iv) वर्गीकृत पदानुक्रम प्रदान करना जिसके आधार पर खोज को क्रमबद्ध रूप में विस्तृत या सीमित किया जा सके।

(v) ऐसी व्यवस्था करना जिसमें किसी विषय-क्षेत्र में पदों का उपयोग मानकीकृत हो सके।

(vi) उपलब्ध अवधारणाओं के साथ नवीन अवधारणाओं के मध्य संबंध प्रक्रिया का इस प्रकार निर्माण करना कि उपभोक्ता उसका अर्थ समझ सके।

कार्य

(i) यह अनुक्रमणीकर्ता एवं उपभोक्ता को पदों का चयन करने में सहायता करती है।

(ii) थिसॉरस अनुक्रमणीकरण की भाषा में प्रयुक्त पदों की शब्दावली पर नियंत्रण के द्वारा विषय क्षेत्र के लिए मानक शब्दावली उपलब्ध कराती है।

(iii) यह पदों के मध्य पदानुक्रम को प्रदर्शित करती है ताकि खोज को नियोजित रूप में व्यापक अथवा संकीर्ण किया जा सके।

(iv) यह पुर्नप्राप्ति की गति को अनुक्रमणीकृत पदों एवं खोज पदों के उपयोग द्वारा तीव्र करती है।

10.4.3 संरचना एवं प्रकार (Structure and Types)

थिसॉरस प्रलेखों के विवरण प्रस्तुत करने तथा पुर्नप्राप्ति में उपयोग करने हेतु पारिभाषित पदों का एक समुच्चय होता है। थिसॉरस की संरचना उन पाठकों जिनके लिए यह बनाई जाती है की विशिष्ट आवश्यकताओं, प्राथमिकताओं तथा दृष्टिकोणों से परिवर्तित होती रहती है। कोई भी थिसॉरस वर्णानुक्रमी या वर्गीकृत हो सकता है तथा रेखीय प्रदर्शन वाला भी हो सकता है अथवा नहीं भी हो सकता है। वर्णानुक्रमी थिसॉरस में निरूपक अपने संबंधों के आधार पर वर्णानुक्रम में सूचीबद्ध होते हैं तथा

वर्गीकृत थिसॉरस में व्यक्त पदानुक्रमी संबंधों के आधार पर निरूपक सूचीबद्ध होते हैं। पदों के मध्य संबंधों को व्यक्त करने की बहुआयामी विधि रेखीय प्रदर्शन है। इस प्रकार के संबंधों को तीर के चिन्ह वाली रेखाओं से अथवा पदों को संकेन्द्रित कर लघु कोष्ठक में पदानुक्रम दर्शाते हुए व्यक्त किया जाता है। दो पदों के बीच पदानुक्रमी या अपदानुक्रमी संबंध स्थापित होने पर थिसॉरस में प्रत्येक पद हेतु पारस्परिक संलेख निर्मित होते है।

प्रकार

थिसॉरस पदावली नियंत्रण की प्रकृति के आधार पर निम्न दो प्रकार के होते हैं-

(ii) नियंत्रित थिसॉरस

इसमें अनुक्रमणीकरण एवं खोज के उद्देश्य के लिए केवल एक पद को वरीयता देते हुए उसकी अवधारणा को व्यक्त करने की अनुमति प्रदान की जाती है। इस प्रकार की थिसारस का रख-रखाव मानव द्वारा किया जाता है।

(iii) मुक्त भाषा थिसॉरस

इसमें अनुक्रमणीकरण एवं खोज के उद्देश्य के लिए किसी एक अवधारणा को व्यक्त करने हेतु सभी पदों का उपयोग करने की स्वीकृति प्रदान की जाती है। इस प्रकार की थिसॉरस में कम्प्यूटर द्वारा रख-रखाव एवं पुनर्प्राप्ति की आवश्यकता होती है।

10.4.4 थिसॉरो-फेसेट : (Thesauro-Facet)

थिसॉरो फेसेट, पक्षात्मक वर्गीकरण तथा थिसॉरस दोनों का संयुक्त प्रयोग है जो उत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए इन दोनों उपकरणों का उपयोग साथ-साथ किए जाने पर बल देता है। दोनों एक-दूसरे के लिए पूरक है। इसमें परिभाषिक पदों को अनेक मुख्य पदानुक्रम में प्रदर्शित किया जाता है तथा थिसॉरस इन पदों को द्वितीय संबंधों में एक साथ सूचीबद्ध करते हैं। पदों की अंकन के द्वारा कड़ी प्रदान की जाती है। 1970 ई0 में जोन एचिटसन ने थिसॉरोफेसेट को ''थिसॉरोफेजिटः ए थिसॉरस एण्ड फेसेटेड क्लासीफिकेशन फॉर इंजीनियरिंग एण्ड रिलेटेड सब्जैक्ट्स'' आख्या के अन्तर्गत प्रकाशित किया।

10.4.5 क्लैसॉरस : (Clasaurus)

यह शाब्दिक धरातल पर पदानुक्रमिक वर्गीकरण की एक प्रारंभिक श्रेणी आधारित क्रमबद्ध पद्धति है जो पारम्परिक सूचना पुर्नप्राप्ति थिसॉरस के सभी आवश्यक एवं पर्याप्त गुणों को सम्मिलित करती है। डॉ0 गणेश भट्टाचार्य द्वारा विकसित की गई शब्दावली नियंत्रण विधि है। यह थिसॉरस की भॉति प्रत्येक पद में पदानुक्रमिक अनुसूचियों, पर्यायो, अर्थ पर्यायों इत्यादि द्वारा समृद्ध होती हैं। थिसॉरस के विपरीत क्लैसॉरस संबंधित पदों की दूसरी संबंद्धता को इसकी श्रेणी आधारित संरचना के कारण सम्मिलित नही करता है।

(i) सुनियोजित भाग

(ii) वर्णानुक्रमिक अनुक्रमणी भाग

सुनियोजित भाग सर्वसामान्य परिवर्धकों से विनिर्मित होता है। इसमें प्रत्येक प्रविष्टि निरूपकों, विस्तार क्षेत्र टिप्पणी, पर्यायवाची शब्दों, यदि कोई हो तो उसे चिन्ह से दिखाया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रविष्टि को अनन्य अक्षर कोड प्रदान किया जाता है।

क्लैसॉरस का वर्णानुक्रमिक अनुक्रमणी भाग सुनियोजित भाग में विद्यमान पर्यायों सहित समस्त पदों को उनके संबोधन के साथ शामिल करता है।

10.4.6 थिसॉरस एवं विषय शीर्षक सूची में अंतर (Difference between Thesaurus and Subject Heading)

थिसॉरस तथा विषय शीर्षक सूची दोनों ही अनुक्रमणीकरण तथा सूचना पुर्नप्राप्ति में प्रयुक्त शब्दावली के नियंत्रण की विधियाँ है फिर भी दोनों में निम्न अंतर है जो इस प्रकार है :-

(i) विषय शीर्षक सूचियों में विषयों या पदों के नाम वर्णानुक्रम में व्यवस्थित कर प्रदर्शित किये जाते हैं जबकि थिसॉरस में नामों को प्रदर्शित न करके अवधारणाओं को प्रदर्शित किया जाता है।

(ii) विषय शीर्षक सूचियाँ पूर्व-समन्वित अनुक्रमणिकाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अभिकल्पित की गई है जबकि थिसॉरस पश्च-समन्वित अनुक्रमणिका की विशिष्टि आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अभिकल्पित की गई है।

(iii) थिसॉरस में पाये जाने वाले पद विषय शीर्षक सूची में सम्मिलित पदों की अपेक्षा ज्यादा विशिष्ट होते हैं।

(iv) थिसॉरस में शीर्षक उप-विभाजित नहीं होते लेकिन विषय शीर्षक सूची में बहुधा उपविभाजित होते हैं।

(v) विषय शीर्षक सूचियां संयुक्त शब्दों पदों के क्रम को सम्मिलित करती है। इसके अतिरिक्त बहु-शब्दीय वाक्यांशों के क्रम को, महत्वपूर्ण शब्दों को अग्रिम स्थिति में लाने हेतु परिवर्तित कर देती है जबकि थिसॉरस में ऐसा कुछ नहीं है।

(vi) संरचना की दृष्टि से थिसॉरस और विषय शीर्षक सूचियां अलग-अलग ढंगों से प्रयुक्त की जाती हैं। विषय शीर्षक सूचियों से प्रत्यक्ष शीर्षक प्राप्त किये जा सकते हैं। लेकिन थिसॉरस में ये विषय स्वतंत्र पदों के साथ प्रदर्शित किये जाते हैं।

(vii) थिसॉरस में सूचीबद्ध पदों के बीच संबंध कई परिस्थितियों में अनुक्रमणिका के अन्तर्गत स्थानान्तरित नहीं किये जाते हैं, जबकि विषयों शीर्षक सूची में प्रायः 'देखे' तथा ''इसे भी देखे'' निर्देश बनाये जाते हैं।

(vii) संदर्भों की तीव्रता के संबंध में थिसॉरस विषय शीर्षक सूची की अपेक्षा एक अत्यंत परिमार्जित पद्धति है जो पदों में संरचनात्मक संबंध के साथ-साथ पदानुक्रमी तथा साम्य एवं सहचर्य संबंध भी प्रदर्शित करती है।

10.5 सारांश (Summary)

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि शब्दावली नियंत्रण, विषय शीर्षक सूची और थिसॉरस बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस इकाई में शब्दावली नियंत्रण के अर्थ, आवश्यकता, उद्देश्यों एवं महत्वपूर्ण कार्यों को भी दर्शाया गया। विषय शीर्षक के चयन एवं प्रस्तुतीकरण से संबंधित सामान्य सिद्धान्त के संदर्भ में विषय शीर्षकों की सूची की व्याख्या की गई है। थिसॉरस के उपयोग, रख-रखाव उनके कार्यों, संरचना के मध्य संबंधों की प्रकृति के संबंध में भी विचार किया गया है।

हमने यह भी देखा है कि थिसॉरस तथा विषय शीर्षक सूची में क्या अंतर है? विषय शीर्षक सूची के विभिन्न पहलुओं जैसे-श्रृंखला प्रक्रिया, पॉप्सी, प्रेसिस, सियर्स लिस्ट ऑफ सब्जेट हेडिंग्स और विषय शीर्षक की तालिकाएँ जिनसे विषय का चयन करने में सहायता मिलती है, का भी वर्णन किया गया है।

10.6 संबंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(i) शब्दावली नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? इनके उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं पर प्रकाश डालें।

(ii) विषय शीर्षक सूची के अर्थ को स्पष्ट करे तथा इनके प्रयोग एवं सिद्धान्तों का वर्णन करें।

(iii) सियर्स लिस्ट ऑफ सब्जेट हेडिंग्स और श्रृंखला प्रक्रिया की बारे में लिखें।

(iv) थिसॉरस की परिभाषा एवं कार्यों की विवेचना करें।

(v) थिसॉरस की संरचना और प्रकारों का वर्णन करें।

(vi) थिसॉरस और विषय शीर्षक सूची के विभिन्न अंतरों को स्पष्ट करें?

लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) शब्दावली नियंत्रण के उद्देश्यों की चर्चा करें?

(ii) विषय शीर्षक सूची का अर्थ एवं सिद्धान्त की चर्चा करें।

(iii) श्रृंखला प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं?

(iv) पॉप्सी और प्रेसिस के बारे में लिखें।

(v) थिसॉरस के उद्देश्य एवं प्रकारों को बताएँ।

(vi) थिसॉरस की संरचना का वर्णन करें।

(vii) थिसॉरस एवं विषय शीर्षक सूची में अन्तर स्पष्ट करें?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) थिसॉरस का प्राचीनतम प्रयोग कब और किस नाम से हुआ।

(ii) थिसॉरस का प्रथम अंग्रेजी प्रयोग कब हुआ।

(iii) पीटर मार्क रोजेट द्वारा प्रकाशित पुस्तक कब और कहाँ से प्रकाशित हुई।

(iv) डॉर्किंग सम्मेलन कब हुआ था?

(v) 'द आर्ट ऑफ मेकिंग कैटलॉग्स' को किसने और कब प्रकाशित किया।

(vi) पहली बार मानक सूची कब प्रकाशित हुई ?

(vii) क्लैसॉरस शब्द की उत्पत्ति किसने की ?

10.7 अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

(i) 1565 में 'थिसॉरस लिंग्युआ मने एट ब्रिनिका' के नाम से।

(ii) 1736

(iii) 1852 में ''थिसॉरस ऑफ इंग्लिश वर्ड्स एण्ड फ्रेजेज नाम से

(iv) 14 मई 1957 में

(v) क्रेस्टाडोरो ने 1856 में किया

(vi) 1895

(vii) डॉ0 गणेश भट्टाचार्य ने

10.8 उपयोगी पुस्तकें

सूद, एस0 पी0 : पुस्तकालय सूचीकरण के सिद्धान्त

त्रिपाठी, एस0 एम0 : आधुनिक सूचीकरण

शर्मा, एस0 के0 पाण्डेय : सरलीकृत पुस्तकालय सूचीकरण के सिद्धान्त

कुमार, गिरजा एवं कुमार, कृष्ण : सूचीकरण के सिद्धान्त

कौला, पी0 एन0 और अग्रवाल, एस0 एस0 : सूची प्रविष्टि और प्रक्रिया

एंग्लो अमेरीकन कैआलॉगिग रूल्स : द्वितीय संस्करण

रंगनाथन, एस0 आर0 : वर्गीकृत सूची संहिता

ठाकुर, यू0 एम0 तथा शर्मा, बी0 के0 : पुस्तकालय, सूचना विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी : विवेचनात्मक अध्ययन

इकाई -11 : रिकार्ड प्रारूप का मानकीकरण (ISBD, MARC, CCF)

इकाई की रूपरेखा

11.0 विषय प्रवेश
11.1 **ISBD** का उद्‌भव, उद्देश्य, आवश्यकता एवं कार्य क्षेत्र
11.1.1 बोध प्रश्न
11.1.2 **ISBD** की विशेषता, प्रकार एवं संरचना
11.2 मार्क : संक्षिप्त परिचय
11.2.1 मार्क सेवा
11.2.2 मार्क - ।। के अभिलक्षण
11.2.3 मार्क : संक्षिप्त इतिहास एवं इसके लाभ
11.2.4 मार्क : अंतर्राष्ट्रीय परियोजनाएँ
11.2.5 बोध प्रश्न
11.3 सी.सी.एफ. (C.C.F.)
11.3.1 बोध प्रश्न
11.4 सारांश
11.5 अभ्यास कार्य
11.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 विषय प्रवेश (Introduction)

ग्रंथपरक विवरण द्वारा प्रलेख की पहचान, प्रलेख में निहित विषयवस्तु की प्रकृति की पहचान, अभिगम एवं प्रसार के उद्देश्य की पूर्ति की जाती है। ग्रंथपरक विवरण किसी भी प्रलेख का संक्षिप्त प्रतिरूप होता है जिसमें प्रलेख से संबंधित सभी आवश्यक सूचनाओं का समावेश होता है। ग्रंथपरक विवरण का निर्माण कई अवयवों के संयोग द्वारा होता है। डाटा अवयव सूचना की उस विशिष्ट ईकाई को कहा जाता है, जिसका प्रलेख के विषय वस्तु के साथ कार्यात्मक संबंध होता है। उदाहरण के लिए- लेखक (Author), आख्या (Title) प्रकाशन (Publication), संस्करण (Edition) आदि।

किसी भी प्रारूप में लिखित अभिलेख का हर क्षेत्र निश्चित रहता है, जिसमें निहित अभिलेख के डाटा अवयवों की अलग से पहचान होती है एवं संबंधित क्षेत्रों के

बीच कई संकेतों द्वारा उनमें विभेद किया जाता है। एक मशीन पठनीय ग्रंथपरक प्रारूप उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति करता है। ISBD, MARC और CCF ऐसे ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर के ग्रन्थपरक प्रारूप है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नवीन क्रांति आने के बाद पुस्तकालयों में सेवा प्रदान करने की तकनीक एवं कार्य प्रणाली में काफी बदलाव आया जिसके कारण भी एक मशीन ग्रंथपरक मानकों की आवश्यता उत्पन्न हुई।

सन् 1969 में इफ्ला (IFLA) द्वारा आयोजित एक मीटिंग में (ISBD) मानक प्रारूप का निर्माण हुआ। ग्रंथात्मक नियंत्रण से संबंधित ये विनिमय प्रारूप देश एवं विदेश की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ग्रंथपरक एजेंसियों के मध्य ग्रंथात्मक डेटा के हस्तांतरण और समावेश को सुगम बनाते हैं। ISBD जैसे अंतर्राष्ट्रीय मानको के विकास ने विभिन्न देशों में एक कॉमन कम्यूनिकेशन फार्मेट द्वारा ग्रंथपरक डेटा के विनिमय को सरल बनाकर सूचना के संचार को और अधिक गतिशील व सुगम बनाया।

मशीन पठनीय प्रारूप के रूप में मशीन रीडेबल कैटलॉग (MARC) को सर्वप्रथम लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस ने तैयार कर परीक्षण किया जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रंथालयों के लिए सूचना का संचरण था। पहले कई देशों के राष्ट्रीय ग्रंथपरक एजेंसियों द्वारा अलग-अलग Format के आधार पर अपने-अपने मार्क फार्मेट का विकास किया गया। अतः ग्रंथपरक डेटा के विनिमय हेतु एक अंतर्राष्ट्रीय फार्मेट की आवश्यकता को देखते हुए ही इफ्ला (IFLA) द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मार्क फार्मेट तैयार किया गया, जिसके परिणामस्वरूप 1977 ई0 में मोनोग्राफ एवं क्रमिक प्रकाशन हेतु (MARC) का विकास हुआ, जिसका 1989 में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ।

UNESCO द्वारा ही ग्रंथपरक अभिलेखों के लिए सार्वभौमिक विनिमय प्रारूप C.C. F के रूप में विकसित किया गया।

11.1 ISBD का उद्‌भव, उद्देश्य, आवश्यकता एवं कार्यक्षेत्र

सन् 1961 में इफ्ला (IFLA) द्वारा पेरिस में आयोजित सूचीकरण सिद्धान्तों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में मानकीकरण ग्रंथपरक विवरण हेतु एक रूपरेखा तैयार की गयी और साथ में कुछ सिद्धान्तों को भी प्रतिपादित किया गया, जिन पर AACR-2 के नियमों का निर्माण हुआ। 1969 में कोपहेगन में आयोजित ''सूचीकरण विशेषज्ञों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में माइकेल गॉटमेन द्वारा निर्मित प्रतिवेदन की समीक्षा की गयी

और उसके आधार पर एक कार्यकारी समूह का गठन हुआ। इसी समूह की संस्तुति के आधार पर 1971 में ISBD का प्रकाशन हुआ। 1974 में ISBD (Monograph) का संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके बाद इसे ISO द्वारा अनुमोदित किया गया। ISBD को अंतर्राष्ट्रीय सूचनाओं के संप्रेषण के एक उपकरण के रूप में ख्याति मिली और एक स्तर पर सूचनाओं के उपयोग में एकरूपता आयी। यह इंटरनेशनल स्टैण्डर्ड फॉर बिब्लियोग्राफिक डिस्क्रिप्शन का संक्षेपण है, अर्थात् संक्षिप्त रूप है। इस मानक का निर्माण 1971 ई0 में इफ्ला (IFLA) द्वारा ग्रंथसूचियों एवं प्रसूचियों आदि में ग्रंथात्मक विवरण के मानकीकरण हेतु किया गया, जो सरलता से समझने योग्य एवं उपयोग में लाने हेतु सर्वमान्यता से ग्राह्य हो।

♦ **उद्देश्य :**

पुस्तकालय प्रसूचीकरण के क्षेत्र में विश्व में अनेक प्रयोग एवं मानकों का निर्माण किया गया, लेकिन उनमें व्याप्त दोषों एवं अनेक तरीकों में समरूपता लाने के उद्देश्य से कई संगठनों एवं पुस्तकालय से संबंधित शिक्षाबिद्धों द्वारा संयुक्त रूप से एक प्रयास किया गया। विभिन्न देशों के पुस्तकालयाध्यक्षों के संयुक्त प्रयास के फलस्वरूप एक मानक प्रसूचीकरण स्वरूप के निर्माण हेतु इफ्ला,ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी (अब दि ब्रिटिश लाइब्रेरी) जैसे बड़े संगठनों द्वारा मानकीकृत प्रसूचीकरण व्यवहार हेतु एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी गयी, जिसके फलस्वरूप सन् 1969 में इफ्ला द्वारा अंतर्राष्ट्रीय ग्रंथपरक विवरण (ISBD) के प्रकाशन हेतु प्रसूचीकरण विशेषज्ञों का एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन कोपनहेगन में आयोजित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप का प्रकाशन सन् 1971 में हुआ।

♦ **ISBD की आवश्यकता :**

- ग्रंथपरक सूचना के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय हेतु।
- संसार में निहित ज्ञान के सर्वत्र प्रसार एवं उपयोग के दृष्टिकोण से।
- समस्त पुस्तकालयों में एकरूपता लाने के उद्देश्य से।
- श्रम एवं व्यय में अंकुश लगाने हेतु।

ISBD के कार्यक्षेत्र :

- ग्रंथपरक सूचनाओं के अंतर्राष्ट्रीय संप्रेषण हेतु उपकरण के स्वरूप में।
- विभिन्न स्रोतों के विनिमय के अभिलेख निर्मित करना।
- भाषा के अवरोध को दूर करते हुए आख्या को सरल बनाकर मशीन पठनीय स्वरूप के योग्य करना।

- पुस्तकालयों के मध्य संसाधन सहभागिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से।
- पारस्परिक विनिमय हेतु अनेक स्रोतों से अभिलेख निर्मित करना।
- ग्रंथपरक अभिलेखों को मशीन पठनीय प्रारूप में परिवर्तित कर सुगमता प्रदान करना।

11.1.1 बोध प्रश्न

1. रिकॉर्ड प्रारूप के मानकीकृत स्वरूपों का संक्षिप्त उल्लेख करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2. अंतर्राष्ट्रीय ग्रंथपरक मानक विवरण की आवश्यकता के कारणों का उल्लेख करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

11.1.2 ISBD की विशेषता, प्रकार एवं संरचना

ISBD की निम्नलिखित विशेषताएं है :-

- इसमें व्यापकता निहित है।
- इसमें डाटा अवयवों का एक निश्चित क्रम होता है।

- विभिन्न तरह के ग्रंथपरक अवयवों के बीच में परिसीमा के रूप में विराम चिन्हों का उपयोग किया जाता है।

ISBD के प्रकार :

विभिन्न प्रकार के प्रलेखों के लिए समय-समय पर इसके निम्न प्रकाशन हुये हैं जो इस प्रकार है :

1.	ISBD (M)	Monograph (मोनोग्राफ)
2.	ISBD (G)	General (जर्नल)
3.	ISBD (S)	Serial (सीरीयल)
4.	ISBD (C.M)	कौरटोग्राफिक मैटिरीयल
5.	ISBD (P.M.)	प्रिन्टेड म्यूजिक
6.	ISBD (C.P)	कम्पोनेन्ट पार्ट्स
7.	ISBD (O.B)	ओल्ड प्रिन्टेड बुक
8.	ISBD (A.V)	आडियो विडियो मेटिरीयल
9.	ISBD (C.F)	कम्प्यूटर फाइल्स

ISBD की संरचना :

ISBD में प्रलेख के विवरण हेतु आठ मानकों का निर्धारण किया गया है, जो निम्नलिखित है :-

1. आख्या एवं दायित्व कथन क्षेत्र
2. संस्करण क्षेत्र
3. सामग्री (या प्रकाशन के प्रकार)
4. प्रकाशन, वितरण
5. भौतिक विवरण क्षेत्र
6. ग्रंथ माला क्षेत्र
7. टिप्पणी क्षेत्र
8. मानक संख्या एवं उपलब्धता क्षेत्र की शर्ते

AACR-2 के सामान्य नियम के अनुसार प्रलेख के विवरण को उपर्युक्त आठ क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि हर प्रसूचीकृत प्रलेख

के संलेख में सभी क्षेत्र हों। ISBD के अनुसार मुख्य प्रविष्टि के अनुच्छेद इस प्रकार है-

1. आख्या एवं दायित्व कथन क्षेत्र :

   (Title and Statement of Responsibility Area)

→ यह प्रथम क्षेत्र है एवं इसमें आख्या, समांतर, आख्या, उप-आख्या आदि लिखकर लेखक के बारे में सूचना दी जाती है। एवं योजक चिन्हों के साथ लेखक से संबंधित सूचना का अंकन किया जाता है।

Ex: Title Proper = Parallel Title / Statement of responsibility,

2. संस्करण क्षेत्र (Edition Area)

→ डॉट स्पेश डैश (.–)के बाद दूसरा क्षेत्र शुरू होता है, जिसमें संस्करण एवं संस्करण से संबंधित लेखक की सूचना को अंकित किया जाता है।

Ex: Edition/Statement of authorship.

3. मुद्रणांकन क्षेत्र (Imprint Area)

→ इस क्षेत्र में प्रकाशन का स्थान, प्रकाशक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष आदि के संबंधित सूचना प्रदान की जाती है।

Ex: Title Proper = Parallel Title / Statement of authorship,

4. पृष्ठादि (Collation Area) :

→ इस क्षेत्र में पृष्ठ संख्या, चित्र एवं आकार आदि की सूचना को लिखा जाता है।

Ex: iv, 22p.; ill : 21cm.

5. ग्रंथमाला क्षेत्र (Series Area)

→ इस क्षेत्र में ग्रंथमाला से संबंधित सभी सूचनायें लघु कोष्ठक के अंतर्गत प्रस्तुत की जाती है। इस क्षेत्र में पहले ग्रंथमाला का नाम उसके बाद स्लैश (तिर्यक रेखा) लगाकर ग्रंथमाला के संपादक का नाम एवं उसके बाद सेमी कोलन (:) लगाकर ग्रंथमाला की संख्या अंकित की जाती है।

Ex: (Name of Series/Editor's name; No.1)

6. टिप्पणी क्षेत्र (Notes Area)

→ इस क्षेत्र में उस सूचना को लिखा जाता है जो अन्य क्षेत्रों में नहीं लिखी जा सकती है। मोनोग्राफी से संबंधित कोई टिप्पणी रहने पर उससे संबंधित सूचना को इस क्षेत्र में लिखा जाता है।

Ex: ISBN (ISBN and Price Area)

7. ISBN एवं मूल्य क्षेत्र (ISBN and Price Area)

→ इस क्षेत्र में ग्रंथ की अंतर्राष्ट्रीय मानक संख्या एवं ग्रंथ के मूल्य से संबंधित सूचना अंकित की जाती है।

Ex: ISBN 0811281 - 38 ; Rs. 75.

मुख्य संलेख में ISBN का मानकीकृत स्वरूप इस प्रकार है :-

Class No. Book No.		Name of the Author
Acc. No		Title proper = parallel Title : Sub title infromation / First statement of responsibility; each statement of responsibility.– Edition statement / first statement of responsibility related to the edition.- Material (or type Access of publication) specific details.- First place of publication, Nation : publisher name, year of pubilication No. of pages; size of the book.- (series name / statement of responsibility relating to series; series no.) Notes ISBN Tracing ○

इस प्रकार उपरोक्त अवलोकन के आधार पर हम देखते हैं कि मानक प्रलेखों को पूर्ण ग्रंथात्मक विवरण के सार्वभौमिक अनुसरण की एक सर्वमान्य विधि है जो विवरण के तत्वों एवं उनके अनुक्रम को विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं एवं उपयोगकर्त्ताओं के अनुरूप सिद्ध हो सके।

ISBD जैसे मानक लगभग 20 देशों की National graphics ने उपयोग किए है, जिनको 14 से अधिक भाषाओं में अनुवादित किया गया है।

11.2 मार्क (MARC)

सूचना सेवा के क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप मुद्रित सूचना स्रोतों के साथ-साथ अमुद्रित सूचना स्रोतों में आजकल डेटाबेसों का प्रयोग काफी बढ़ा है। मुद्रित सूचना सामग्रियों के इलेक्ट्रॉनिक स्वरूप को डेटाबेस कहा जाता है, जो ऑनलाइन खोज में सहायता प्रदान करते हैं। डेटाबेस सूचना संग्रह का वह स्वरूप है, जो कम्प्यूटर के मैग्नेटिक टेप या डिस्क में अभिलेखबद्ध है, एवं जिसका अवलोकन करने के लिए यंत्र का उपयोग करना पड़ता है। आजकल डेटाबेस कई श्रेणियों में उपलब्ध है, जैसे- संदर्भ डेटाबेस, स्रोत डेटाबेस। MARC भी ऐसे ही डेटाबेस का एक उन्नत स्वरूप है। **लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस** द्वारा 1966 में यंत्र पठनीय प्रसूचीकरण आधार सामग्री को प्रस्तुत करन हेतु MARC नामक एक परियोजना शुरू की गयी, जिसे 1968 में बंद कर दिया गया। इसके बाद MARC-II नामक एक स्थायी सेवा का आरम्भ किया गया, जिसके अंतर्गत कोई भी ग्रंथालय यंत्र पठनीय प्रसूचीकरण आधार सामग्री मैगनेटिप टेप के रूप में प्राप्त कर सकता है, जिसमें कई विदेशी प्रकाशनों का विवरण निहित होता है। मार्क (MARC) मशीन पठनीय प्रसूची या प्रसूचीकरण का लघु रूप है। मार्क को लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस द्वारा विकसित किया गया, जिसके द्वारा प्रसूचीकरण के लिए मानक प्रारूप की प्राप्ति होती है। कम्प्यूटर द्वारा व्यवस्थित ग्रंथपरक डेटाओं के पहचान व व्यवस्थापन हेतु परम्पराओं के एक विशिष्ट समूह को प्रयुक्त करने वाले प्रारूपों का एक समुच्चय है। मार्क प्रारूप पर आधारित कई पृथक प्रारूपों का निर्माण विभिन्न देशों द्वारा किया गया है। जैसे - USA का (US-MARC) यूनाइटेड किंगडम का (UK-MARC), कनाडा का (CAN-MARC), आस्ट्रेलिया का (AUS-MARC) जर्मनी का मैब-I (MAB-I) इटली का (ANNA-MARC), डेनमार्क का (DAN-MARC), स्पेन का (EBER MARC), स्वेडन का (SWE-MARC).

11.2.1 मार्क सेवा : (MARC SERVICE)

इस सेवा के अन्तर्गत एक केन्द्रीय संगठन द्वारा प्रलेखों को सूचीकृत किया जाता है और संबंधित प्रलेखों की ग्रंथपरक सूचनाओं को चुम्बकीय फीतों पर अभिलेखित करके इन फीतों की कॉपियाँ अन्य ग्रंथालयों को भेजी जाती है। भेजे गए चुम्बकीय फीतों द्वारा कम्प्यूटर की सहायता से ग्रंथालयों द्वारा अपने संग्रह की प्रविष्टियों के लिए मुद्रित सूचीपत्र तैयार किया जाता है। मार्क सेवा का प्रचलन व उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

MARC-I कार्यक्रम की समाप्ति के पूर्व ही गहन मूल्यांकन एवं विश्लेषण के बाद MARC-II की शुरूआत की गयी। MARC-II में ग्रंथ, क्रमिक प्रकाशन, मानचित्र, म्यूजिक, जर्नल ऑर्टिकल्स जैसे सभी तरह की पाठ्य-सामग्रियों को शामिल किया गया।

11.2.2 MARC-II के अभिलक्षण

- यह अंतर्राष्ट्रीय प्रसूचीकरण के क्षेत्र में एक सफल प्रयास है।
- इसमें प्रलेखों के प्रसूचीकरण से संबंधित कार्य हेतु एक केन्द्रीय संगठन है।
- इसमें पुस्तकों की तुलना में फिल्मों, मान-चित्रावलियों एवं पत्रिकाओं व धारावाहिकों को शामिल किया जाता है।
- इसमें 1969 के पूर्व व पश्चात् की कृतियों को टेपों के द्वारा सुलभ किया जाता है।
- इसमें मैगनेटिक टेपों पर आधार सामग्रियों को रिकार्ड कर इन्हीं टेपों द्वारा मुद्रित प्रसूचियों का निर्माण किया जाता है।
- ये मैगनेटिक टेपों की प्रतियाँ भी ग्रंथालयों को सुलभ कराता है।
- पत्रकों के रूप में भी प्रसूचियों का निर्माण किया जा सकता है।
- कम्प्यूटर की सहायता से वाङ्मय सूची का भी इसमें निर्माण किया जाता है।
- संचयी अंकों एवं मुद्रित पत्रकों के निर्माण हेतु भी इसका उपयोग किया जा रहा है।
- BNB भी लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस की सहायता से इसको विकसित कर इसका अनुसरण कर रही है।
- इसे क्रमशः ऑनलाइन के रूप में भी सुलभ कराने की दिशा में प्रयास हो रहे हैं।
- इसकी मान्यता एवं महत्ता लगातार बढ़ती जा रही है।
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इसका उपयोग वाङ्मयात्मक नियंत्रण हेतु किया जाता है।

MARC-II उपयोगिता

- हर प्रकार के प्रलेख सामग्री की ग्रंथपरक सूचना प्रदान करने में यह प्रारूप लाभकारी है।

- ग्रंथालय एवं सूचना सेवा से संबंधित समस्त क्रियाकलापों का कम्प्यूटरीकरण करने हेतु आधार स्वरूप में उपयोग हेतु प्रारूप को लचीला बनाया जा सकता है।
- इस प्रारूप के अभिकल्प हेतु कम्प्यूटर संरचना एवं प्रोग्राम की भाषा के विभिन्न स्तर व विस्तृत क्षेत्रों पर भी गहन विचार-विमर्श हुआ, जो मशीन प्रारूप में प्रक्रियाकरण में प्रयुक्त होने के लिए संभावित है।

11.2.3 मार्क (MARC) संक्षिप्त इतिहास एवं इसके लाभ

1956 ई0 में शुरूआत में विश्व के कई देशों में Library of Congress ने अपने कार्यालय खोले और संबंधित कार्यालयों में पाठ्य-सामग्री के भेजने की व्यवस्था की। जुलाई 1968 से मार्च 1969 के बीच लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस द्वारा MARC-II में प्रारूप से परिचित होने के लिए पूरे देश में कई स्थानों पर संगोष्ठियों का आयोजन किया गया, ताकि ग्रंथालयों में कार्यरत कर्मचारियों को कार्य करने में आसानी हो। लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस द्वारा मार्क प्रारूप के आलावा 1970 में सीरीज मैप्स (Series maps) के लिए, 1971 में Films तथा पांडुलिपियों के लिए, 1975 में Music & Sound Recording के लिए भी विभिन्न प्रारूपों का प्रकाशन किया गया। लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस, द्वारा संबंधित विषयों के विशेषज्ञों की देख-रेख में प्रारूपों का निर्माण कराया गया। धीरे-धीरे मार्क सेवा का विस्तार होने लगा 1972 में फिल्म के लिए रिकॉडर्स का वितरण शेरू हुआ। 1973 में अनुक्रमिकों, मानचित्रों एवं फ्रेंच भाषा की पुस्तकों के लिए रिकार्डस का वितरण शुरू हुआ। 1974 ई0 तक 5 लाख अभिलेखों का वितरण किया गया।

लाभ :

1. मार्क फीतों का उपयोग ग्रंथों के चुनाव में किया जा सकता है।
2. मार्क फीतों की मदद से ग्रंथालयों में सूची पत्रक एवं मुद्रित सूची का निर्माण किया जा सकता है।
3. मार्क सेवा का ऑन लाइन सेवा के द्वारा उपयोग किया जा सकता है।
4. मार्क डेटाबेस का उपयोग ग्रंथपरक संदर्भ के उपयोग के लिए भी किया जा सकता है।
5. मार्क सेवा ग्रंथालय सहयोग में भी सहायता प्रदान करती है।
6. मार्क फाइल्स की मदद से नेशनल यूनियन कैटलॉग के विकास में भी

सुविधा मिलती है।

7. UNI MARC (यूनीमार्क) की मदद से अंतर्राष्ट्रीय ग्रंथ सूची के निर्माण में भी मदद मिलती है।

मार्क सेवा का लाभ केवल अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन जैसे देश ही नहीं, बल्कि कनाडा, फ्रांस, आस्ट्रिेलिया व दक्षिण अफ्रीका आदि देश भी उठा रहे हैं।

11.2.5 अंतर्राष्ट्रीय मार्क परियोजनायें (International MARC Projects)

1975 में RPLA परिषद् की एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न देशों के राष्ट्रीय ग्रंथालयों के निदेशकों ने हिस्सा लिया। इस सभी में निदेशकों ने मशीन सुवाच्य रूप में राष्ट्रीय ग्रंथपरक सूचनाओं के अंतर्राष्ट्रीय बिनिमय के विषय में गहन परामर्श किया, जिसे मूर्त रूप प्रदान करने हेतु 27 अक्टूबर 1975 को पेरिस में एक बैठक बुलायी गयी। इस बैठक में RPLA के यूनीवर्सल बिब्लियोग्राफिकल सेंट्रल ऑफिस एवं यूनेस्कों (UNESCO) के अतिरिक्त 12 देशों के राष्ट्रीय ग्रंथालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों ने भाग लिया। यहीं बैठक अंतर्राष्ट्रीय मार्क कार्यक्रम की स्थापना का आधार बनी। RPLA के UNIVERSAL BIBLIOGRAPHICAL CENTRE PROGRAMME के विकास के लिए IPLA द्वारा 'UNIVERSE' नामक एक कार्यकारी समूह की स्थापना हुई। जिसके सूचीकरण एवं सूचना प्रौद्योगिकी समिति द्वारा UNIMARC MANNUAL में प्रथण संस्करण का प्रकाशन 1977 ई0 में और द्वितीय संस्करण का प्रकाशन 1980 ई0 में हुआ।

लाभ :

- अन्तर्राष्ट्रीय मार्क सेवा का सर्व प्रमुख उद्देश्य पुस्तकालयों के बीच मशीन पठनीय डेटा के संचार हेतु मानक का समुच्चय करना है।
- प्रारूप में डाटा की संरचना, जो ग्रंथालयों से संबंधित हो उसका सुधार करना एवं अभिग्रहण की सुविधा प्रदान करना।
- अधिकतम पुस्तकालयों के लिए जरूरी डाटा अवयवों को शामिल करना।
- भिन्न-भिन्न कम्प्यूटरों व संबंधित उपकरणों के लिए उपयोगी प्रारूप तैयार करना।

मार्क - I परियोजना में केवल ग्रंथ-सामग्री से संबंधित सूचना को ही मशीन पठनीय डाटा के रूप में संरचण किया जाता था, लेकिन मार्क-II परियोजना में

ग्रंथपरक डाटा के विनिमय की सुविधा उपलब्ध करायी गयी। मार्क-II में मुख्य रूप से तीन क्षेत्र होते हैं :-

1. अग्रक्षेत्र (लीडर) - इस क्षेत्र में सूचना देने हेतु मूल रूप से नियंत्रित सूचना का ही उल्लेख होता है।
2. अभिलेख निर्देशिका (रिकार्ड डायरेक्टरी) - इस भाग में अभिलेख में परिवर्तनीय क्षेत्र व उसकी स्थिति को प्रदर्शित किया जाता है।
3. परिवर्तनशील क्षेत्र (वेरिएबल फील्ड) - यह प्रारूप का अंतिम भाग होता है।

US MARC की संरचना :

1. **लीडर**-लीडर अभिलेख संबंधी सामान्य सूचना प्रदान करता है। लीडर द्वारा ऐसे प्रोग्राम का निर्माण किया जाता है, जो किसी विशेष अभिलेख की पहचान करने व इसके प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया को बताता है।
2. **डायरेक्ट्री -** यह अभिलेख में विषयवस्तु के लिए दर्शिका होती है। यह अभिलेख के परिवर्तनशील नियंत्रण क्षेत्र एवं परिवर्तनशील डेटा क्षेत्रों की स्थिति को बताता है। यह इस प्रोग्राम में विशिष्ट क्षेत्रों के खोजने योग्य बनाती है, जिनकी सूचना के प्रस्तुतीकरण में जरूरत होती है। इसमें हर क्षेत्र के लिए एक संलेख होता है, जो फील्ड लेबल (टैग), इसकी लम्बाई एवं अभिलेख में पहले फील्ड के सापेक्षिक इसकी प्रारंभिक स्थिति प्रकट होती है। यह निर्देशिका एक फील्ड टरमीनेटर के साथ खत्म की जाती है।
3. **परिवर्तशील क्षेत्र** (वेरिएबल फील्ड) - इस क्षेत्र में किसी विशिष्ट अभिलेख का डेटा संग्रहित किया जाता है। निर्देशिका के बाद इस क्षेत्र में परिवर्तशील नियंत्रण व परिवर्तनशील डेटा क्षेत्र आते हैं, जिन्हें क्रमशः 001-009 और 01 x 09 x जैसी संख्याओं में प्रकट किया जाता है। निहित परिवर्त्तनीय डेटा क्षेत्र में दो तरह की विषय वस्तु निर्देश का उपयोग किया जाता है : (1) संकेतक और (2) उप क्षेत्र कोड। हर परिवर्तन डेटा फील्ड हेतु निर्देशिका में टैग होता है।

   Ex - टैग 110 मुख्य प्रविष्टि के समष्टि लेखक हेतु और टैग 250 को संस्करण हेतु रखा गया है। संकेतक किसी क्षेत्र से पूर्व आकर अतिरिक्त सूचना प्रदान करता है। सब फील्ड कोड विशिष्ट कैरेक्टर Or T के रूप में रहते हैं।

US MARC के प्रकार :

UFBD : US MARC Format For Bibliographic Data
UFAD : US MARC Format For Authority Data
UFHL : US MARC Format For Holiday & Location

उपरोक्त US MARC Format Z 39.2 ANSI (American National Standard for biblipgraphic Information Interchange) पर आधारित है, जो ISO 2709 जैसा ही है।

यूनीमार्क UNIMARC (Universal Machine Readable Catalogue)

ISO 2790 संरचना के अंतर्गत ग्रंथपरक अभिलेखों का निर्माण चार परिखंडों के अर्न्तगत द्वारा किया जाता है और अभिलेखों की इन प्रचलित संरचनाओं को रिकॉर्ड लेबल, डायरेक्ट्री, वेरिएबल डाटा फील्ड और रिकॉर्ड सेपरेटर कहा जाता है। चूंकि इन विभिन्न प्रारूपों के बीच में काफी असमानताएँ थी और राष्ट्रीय मार्क प्रणालियों द्वारा विकसित विषय वस्तु निर्देशक का उपयोग भी एक अंतर्राष्ट्रीय मानक पर आधारित नहीं था। इनमें प्रयुक्त टैग, संकेतक, सब फील्ड कोड, आकार, आइडियंटीफायर एवं डेटा ऐलीमेन्ट पहचानकर्ता आदि में प्रयुक्त भिन्न देशों के राष्ट्रीय प्रारूप में भिन्नता थी। ऐसी परिस्थिति में इफ्ला (IFLA) ने विषय वस्तु निर्दिष्टक हेतु एक अंतर्राष्ट्रीय मानक की स्थापना हेतु उत्तरदायित्व लिया। सन् 1972 में इस दिशा में कार्य हेतु एक कार्यदल का गठन हुआ, जिसने यह निष्कर्ष निकाला कि इन राष्ट्रीय प्रारूपों में काफी अंतर है, जिसके कारण प्रसूचीकरण अभ्यास में मानक का अभाव, विषय व्यवस्था व प्राधिकरण सूची में शीर्षकों में भिन्नता, भाषा में भिन्नता आदि है। जिसके कारण राष्ट्रीय ग्रंथालयों के मध्य डेटा विनिमय में बाधा आ रही है। 1973 ई0 में इसी कार्यालय द्वारा ISBD क्षेत्रों पर आधारित (सुपरमार्क) की प्रस्तावना दी, जिसे मार्क इंटरनेशनल फार्मेट (MIF) कहा गया, जो बाद में यूनामार्क कहलाया। यूनीमार्क को एक विनिमय प्रारूप के रूप में निर्मित किया गया। इसमें राष्ट्रीय प्रारूप से यूनीमार्क एवं यूनीमार्क से राष्ट्रीय प्रारूप रूपांतरण को बल मिला। यूनीमार्क का ग्रंथों व सीरियलों के अभिलेख बनाने के लिए 1977 में पहला संस्करण एवं 1980 में दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसमें कारटोग्राफिक सामग्री को भी सम्मिलित किया गया। 1982 में MARC पर उपलब्ध डेटा को यूनीमार्क में बदलने का प्रयत्न किया गया, जिसमें विभिन्न प्रभावित एजेंसियों के पाठकों के लिए दिशा निर्देश के उद्देश्य से 1983 में UNIMARC (यूनीमार्क) Hand book (हेन्डबुक) का प्रकाशन किया गया। उपरोक्त दोनों प्रलेखों को एकीकृतकर यूनीफार्म मैन्यूअल 1987 में बनाया गया। यूनीमार्क को इफ्ला U.B.C.I.M OFFICE द्वारा संपोषित किया जाता है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत हैं-

(i) विभिन्न खंडों के रूप में प्रमाणीयता,

(ii) ISBD हेतु प्रोत्साहन

(iii) ग्रंथालयों में संग्रहित विभिन्न प्रकार की सामग्रियों के प्रसूचीकरण हेतु प्रोत्साहन

(iv) सभी स्तर पर विभिन्न प्रकार की सामग्री के प्रसूचीकरण हेतु प्रोत्साहन।

साधारणतः यूनीफार्म विभिन्न प्रकार की प्रलेखीय एवं अप्रलेखीय सामग्रियों के अभिलेख हेतु विषयवस्तु निर्दिष्टक के रूप में कार्य करता है।

11.2.6 बोध प्रश्न

1. ISBD की महत्ता पर प्रकाश डालें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2. मार्क सेवा का संक्षिप्त परिचय दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

....

....

3. मार्क-।। के लाभों के बारे में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

11.3 सी0सी0 एफ0 (C.C.F.) (Common Communication Format)

C.C.F. का इतिहास एवं विकास

1974 में I.C.S.U/A.B. (International Council of Scientific Unions/ Abstracting Board) की मदद से यूनीसिस्ट रेफरेन्स मैन्युअल का प्रकाशन किया गया। इस फार्मेट का उद्देश्य द्वितीयक सूचना सेवाओं (सारकरण व अनुक्रमणीकरण) को शामिल करना और पत्र-पत्रिका के आलेखों व मोनोग्राफ के लेखों के विनिमय को सरल करने से था। विभिन्न प्रकार के ग्रंथपरक अभिलेख प्रारूपों की भिन्नता एवं आपसी सुसंगता में कमी के कारण एकरूप ग्रंथपरक सूचना विनिमय की जरूरत को बल मिला। 1978 में यूनेस्को के अंतर्गत 'जनरल इन्फॉरमेशन प्रोग्राम' (P.G.I) द्वारा एक ''इंटरनेशनल सिम्पोजियम ऑन बिब्लियोग्राफिक एक्सचेन्ज फार्मेट'' तोरमिना (सिसली) नामक जगह पर आयोजित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य वर्तमान ग्रंथपरक विनिमय प्रारूपों के मध्य अधिकतम तालमेल स्थापित करने हेतु अध्ययन करना था। आयोजन के मुख्य संस्तुति के परिणामस्वरूप कॉमन कम्यूनिकेशन फार्मेट (सी0 सी0 एफ0) को बनाने हेतु एक समूह का गठन किया गया, जिसमें कई देशों के विशेषज्ञों व प्रतिनिधियों को शामिल किया गया, जो निम्न संगठनों से संबंधित थेः

1) I.C.S.U./A.B 2) I.S.D.S.
3) IFLA, 4) I.S.O. और
5) U.N.I.B.Z.D

इस समूह द्वारा सी0सी0 एफ0 हेतु I.S.B.D. डेटा अवयवों के हर क्षेत्र को शामिल करने, प्रसूचीकरण संहिताओं का उपयोग न करने का निर्णय लिया। इस समूह ने ISO 2709 के नए संस्करण को अपनाने का निर्णय लिया। इस समूह ने C.C.F. का विकास एक विनिमय प्रारूप के रूप में करने में एक अहम भूमिका निभायी।

C.C.F. की विशेषताएँ :

- C.C.F. का प्रयोग प्रसूची पत्रकों के उत्पादन में किया जा सकता है, क्योंकि इसमें सभी आवश्यक डेटा तत्व उपस्थित है।
- यह पूर्णताः उपभोक्ता मैत्रीपूर्ण (user friendly) है।
- यह यू0 एन0 संगठनों व अंतर्राष्ट्रीय निकायों में प्रचलित प्रारूप है। इसे कई विकासशील देशों के द्वारा मशीन पठनीय ग्रंथपरक के रूप में ग्रंथपरक अभिलेखों को तैयार करने में उपयोग किया जा रहा है।
- C.C.F. मुख्य डेटा अवयव प्रदान करता है और इसमें वैकल्पिक व निजी क्षेत्रों के लिए प्रावधान है। यह उन निजी क्षेत्रों के लिए व्यापक सूची प्रदान नहीं करता है, जो किसी संस्था को महत्वपूर्ण समझे जाने वाले अमानकीय अवयवों को शामिल करने योग्य बनाते हैं।
- यह विभिन्न प्रारूपों, लिंक रिकॉर्ड एवं अभिलेखों के परिखण्डों के बीच सुसंगत है। इस प्रकार यह ग्रंथालय के समूहों एवं सारकरण/ अनुक्रमणीकरण सेवाओं में डेटा के तीव्र गति से विनिमय में सहायता करता है।
- यह किसी ग्रंथालय व ग्रंथपरक एजेंसी को डेटा के विनिमय हेतु एक प्रकार के कम्प्यूटर प्रोग्राम को उपयोग की अनुमति देता है।
- सूचना विशेषज्ञों द्वारा अनिवार्य माने जाने वाले डेटा अवयवों को लघु समुच्चय प्रदान करने की क्षमता इसमें है।
- इसमें कुछ अनिवार्य डेटा अवयव काफी लचीले होते हैं, जिन्हें भिन्न ग्रंथपरक व्यवहारों में शामिल किया जा सकता है।

इस प्रकार इस समूह द्वारा दो ग्रंथपरक अभिलेखों के बीच व उसी ग्रंथपरक

अभिलेखों में व्याप्त अवयवों के बीच संबंधों को स्पष्ट करने की विधि को विकसित किया गया। इसके अतिरिक्त अभिलेख प्रारूप की अवधारणा एवं रिकार्ड, सैगमैंट्स व फील्ड्स के बीच में संबंधों को दर्शाने की विधि को भी विकसित किया गया।

C.C.F. विभिन्न स्थापित बड़े अंतर्राष्ट्रीय विनिमय प्रारूपों के मध्य सेतु के रूप में कार्यरत है। C.C.F. उपभोक्ता समूह की पहली सभा 1980 में जिनेवा में आयोजित की गयी, जिसमें परिवर्तन की अनुशंसा की गयी। UNESCO द्वारा उपयोक्ताओं हेतु ''कार्यान्वयन टिप्पणी'' का प्रकाशन किया गया, जिसमें यह उल्लेख किया कि विभिन्न विशेषताओं को स्थानीय कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर की सीमा के अंतर्गत किस तरह कार्यान्वित किया जा सकता है एवं ग्रंथपरक डेटा तत्वों के उपयोग के बाद अतिरिक्त सूचना कैसे दी जाती है।

सी0सी0 एफ0 (C.C.F.) का उपयोग :

- यह सूचना एजेंसियों, पुस्तकालयों, सारकरण व अनुक्रमणीकरण सेवाओं, रेफरल प्रणालियों व अन्य प्रकार की सूचना एजेन्सियों के समूहों में एवं भिन्न-भिन्न रिकॉर्ड में विनिमय करने की सुविधा प्रदान करता है।
- यह विभिन्न सूचना एजेंसियों को, उनके रिकॉर्ड बनाने की प्रक्रिया से असंतृप्त रहकर प्राप्त रिकार्डों को कम्प्यूटर कार्यक्रम के केवल एक सेट द्वारा परिचालित करने की अनुमति देता है।
- यह विभिन्न एजेंसियों के खुद के ग्रंथपरक या वास्तविक डेटाबेस के लिए आधारभूत उपयोगी डेटा तत्वों की सूची प्रदान करने प्रारूप के आधार की पूर्ति करता है।

C.C.F की अभिलेख संरचना :

C.C.F. की अभिलेख संरचना ISO 2709 के अनुरूप है। इसके अभिलेख के चार भाग होता हैं-

(1) **रिकार्ड लेबल (अभिलेख पट्टी) -** यह 24 कैरेक्टर से बनता है, जो अभिलेख प्रक्रिया के मानदंड बनाता है।

(2) **डायरेक्ट्री (निर्देशिका) -** इसमें 14 कैरेक्टर होते हैं, जो इसके पाँच भाग क्रमशः टैग, फील्ड की लम्बाई, करेक्टर स्थान की पहल, सैगमेन्ट अभिज्ञानकर्ता एवं आकरेन्स अभिज्ञानकर्ता।

(3) **डाटा फील्ड (डाटा क्षेत्र) -** इसमें इन्डीकेटर, सबफील्ड, अभिज्ञानकर्ता सबफील्ड एवं फील्ड सेपरेटर होता है।

(4) **फील्ड सेपरेटर (क्षेत्र पृथक्कर्ता) -** यह सी0सी0 एफ0 अभिलेख का अंतिम करेक्टर होता है। हर ग्रंथपरक अभिलेख के लिए विवरण लेबल एक अभिलेख परिखंड (सैगमेन्ट) प्राप्त करता है। प्राथमिक वस्तु के लिए प्राथमिक परिखंड एवं अन्य के लिए द्वितीयक परिखंड में स्थान होता है। इन परिखंडों का उर्ध्वाधर संबंधों (मोनोग्राफ) एवं क्षैतिज संबंधी (सामयिक पत्रिका के आख्या में परिवर्तन) द्वारा जोड़ा जाता है।

सी0 सी0 एफ0 का अभिलेख जिन चार मुख्य भागों में मिलकर बनता है, उसकी रूपरेखा इस प्रकार है :-

1. Record Label :- हर रिकॉर्ड लेबल 24 करेक्टर की निश्चित लंबाई से शुरु होता है, जिसमें निम्न विषय वस्तुओं का समावेश होता है-

0-4. अभिलेख की लं0 (Length of Record) :- इसमें लेबिल, निर्देशिका, डेटा क्षेत्र एवं अभिलेख पृथक्कारक निहित होते हैं। एक अभिलेख में 9999 लक्षणों की अधिकतम लम्बाई हो सकती है।

5. अभिलेख की अवस्थिति (Record Status) :- यह कोड द्वारा प्रदर्शित होता है और इसमें अभिलेख की सही स्थिति का पता लगाया जाता है कि वह नया है, प्रतिस्थापित है, या विलोपित है।

6. रिक्त स्थान (Blank) :- इसका उपयोग नहीं किया जाता है।

7. ग्रंथपरक स्तर (Bibliography level) :- यह भी कोड द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, जैसे S = क्रमिक, a = अंगभूत भाग e = तैयार संग्रह मोनोग्राफ

8. रिक्त स्थान (Blank)

9. रिक्त स्थान (Blank)

10. '2' संकेतक की लम्बाई (Length of Indicator) : इसमें संकेतक के साथ अनेक क्षेत्र उपलब्ध कराये गये हैं एवं संकेतक को 2 लक्षणों की स्थिति आवश्यक होती है। जैसे - 0.1

12. '2' उपक्षेत्र अभिज्ञापक की लम्बाई (Subfield Identifier Length) : यहाँ दो लक्षणों को संकेतिक किया जाता है।

12-16 डेटाओं का मूल पता (Base Address of Data) :- एक अभिलेख में प्रथम डेटा क्षेत्र के प्रथम लक्षण के स्थान का संकेत करता है। यहाँ यह ध्यान रखना है कि प्रथम डेटा, अभिलेख की अंतिम निर्देशिका से शुरू होता है।

17-19. रिक्त स्थान (Blank)

20. '4' निर्देशिका में डेटा क्षेत्र की लम्बाई।

21. '5' आरंभिक लक्षणों के अन्तर्वस्तु की लम्बाई।

22. '2' निर्देशिका में प्रलेख संलेख के परिभाषित अनुच्छेद कार्यान्वयन की लंबाई।

23. रिक्त स्थान (Blank)

2. निर्देशिका (Directory)

इसमें 14 करेक्टर की लंबाई एवं पाँच भाग होते हैं।

(1) टैग (Tag) → 3 करेक्टर

(2) डेटा क्षेत्र की लंबाई (Length of data field) → 4 करेक्टर

(3) आरंभिक लक्षण की स्थिति (Position of the starting character) → 5 करेक्टर

(4) परिखंड अभिज्ञापक (Segment Identifier) → 4 करेक्टर

(5) प्रकटन अभिज्ञापक (Occurance Identifier) → 2 करेक्टर

11.3.1 बोध प्रश्न :

1. सी0 सी0 एफ0 की आवश्यकता के कारणों का उल्लेख करें-

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2. सी0 सी0 एफ0 के अभिलेख संरचना के विभिन्न स्तरों का उल्लेख करें-

....
....
....
....
....
....
....
....
....

11.4 सारांश

इस इकाई में हम रिकार्ड प्रारूप के मानकीकृत स्वरूपों ISBD, MARC एवं C.C.F. के उद्भव, विकास, उद्देश्य, आवश्यकता, उपयोग, विशेषता एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य संरचना से परिचित हुए। सूचनाओं के सुगम एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय को सरल बनाने में इन मानकों की भूमिका व महत्ता से भी हम परिचित हुए और विभिन्न देशों के योगदान एवं उनकी कोशिशों का उल्लेख भी इस ईकाई ने निहित है।

11.5 अभ्यास कार्य :

1. एक ग्रंथपरक विवरण के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानकीकृत रिकार्ड आरुप की आवश्यकता क्यों है? इसका स्पष्टीकरण दे।
2. मार्क के विभिन्न देशों में प्रचलित स्वरूपों का वर्णन करें।
3. सी0 सी0 एफ0 की उपयोगिता पर एक लेख लिखे।
4. सी0सी0एफ0 के उद्भव एवं विकास का वर्णन करें।
5. यूनीमार्क के विषय में जानकारी दें।
6. आई0 एस0 बी0 डी0 के उद्देश्य एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
7. मार्क-।। के अभिलक्षण बतलावें?
8. आई0 एस0 बी0 डी0 के विभिन्न प्रकारों की जानकारी दें।
9. अन्तर्राष्ट्रीय मार्क परियोजना पर एक लेख लिखें।

11.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

शर्मा, बी0 के0 तथा ठाकुर, यू0 एम0 : पुस्तकालय, सूचना विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी विवेचनात्मक अध्ययन

त्रिपाठी, वी0 एन0 एवं दुबे, टी0 एन0- पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान : एक परिदृश्य

शर्मा, एस0 के0 पाण्डेय : सरलीकृत पुस्तकालय सूचीकरण सिद्धान्त

रंगनाथन, एस0 आर0 : वर्गीकृत सूची संहिता

त्रिपाठी, एस0 एम0 : आधुनिक सूचीकरण

कुमार गिरिजा और कुमार, कृष्ण : सूचीकरण के सिद्धान्त

इकाई -12 : आई.एस.बी.एन., आई.एस.एस.एन., आई.एस.ओः 2709, आई.एस.ओ. : Z 39.50

इकाई की रूपरेखा

12.0 विषय प्रवेश

12.1 उद्देश्य

12.2 आई0 एस0 बी0 एन0
- अर्थ
- लाभ
- कार्य एवं क्षेत्र
- संरचना
- अनुप्रयोग
- इलेक्ट्रोनिक प्रकाशन के लिए
- मुद्रण
- राष्ट्रीय एजेन्सी
- प्रकाशक
- पुस्तकालयों का उपयोग

12.3 आई0 एस0 एस0 एन0
- अर्थ
- आवश्यकता
- प्रक्रिया एवं विधि

12.4 आई0 एस0 ओ0 : 2709
- अर्थ एवं संरचना
- गुण एवं समस्या
- प्रक्रिया

12.5 आई0 एवं ओ0:Z 39,50
- अर्थ एवं इतिहास
- आधुनिकीकरण

12.6 सारांश

12.7 इकाई से सम्बन्धित प्रश्न

12.8 अतिलघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 विषय प्रवेश

आई.एस.बी.एन. (ISBN), आई.एस.एस.एन.(ISSN), आई.एस.ओ.:2709, और आई.एस.ओ.: Z 39.50 आदि विषय आधुनिक युग में सूचना की कम्प्यूटर द्वारा खोज एवं पुनर्प्राप्ति के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। इन सभी मानकों में लाइब्रेरी ऑफ कॉग्रेस द्वारा स्थापित प्रयोग को ही स्वीकार किया गया है। वर्तमान समय में यह एक प्रमुख समस्या थी। पुस्तकालय एवं सूचना केन्द्रों के आधुनिकीकरण के लिए यह अद्यतन एवं नवीनतम प्रयोग हैं जिन्हें सभी मानक संस्थाओं द्वारा अपनाया जाता है। भविष्य में इसका महत्व अवर्णनीय होगा। अतः इसके विषय में प्रारंभ में ही विद्यार्थियों को प्रारंभिक जानकारी आवश्यक है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत हम निम्नलिखित जानकारी प्राप्त करेंगे-

→ आई.एस.बी.एन. के विभिन्न पहलुओं से परिचय।

→ आई.एस.एस.एन. के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में ज्ञानार्जन।

→ आई.एस.ओ. 2709 से सम्बन्धित सभी तत्वों की जानकारी।

→ आई.एस.ओ. Z 39.50 को हम कैसे प्रयोग में लाए, उस संबंध में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.2 आई. एस. बी. एन. (ISBN)

- **अर्थ**

आई.एस.बी.एन. का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक संख्या है। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुस्तक का एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक के लिए प्रतीक संख्या है जो पुस्तक विशेष के लिए प्रस्तावित की जाती है। इसमें करीब तेरह अंकों की संख्या अभी तक निश्चित की गई। यह मशीन रूप में पुस्तक के लिये सलाहकार संहिता है। इस प्रणाली में इलेक्ट्रानिक दृष्टि अपनाई गई है। यह प्रमुख रूप से विभिन्न प्रकाशकों को विभिन्न भागों में विभाजित कर पुस्तकों को तेजी से व्यापारिक दृष्टिकोण से अग्रसर करता है।

यह पुस्तक व्यापार में आवश्यक आधुनिक वितरण और युक्तिकरण का अवसर प्रस्तुत करता है यह प्रत्येक पुस्तक के लिए अलग-अलग प्रस्तावित की जाती है।

भारत में पुस्तक उद्योग का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पुस्तक व्यवसाय में लेखकों, सम्पादकों, मुद्रकों, पुस्तक विक्रेताओं और वितरकों के बीच एक व्यापक श्रृंखला स्थापित हो गयी है और विश्व में बहुभाषी पुस्तकों प्रकाशित करने में शीर्ष स्थान पा चुका है। भारत 6 अगस्त 2003 को विश्व का सबसे बड़ा पुस्तक उत्पादक देश और अंग्रेजी की पुस्तकों के प्रकाशन में अमेरिका और ब्रिटेन के बाद तीसरे स्थान पर है। भारत में यह प्रणाली सन् 1985 ई0 से एक राष्ट्रीय एजेन्सी राजाराम मोहन राय एडवायजर एजेन्सी को सौंपी गयी है। इसे लोकप्रिय बनाने में भारत में अधिकतम पंजीकरण की प्राप्ति प्रकाशकों / लेखकों और अन्य सरकारी, अर्द्ध सरकारी संगठनों / संस्थानों, जनसंचार माध्यमों, प्रकाशकों आदि कार्यक्रमों के माध्यम से प्रचार-प्रसार किया गया है। भारत में राष्ट्रीय एजेन्सी का यह दायित्व है कि वह भारतीय प्रकाशकों, लेखकों, विश्वविद्यालयों, संस्थानों और सरकारी विभागों को आवेदन-पत्र पंजीकरण के लिए उपलब्ध कराएँ। आवेदन-पत्र व्यक्तिगत रुप से या डाक द्वारा निम्नलिखित एजेन्सी से प्राप्त की जा सकती है। राजाराम मोहन राय राष्ट्रीय एडवाजर एजेन्सी, कर्जन सड़क, बैरक, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली-110001।

- **लाभ**

(i) अन्तर्राष्ट्रीय पहचान के लिए लम्बे समय तक सूचना के संबंध वर्णनात्मक रिकॉर्ड उपलब्ध कराता है।

(ii) आई.एस.बी.एन. के कारण समय की बचत के साथ ही नकल करना भी कठिन हुआ है।

(iii) सूचीकरण के आवश्यक विवरण ग्रंथ-इन-प्रिन्ट होने के चलते पुस्तकों की सूचनाएँ आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

(iv) व्यापारिक सूचना डाटाबेसों के चलते ग्रंथसूची निर्देशिका अद्यतन रहता है।

(v) वर्गीकरण और ग्रंथों के वितरण की प्रक्रिया भी शीघ्र एवं कुशल ढंग से निष्पादित की जा सकती है।

(vi) इसके द्वारा क्रय-विक्रय का डाटा सुगमतापूर्वक बनाया जा सकता है।

(vii) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-विनिमय के द्वारा पुस्तकों के आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

- **कार्य एवं क्षेत्र**

विश्व भर के करीब 160 देशों द्वारा अपनाई गई अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मानक संख्या बहुत ही छोटी और स्पष्ट है। इसके कारण पुस्तकालयों का सूचना प्रबंधन का कार्य महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि ग्रंथ उत्पादन, वितरण, क्रय-विक्रय विश्लेषण तथा पुस्तक व्यापार में सूचना के आँकड़ों का भंडारण होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मानक संख्या मोनाग्राफिक प्रकाशन और उससे संबंधित उत्पादन के लिए भी अलग से देने का प्रावधान किया गया है। जैसे प्रकाशित पुस्तकें, पम्पलेट, ब्रेल प्रकाशन, अद्यतन होने वाले प्रकाशन, मानचित्र, शिक्षाप्रद फिल्म, वीडियो, सी.डी., डी.वी.डी. इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन, माइक्रोफिल्म प्रकाशन, शिक्षा संबंधी साफ्टवेयर तथा मिश्रित मीडिया प्रकाशन। कुछ सामग्रियों में आई.एस.बी.एन. नहीं दिया जाता है, जैसे-सार प्रविष्टि, विज्ञापन सामग्री, प्रकाशित, संगीत, आर्ट-प्रिन्ट, व्यक्तिगत प्रलेख, ग्रिटिंग कार्ड, संगीत रिकॉर्डिंग, इलेक्ट्रॉनिक पत्राचार एवं गेम्स आदि।

- **संरचना**

1 जनवरी, 2007 से आई.एस.बी.एन. में तेरह अंकों का प्रयोग किया गया है। ये तेरह अंक पाँच तत्वों में विभाजित है जिसमें प्रथम तीन लम्बाई (अंक) और अंतिम स्थाई एक लम्बाई है। इन तत्वों को पढ़ने के लिए हाइफन या रिक्त स्थान से अलग किया जाता है।

ISBN 978 - 81-8000-022-5

या

ISBN 978 – 81—8000–022–5

जिसमें पहले से निर्धारित तत्व 978 है तथा 81 इंडिया के संदर्भ में है जिसे किसी देश का कोई भी कह सकता है। इसके अतिरिक्त 8 किसी विशेष प्रकाशक का पूर्व निर्धारित संदर्भ है। 000 किसी विशेष आख्या (Title) के संदर्भ में व्यवहरित होता है। पाँचवाँ तत्व आई.एस.बी.एन. जाँच संख्या है।

- **अनुप्रयोग :**

प्रत्येक शीर्षक या शीर्षक संस्करण में आई.एस.बी.एन. अवश्य प्रदान की जानी चाहिए। संशोधित संस्करण में भी नए आई.एस.बी.एन. की आवश्यकता होती है। लेकिन मूल्य वृद्धि में नई संख्या नहीं दी जाती है। विभिन्न प्रकाशकों द्वारा पुनः प्रकाशित पुस्तक के अंश या भाग में नई संख्या देना जरूरी है। इसके अतिरिक्त पेपर

आई.एस.बी.एन., आई.एस.एस.एन., आई.एस.ओ.2709, Z39.50

बैक, ब्रेल, ऑन लाइन इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन के लिए अलग आई.एस.बी.एन. दिया जाता है।

बहुखंडीय पुस्तकों के लिए अगर अलग-अलग खंड बिक्री के लिए प्रकाशित की गई है तो उसमें भी अलग संख्या दी जाएगी। इससे खंडों को बदलने तथा उपयोग करने में सुविधा होती है। प्रकाशक द्वारा पूर्व प्रकाशित तथा प्रथम पुर्नमुद्रित के लिए भी आई.एस.बी.एन. देने का प्रावधान है। किसी भी परिस्थिति में उपयोग किये हुए आई.एस.बी.एन. को पुनः उपयोग में नहीं लाया जाता है।

- **इलेक्ट्रानिक प्रकाशन के लिए**

अन्य प्रकाशनों की तरह सी.डी.रोम तथा फ्लॉपी डिस्क को भी प्रकाशित सामग्री ही समझा जाता है। किसी भी इन्टरनेट पर पाठ्य पुस्तक पर यह नम्बर देने का प्रावधान है। यानि ऑनलाइन प्रकाशन के लिए भी यह नम्बर दिया जाता है। केवल किसी प्रकाशन के अंश को जो पूर्व में मुख्य प्रकाशन से नम्बर से अंकित है उसे छोड़ दिया जाता है। अगर ऑनलाइन पब्लिकेशन विभिन्न ऑपरेटिंग सिस्टम में उपलब्ध है तो प्रत्येक संस्करण में एक अलग आई.एस.बी.एन. नम्बर दिये जाने का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त सॉफ्टवेयर उत्पाद के लिए भी आई.एस.बी.एन. नम्बर दिया जाता है।

- **मुद्रण**

आई0एस0बी0एन0 नम्बर आख्या पृष्ठ के पश्चभाग में अंकित किया जाता है। कॉपी राइट पृष्ठ के अतिरिक्त पुस्तक के बाहरी आवरण पृष्ठ के नीचे भाग में आई.एस.बी.एन. अंकित किया जाता है। अगर प्रकाशन कैसेट, डिस्केट (Diskette) तथा सी.डी. रोम आदि हो तो उसके सपाट स्तर पर यह संख्या लिखा जा सकता है।

आई.एस.बी.एन. का अंकन बार कोड के रूप में भी किया जाता है। यह इन्टरनेशनल (EAN), यूनीफॉर्म कोड काउन्सिल तथा आई.एस.बी.एन. आदि एजेन्सियों के द्वारा तेरह बार कोड में भी दिया जाता है। इससे इसकी विश्व भर में पहचान हो जाती है।

- **राष्ट्रीय एजेन्सी**

प्रलेखों की अधिक संख्या के कारण उसके नियंत्रण हेतु मानकीकरण की आवश्यकता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुभव की गयी थी। अन्तर्राष्ट्रीय सहमति इसके लिए आवश्यक थी। इस संबंध में ब्रिटिश ग्रंथ व्यवसाय (ब्रिटिश बुक ट्रेड) का प्रयास भी उल्लेखनीय है। प्रख्यात पुस्तक व्यवसायियों की आवश्यकता थी कि पुस्तकों की संख्यात्मक प्रणाली उनके अनेक कार्यों जैसे-बीजक बनाने (Billing), भंडार नियंत्रण,

रॉयल्टी लेखा, संग्रहण व्यवस्था, आयात निर्यात आदि को सुगम बना देगी। इससे न केवल प्रकाशको/पुस्तक विक्रेताओं का ही कार्य आसान होगा वरन् पुस्तकालयों एवं सूचना केन्द्रों में भी आसानी होगी। 1967 ई0 में ब्रिटेन द्वारा सर्वप्रथम एक संख्यात्मक प्रणाली को विकसित किया गया जिसका नाम स्टैण्डर्ड बुक नम्बर (Standard Book Number : SBN) कहा गया था। इसकी गुणवत्ता को देखते हुए प्रणाली को ब्रिटेन की मानकीकरण सस्था ने मान्यता दे दी। फलस्वरूप सन् 1971 ई0 में ग्रंथ सख्या निर्धारण मानक का प्रकाशन हुआ। एस.बी.एन (Standard Book Number : SBN) द्वारा मानक ग्रंथ संख्या का उपयोग सन् 1969 ई0 से प्रारंभ कर दिया गया था। इस संख्या के लाभ के कारण कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, डेनमार्क, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड आदि देशों ने भी इस संख्या पद्धति का अनुसरण किया। अमेरीका में भी मानक पुस्तक संख्या का विकास ब्रिटेन के मानक पुस्तक संख्या के साथ ही किया गया। अनेक देशों में ब्रिटिश पुस्तक मानक संख्या को अन्तर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक संख्या (ISBN) के रूप में अपनाया गया। इसी प्रकार पत्रिकाओं, सामयिकियों के लिए भी अलग मानक संख्या अपनाया गया।

भारत में प्रकाशकों द्वारा इसका उपयोग बहुतायत रूप में किया जाने लगा है। इन कार्य के लिए भारत सरकार का ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैन्डर्ड (BIS) द्वारा प्रयास किया जाता है।

- **प्रकाशक :**

किसी भी प्रकाशक द्वारा यह पहचान नम्बर देने की जिम्मेदारी है। प्रकाशक ग्रुप एजेन्सी से अनुरोध कर अपना पहचान प्राप्त कर सकता है। राष्ट्रीय संस्था द्वारा प्रकाशक का नम्बर निश्चित किया जाता है। यह प्रकाशक के कार्य की जाँच करके दिया जाता है। इस संबंध में प्रकाशक को उत्साहित भी किया जाता है कि वे प्रत्येक आख्या में इस संख्या का उपयोग करे तथा निर्देश राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आई.एस. बी.एन. संस्थाओं से प्राप्त करें।

प्रकाशक द्वारा इसका उपयोग निम्नलिखित कार्यों के लिए किया जाता है-

(i) मुद्रक को पांडुलिपि में यह पहचान नम्बर दिया जाता है।

(ii) प्रकाशक के सूचीकरण में विज्ञापन के लिए यह पहचान नम्बर दिया जाता है।

(iii) भंडार नियंत्रण के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

(iv) कॉपी राइट प्रबंधन के लिए भी यह उपयोगी है।

(v) रॉयल्टी के प्रबंधन में भी यह सहायक है।

आई.एस.बी.एन.,
आई.एस.एस.एन.,
आई.एस.ओ.2709,
Z39.50

(vi) आदेश की प्रक्रिया के लिए भी प्रकाशक द्वारा इसका उपयोग किया जाता है।

(vii) लेखा-जोखा और बिल बनाने में भी इसका उपयोग होता है।

(viii) बिक्री डाटा और उत्पाद सांख्यिकी का भी नियंत्रण इसके द्वारा किया जाता है।

(ix) इसके अतिरिक्त वापसी में भी प्रकाशक द्वारा यह उपयोगी है।

- **पुस्तकालयों में उपयोग :**

आई.एस.बी.एन. का प्रयोग पुस्तकालयों में निम्नांकित कार्य के लिए किया जाता है :-

(i) थोक विक्रेता या प्रकाशक को आदेश देने में,

(ii) भंडार नियंत्रण के लिए,

(iii) लेखा-जोखा तथा बिल के लिए,

(iv) पुर्नजिल्दसाजी प्रक्रिया के लिए,

(v) आदान-प्रदान सांख्यिकी के लिए,

(vi) राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के लिए

(vii) विस्तृत पता खोजने के लिए।

12.3 आई.एस.एस.एन. (ISSN)

- **अर्थ**

आई.एस.एस.एन. (ISSN) अन्तर्राष्ट्रीय मानक धारावाहिक संख्या (International Standard Serial Number) वह संख्या है जो धारावाहिक को पहचान प्रदान करता है। यह अंकों का एक कोड है जो आठ अंकों से बना है जिसका अंतिम अंक नियंत्रित करता है। धारावाहिक प्रकाशन प्रकाशित एवं अप्रकाशित कोई भी सामग्री हो सकती है जो साधारणतः संख्याओं या तिथि के अनुसार प्रकाशित होती है। धारावाहिक के संबंध में यह कहा जा सकता है इसका प्रकाशन अनिश्चित काल के लिए होता है। धारावाहिक में पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, वार्षिकी, प्रतिवेदन, निर्देशिका, जर्नल, कार्यवाही, संस्थाओं के कार्यकलाप तथा मोनोग्राफ आदि शामिल होते हैं।

विश्व भर में इसे पहचान चिन्ह के रूप में प्रकाशको, आपूर्तिकर्ताओं, पुस्तकालयों, सूचनाकेन्द्रों, बारकोडिग प्रणाली तथा संघ सूची आदि के लिए उपयोग किया जाता है। धारावाहिक का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार तथा महत्व काफी तेजी से बढ़ जाता है।

तथा स्वयं यह अन्तर्राष्ट्रीय धारावाहिक निर्देशिका के डाटाबेस में सम्मिलित हो जाता है।

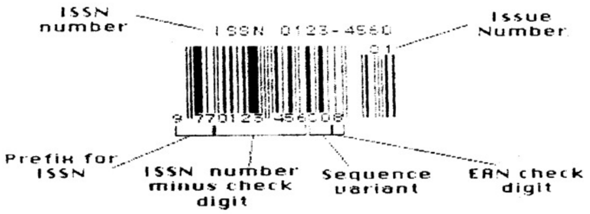

आई.एस.एन.एन. अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र का मुख्यालय पेरिस में है जो नेटवर्क के द्वारा फैला हुआ है। भारत में प्रकाशित होने वाले धारावाहिकों के लिए राष्ट्रीय विज्ञान पुस्तकालय (NSL) राष्ट्रीय केन्द्र है। जो भारत में प्रकाशित धारावाहिकों को आई.एस.एस.एन. प्रदान करता है।

- **आवश्यकता**

आई.एस.एस.एन. के द्वारा धारावाहिकों को अन्य से अलग पहचान मिलती है। यह पुस्तकालय एवं प्रशासकों को जिन्हें बहुत से धारावाहिकों को व्यवस्थित करना पड़ता है शीघ्र और सरलतापूर्वक शीर्षक या आख्या पहचानने में सहायता करता है। अन्तर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक संख्या के अनुरूप इसमें प्रारंभ में देश और प्रकाशक का चिन्ह नहीं दिया जाता है। पेरिस के अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र द्वारा विश्व में इसके साठ केन्द्र स्थापित किये गये है। देश के राष्ट्रीय केन्द्र द्वारा उस देश से प्रकाशित धारावाहिकों को आई.एस.एस.एन. संख्या प्रदान की जाती है। जिस देशों में राष्ट्रीय केन्द्र नहीं है वे अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र से यह संख्या प्राप्त करते हैं।

- **प्रक्रिया एवं विधि :**

प्रकाशक, समयाविधि, बाहरी स्वरूप, संस्करण तथा प्रकाशन स्थान प्रायः धारावाहिकों का बदलते रहता है लेकिन इससे आई.एस.एस.एन. संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अगर आख्या या शीर्षक बदलता है तो पुनः नया आई.एस.एस.एन. संख्या दी जाती है। प्रकाशक द्वारा यह संख्या प्राप्त करने के लिए एक आवेदन-पत्र धारावाहिक के एक नमूने की प्रति या बाहरी आवरण की छायाप्रति या आख्या पृष्ठ भेजा जाता है। उपरोक्त प्रमाण नहीं रहने पर प्रकाशक धारावाहिक के संबंध में अन्य सूचनाएँ देकर भी आवेदन दे सकता है। आई.एस.एस.एन. संख्या प्राप्त करने के लिए अथवा उपयोग में लाने के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता है। प्रकाशक द्वारा अगर

शीर्षक या आख्या का नाम बदलने की आवश्यकता होती है तो उसे एक माह पूर्व से नए आई.एस.एस.एन. संख्या के लिए आवेदन-पत्र देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं, क्षेत्रों तथा भौतिक संस्करणों (मुद्रित या इलेक्ट्रानिक) के लिए एक अलग संख्या प्रदान की जाती है।

प्रकाशित धारावाहिक में इसका मुद्रण बाहरी आवरण के दाहिने तरफ ऊपर के किनारे में की जाती है और भी दूसरे स्थान पर जैसे स्वत्व अधिकार (Copy Right) या प्रकाशक के स्थान आदि जगह पर भी दिया जा सकता है। अप्रकाशित होने वाले सामग्री में आख्या दृश्य और गृह पृष्ठ तथा डिस्क के ऊपर इसे अंकित किया जा सकता है। अगर प्रकाशन में दोनों संख्या आई.एस.एस.एन. और आई.एस.बी.एन. हो तो अंकित करना होता है। प्रत्येक अंक की प्रति पंजीयन के लिए आवश्यक नहीं है बल्कि प्रथम प्रति ही आवश्यक है दोनों संख्या एक प्रकाशन में इसलिए होती है कि कोई-कोई पुस्तकमाला के रूप में वार्षिकी तथा द्विवार्षिकी प्रकाशित होती है। इस संख्या से विशेष वर्ष के विशेष पुस्तक की पहचान प्राप्त होती है। इसका उपयोग बारकोड के द्वारा भी किया जाता है।

- **आई.एस.एस.एन. संख्या निम्नलिखित तीन धारावाहिक प्रकाशनों पर दी जाती है-**
  - (i) किसी नए धारावाहिक प्रकाशन जिसे आई.एस.एस.एन. सख्या प्रदान नहीं की गई है।
  - (ii) कोई वर्त्तमान धारावाहिक प्रकाशन जिसे आई.एस.एस.एन. संख्या प्रदान नहीं की गई है।
  - (iii) धारावाहिक के नाम परिवर्तन पर जिसके पुराने नाम पर आई.एस.एस.एन. संख्या दी हुई है।

भारत में इसे प्राप्त करने के लिए बेवसाइट (www.niscair.res.in) से डाटासीट भर कर नए धारावाहिक के नमूने की प्रति भेज कर प्राप्त किया जा सकता है।

12.4 आई.एस.ओ.: 2709

कई देशों के मार्क जैसे यू0एस0मार्क एवं यू0 के0 मार्क के विकसित प्रारूप में अन्तर होने के कारण मानकीकरण आवश्यक हो गया तथा अमेरीकन नेशनल स्टैण्डर्ड इन्सटीट्यूशन द्वारा आई0एस0ओ0 के लिए प्रयास किया गया। आई0एस0ओ0 2709 का प्रकाशन अनेक प्रकार के सुधार के बाद सर्वप्रथम 1973 ई0 में हुआ था तथा सन् 1981 ई0 में ई0 में इसका द्वितीय संस्करण भी निकाला गया। आई0एस0ओ0 2709

ग्रंथ संबंधी सूचना विनिमय के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय मानक के रूप में स्थापित किया गया है तथा यह अभिलेख में मैगनेटिव टेप पर ही एल0सी0मार्क में विनिमय के लिए किया गया। इसका संरचना इस प्रकार है-

(i) अभिलेख चिन्ह

(ii) निर्देशिका

(iii) डाटा का क्षेत्र

(iv) पृथक अभिलेख

अभिलेख चिन्ह 24 अक्षर का होता है। यह अभिलेख का वह भाग है जिसकी लम्बाई निश्चित है। इसके अन्तर्गत लम्बाई के अलावा डाटा का पता भी रहता है। इसका डाटा तत्व यह भी इंगित करता है कि कितने अक्षर उपयोग में लाए गए हैं। निर्देशिका के प्रवेश के चार भाग है तथा यह नौ अक्षरों से अधिक लम्बाई नहीं होती है। डाटा का क्षेत्र अभिलेख के सभी क्षेत्रों एवं डाटा के उपक्षेत्रों सहित रहता है। पृथक अभिलेख एकल अक्षर (Single Character) है।

- **गुण एवं समस्या**

मैगनेटिव टेप पर ग्रंथपरक सूचना विनिमय हेतु आई0एस0ओ0 2709 अन्तर्राष्ट्रीय मानक है। जिससे निम्नलिखित लाभ है-

(i) यह बहुत ही बड़ी संख्या में डाटा तत्व प्रदान करता है जो सूचना समाज के सभी वर्गों द्वारा पहचाना जाता है तथा किसी भी सामग्री की पहचान बनाता है।

(ii) इसका डाटा तत्व बहुत ही लचीलापन गुण रखता है जिसके कारण कई प्रकार के प्रायोगिक स्वरूप भी इसमें समा जाते हैं।

(iii) यह कई वैकल्पिक डाटा तत्व प्रदान करता है जो कई संस्थाओं के अभिलेख के लिए व्यवहार में लाया जाता है।

(iv) यह एक प्रकार के अभिलेख के विभिन्न भागों के बीच तथा डाटा तत्व के बीच संबंध स्थापित कराता है तथा समरूपता प्रदान करता है।

भारत के राष्ट्रीय केन्द्र कई प्रकार के डाटावेस जैसे - बायोसीस (BIOSIS), इन्सपैक (INSPEC), मैथसी (MATHSCI) आदि से ग्रंथपरक अभिलेख क्रय करता है। यह आई एस.ओ.2709 स्वरूप में प्राप्त कर अनुक्रमणिकरण तथा पुर्नप्राप्ति के उपयोग में लाया जाता है। यह योजना केवल सामायिक अभिलेख के वर्तमान डाटा के लिए ही कार्य करती है।

आई.एस.बी.एन.,
आई.एस.एस.एन.,
आई.एस.ओ.2709,
Z39.50

- **प्रक्रिया**

आई.एस.ओ. 2709 के प्रारूप को मूल फाइल से बदलना एक कठिन और समय लगने वाला कार्य है। इसका मानक 'C' प्रोग्रामिंग भाषा का उपयोग कर मानक स्थापित किया जाता है। मूल फाइल से मानक स्थापित करने में निम्नलिखित चरण अपनाए जाते हैं -

(i) टैग एक ही अक्षर स्थान से प्रत्येक अभिलेख के इनपुट (Input File) फाइल में प्रारंभ किया जाता है।

(ii) यह कार्य तीन अंकों में समाहित रहता है अतः एकल या दो अंक को तीन अंकों में बढ़ाना चाहिए। जैसे-001, 020 आदि।

(iii) प्रत्येक अभिलेख की इनपुट फाइल में सभी टैगों का डाटा एक स्थान से प्रारंभ होना चाहिए। यह पांचवे कॉलम से प्रारंभ होता है।

(iv) डाटा एक पंक्ति से अधिक भी बढ़ सकता है। लेकिन उसी लाइन में प्रारंभ होना चाहिये। उदाहरण स्वरूप अगर प्रत्येक पंक्ति में पांचवे कॉलम से प्रारंभ होता है तो पुनः पाँचवे कॉलम से ही प्रारंभ होगा।

(v) प्रत्येक अभिलेख दो स्थान पूर्व (##) चिन्ह से समाप्त होता है।

यह कार्यक्रम केवल वर्तमान विषय डाटा के लिए कार्य करता है। यह साधारण होना चाहिऐ जिससे विभिन्न डाटा देशों से अभिलेख को बदल सकता है तथा यह फाइल के स्वरूप "TXJ2ISO.EXE" के प्रोग्राम से आवश्यक होता है। इस प्रोग्राम में दिये हुए अभिलेख को आई.एस.ओ. 2709 के स्वरूप में उपयोगकर्त्ताओं के लिए बदल दिया जाता है जिससे CDS/ISIS के डाटाबेस मैनेजमेन्ट सिस्टम में अभिलेख का उपयोग हो सकता है।

आई.एस.ओ. 2709 के अभिलेख संरचना को निम्नांकित रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। यह (C.C.F.) के अनुरूप भी है। इनको चार भागों में रखा जाता है :-

(i) **रिकॉर्ड लेबल :** यह 24 अक्षर से बनता है जो अभिलेख प्रक्रिया के मानदंड बनाता है।

(ii) **निर्देशका :** इसमें 14 अक्षर होते हैं जो इसके पाँच भाग क्रमशः टैग, फील्ड की लम्बाई, अक्षर स्थान की पहल, सैगमेन्ट अभिज्ञानकर्त्ता, एवं अकरेन्स अभिज्ञानकर्त्ता।

(iii) **डाटा क्षेत्र :** इसमें सबफील्ड, इन्डीकेटर, सबफील्ड अभिज्ञानकर्ता एवं फील्ड सेपेरेटर होता है।

(iv) फील्ड सेपरेटर : यह C.C.F. अभिलेख का अंतिम अक्षर होता है। प्रत्येक ग्रंथपरक अभिलेख के लिए विवरण लेबल एक अभिलेख परिखंड प्राप्त करता है। प्राथमिक वस्तु के लिए प्राथमिक परिखंड एवं अन्य के लिए द्वितीयक परिखंड में स्थान प्राप्त होता है। इन परिखण्डों का मोनोग्राफी संबंधी एवं क्षैतिज संबंधी (सामयिक पत्रिका) शीर्षक में परिवर्तन द्वारा जोड़ा जाता है।

12.5 आई.एस.ओ.: Z 39.50 (ISO : Z 39.50

- **अर्थ एवं इतिहास**

यह दूर से कम्प्यूटर डाटाबेस से जानकारी तथा खोज के लिए एक ग्राहक प्रोटोकॉल है। इसका मानक **लाइब्रेरी ऑफ काँग्रेस** में अनुरक्षित है।

Z 39.50 व्यापक रूप से पुस्तकालय के वातावरण में उपयोग किया जाता है तथा सामान्यतः एकीकृत पुस्तकालय प्रणालियों और व्यक्तिगत संदर्भ ग्रंथसूची सॉफ्टवेयर में शामिल किया जाता है। यह अन्तर पुस्तकालय ऋण के लिए प्रश्नों के साथ लागू किया जाता है। Z 39.50 प्रोटोकॉल पर कार्य सर्वप्रथम 1970 ई0 में प्रारंभ हुआ और 1988 में कई संस्करण बनाए गए पुनः 1992-95 ई0 में यह जिज्ञासा भाषा में अर्थ भाषा पर आधारित किया गया है।

Z 39.50 खोज, पुनर्प्राप्ति सहित कार्यों को एक साथ करने का समर्थन करता है। संबंध, स्थिति, संरचना और पूर्णतः आदि हेतु Z 39.50 प्रोटोकॉल के वाक्य विन्यास बहुत जटिल प्रश्नों के लिए अनुमति प्रदान करता है। इसके वाक्य विन्यास डाटाबेस संरचना में अंतरनिहित और सारयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई एक लेखक खोज सर्बर को नक्शा बनाने के लिए निर्धारित करता है तो यह अनुक्रमणिका खोज के लिए अनुमति देता है। एक ही प्रश्न के लिए दूसरे सर्बर में परिणाम व्यापक रूप में भिन्न हो सकता है। एक सर्बर, एक लेखक सूचीकांक हो सकते हैं तथा एक और व्यक्तिगत नाम की सूची का उपयोग किया जा सकता है। इसमें कई प्रकार के सुधार 1999 में इग्लैण्ड के एक समूह द्वारा किया गया है। इसके बाद कनाडा के अभिलेखागार में इसके परिदृश्य में कई सुधार किये गये हैं।

- **आधुनिकीकरण :**

Z 39.50 एक पूर्व वेब (Web) प्रौद्योगिकी है तथा विभिन्न कार्य समूहों द्वारा आधुनिक वातावरण में इसे अद्यतन बनाने का प्रयास किया जा रहा है। सबसे महत्वपूर्ण जुड़वा प्रोटोकॉल SRU/SRW जो Z 39.50 संचार प्रोटोकॉल है। दोनों

आई.एस.बी.एन.,
आई.एस.एस.एन.,
आई.एस.ओ.2709,
Z39.50

खोजों के परिणामों को XML के रूप में किये जाने की उम्मीद है। उपर्युक्त परियोजनाओं में मूल Z 39.50 प्रोटोकॉल, पुस्तकालय साफ्टवेयर वेब सेवा छोटे बाजार की अनुमति से विकास करने वाले के लिए विकसित उपकरणों से लाभ पाना भी एक बाधा है। जिसे दूर करने का प्रयास जारी है।

12.6 सारांश

उपर्युक्त सभी तथ्यों के विवेचनोपरान्त यह कहा जा सकता है कि पुस्तकालय एवं सूचना केन्द्रों के लिए ये मानक अति महत्वपूर्ण है। इस अध्याय से हमें यह पता चलता है कि किसी भी पुस्तक के लिए आई.एस.बी.एन. संख्या कितनी महत्वपूर्ण है। आई.एस.बी.एन. संख्या रहित कोई भी पुस्तक स्टैन्डर्ड नहीं मानी जाती है। आई.एस.बी.एन. संख्या वर्त्तमान समय में 13 अंकों की होती है। आई.एस.एस.एन. संख्या धारावाहिकों के लिए प्रयुक्त होती है। इससे यह पता चलता है कि धारावाहिक रजिस्टर्ड है। धारावाहिक के अन्तर्गत पत्रिकाएँ, समाचार-पत्र, वार्षिकी, प्रतिवेदन, निर्देशिकाएँ, जनरल, कार्यवाही संस्थाओं के कार्यकलाप तथा मोनोग्राफ आदि आते हैं।

आई.एस.ओ. 2709 का भी अपना महत्व है। यह यू.एस.मार्क और यू.के. मार्क के विकसित प्रारूप में अन्तर स्पष्ट करता है। यह मुख्यतः मैगनेटिव टेप पर अन्तर्राष्ट्रीय मानक द्वारा स्थापित किया गया है। यह बहुत ही लचीले गुण वाला होता है, जिससे इसके प्रायोगिक स्वरूप का पता चलता है। जो सभी लोगों द्वारा अपनाया जा सकता है। यह योजना केवल सामयिक ग्रंथपरक अभिलेख के वर्तमान डाटा के लिए ही कार्य करता है।

आई.एस.ओ. : Z 39.50 भी खोज, पुर्नप्राप्ति सहित कार्यों हेतु आधुनिक समय की नवीन प्रौद्योगिकी है जो विभिन्न कार्यों को अद्यतन बनाने में सहायता प्रदान करती है। Z 39.50 प्रोटोकॉल पुस्तकालय साफ्टवेयर में भी सहायक है। यह अन्तर्पुस्तकालय ऋण (Inter Library Loan) के लिए भी उपयुक्त है।

12.7 संबंधित प्रश्न

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

  (i) आई.एस.बी.एन. से आप क्या समझते हैं? इसके लाभ एवं संरचना का वर्णन करें।

(ii) आई.एस.बी.एन. के अनुप्रयोग पर प्रकाश डालें तथा इसके मुद्रण तथा राष्ट्रीय एजेन्सी की चर्चा करें।

(iii) आई.एस.बी.एन. से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकताओं की विवेचना करें।

(iv) आई.एस.एस.एन. की प्रक्रिया एवं विधि को समझाएँ।

(v) आई.एस.ओ. 2709 के आधुनिकीकरण पर चर्चा करें।

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

(i) आई.एस.बी.एन. कार्य एवं क्षेत्र की समीक्षा करें।

(ii) इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन के लिए आई.एस.बी.एन. संख्या का उपयोग की चर्चा करें।

(iii) पुस्तकालय में आई.एस.बी.एन. संख्या के उपयोग की चर्चा करें।

(iv) आई.एस.एस.एन. से आप क्या समझते हैं?

(v) आई.एस.ओ. Z 39.50 के अर्थ को बताएँ।

- **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

(i) वर्त्तमान में आई.एस.बी.एन. कितने अंक का होता है?

(ii) 1 जनवरी 2007 से पहले आई.एस.बी.एन. कितने अंकों का होता था?

(iii) सर्वप्रथम एक संख्यात्मक प्रणाली कब और किस देश ने विकसित किया?

(iv) बी.एन.बी. (BNB) द्वारा मानक ग्रंथ सख्या कब प्रारंभ किया गया?

(v) आई.एस.एस.एन. कितने अंकों का होता है?

(vi) आई.एस.ओ. 2709 कब प्रकाशित हुआ?

(vii) आई.एस.ओ. 2709 के अभिलेख को कितने भागों में बांटा गया है?

12.8 अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

(i) तेरह (13) अंको का

(ii) दस (10) अंकों का

(iii) 1967, ब्रिटेन

(iv) 1969 ई0 में

(v) आठ (8) अंकों का

आई.एस.बी.एन.,
आई.एस.एस.एन.,
आई.एस.ओ.2709,
Z39.50

(vi) 1973 ई0 में

(vii) चार भागों में

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल, श्याम सुन्दर : पुस्तकालय सूचीकरण-एक अध्ययन।
- सूद, एस0 पी0 : पुस्तकालय सूचीकरण के सिद्धान्त।
- शर्मा पाण्डेय एस0 के0 : सरलीकृत पुस्तकालय सूचीकरण सिद्धान्त।
- त्रिपाठी, एस0 एम0 और शौकीन, एन0 एस0 : सूचीकरण सिद्धान्त के मूल तत्व।
- कुमार, गिरिजा और कुमार, कृष्ण : सूचीकरण का सिद्धान्त।
- त्रिपाठी, एस0एम0 : आधुनिक सूचीकरण
- कुमार, कृष्ण : सूचीकरण ।
- ठाकुर, यू0 एम0 तथा शर्मा, बी0 के0 : पुस्तकालय सूचना विज्ञान प्रौद्योगिकी : विवेचनात्मक अध्ययन।
- दुबे, टी0 एन0 : पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान एक परिदृश्य।